प्रकाशक ·

देवेन्द्र राज मेहता

सचिव, राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान,
जयपुर (राज)



स्मरण कला

प. धीरजलाल टो शाह

मुनि मोहनलाल 'शार्दूल'



मूल्य ·

पन्द्रह रुपये



प्रथमावृत्ति १९८०



प्राप्ति स्थान ·

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान
गोलेछा हवेली, मोतीसिंह भोमियो का रास्ता
जयपुर (राजस्थान) ३०२००३



मुद्रक

अर्चना प्रकाशन,
अजमेर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

प्राकृत भारती संस्थान का चौथा प्रकाशन—'स्मरण कला' प्रस्तुत है।

पाश्चात्य मनोविज्ञान के आधार पर स्मृति को विकसित करने हेतु कई पुस्तके प्रकाशित हुई हैं। प्रस्तुत प्रकाशन मे स्मृति विकास हेतु भारतीय परम्परा के अवधान सिद्धान्त पर प्रारम्भिक प्रकाश डाला गया है। आज भी, विशेष रूप से जैन परम्परा के कई अनुयायी अवधान प्रणाली के आधार पर विकसित स्मृति प्रदर्शित करते है। इन व्यक्तियो मे एक साथ सौ प्रश्न पूछे जा सकते हैं, जिन्हे वे उसी प्रकार पुन उद्धृत कर देते है। इससे यह ज्ञात होता है कि स्मृति का कितना असाधारण विकास हो चुका है। ऐसे ही एक व्यक्ति धीरजभाई टोकरसी हैं। इन्हे प्राकृत भारती संस्थान की ओर से स्मरण कला पर स्वलिखित गुजराती पुस्तक का हिन्दी मे अनुवाद करवाने और उसका इस संस्थान की ओर से प्रकाशन करने का अनुरोध किया। उनकी स्वीकृति प्राप्त करने मे राजस्थान साहित्य के प्रमुख विद्वान् श्री अगरचन्द जी नाहटा का विशेष प्रयास रहा। हिन्दी अनुवाद श्री मोहनलाल मुनि "शार्दूल" ने किया जो स्वय भी लेखक की तरह शतावधानी हैं। लेखक एव अनुवादक के प्रति संस्थान बहुत ही आभारी है क्योकि उनके प्रयासो के फलस्वरूप स्मृति-कला सम्बन्धी परम्परागत भारतीय सिद्धान्त विशेष रूप से हिन्दी-जगत् मे प्रकाश मे आये हैं।

डॉ सिन्हा (जो राजस्थान विश्वविद्यालय मे मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष हैं) ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी है। इस सम्बन्ध मे उनको निवेदन इस आधार पर किया गया था कि पाश्चात्य मनोविज्ञान के विशेषज्ञ के रूप मे पराम्परागत स्मृति-कला के सिद्धान्त जो इस पुस्तक मे प्रस्तुत हैं, उस पर उनके विचार-प्राप्त हो सकें।

पुस्तक प्रकाशन मे डॉ बद्रीप्रसाद पचोली, संस्थापक, अर्चना प्रकाशन, अजमेर, महोपाध्याय विनयसागर, सयुक्त सचिव, राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर और श्री पारस भसाली के प्रति भी संस्थान आभारी है।

देवेन्द्रराज मेहता
सचिव

आमुख

1—शतावधानी विद्वानो ने जीवन दर्शन, ग्रंथो के आलेख मे स्मृति जैसी मौलिक एव आधारभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से सम्बन्धित अत्यन्त ही गूढ एव गहन चिंतन प्रस्तुत पुस्तक मे उपलब्ध है। जैन मुनियो ने अपनी दूरदर्शिता एवं ग्रहणशीलता को आधार बनाकर आज से सदियो पूर्व सीमित साधन एव वैज्ञानिक प्रगति के न होने पर भी बीज रूप से उच्च मानसिक क्रियाओ के गत्यात्मक पक्षो को सहज रूप से उजागर करने की सराहनीय चेष्टा की है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने पच्चीस पत्रो की शृंखला मे सरस रूप से हर कडी में प्रत्येक पत्र द्वारा 'स्मरण कला' के आधार को अभिव्यक्त किया है। इस पुस्तक मे सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि स्मरण क्रिया एव उससे सम्बन्धित अनेक प्रक्रियाओ को एक कला के रूप मे स्वीकार किया है। कला की अभिव्यक्ति को जैसे सजाया व सवारा जा सकता है, ठीक उसी भांति स्मृति को भी विकसित किया जा सकता है।

2—पत्रो की शृंखला द्वारा व्यक्त गहन विचारो के परम शुद्ध रूप से जिज्ञासु प्रणाली के परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करने का अनूठा एव अनुपम प्रयास है। भारतीय सदर्भ मे नचिकेता की ज्ञान-पिपासा को शात करने की यह विधि तथाकथित वैज्ञानिक विधियो से सर्वोपरि है।

3—मनोवैज्ञानिक सप्रत्ययो मे पाश्चात्य वैज्ञानिकता को समाविष्ट करने हेतु वस्तुपरक दृष्टिकोण का निर्माण कर हम स्मृति जैसी जटिल मानसिक प्रक्रियाओ को कहाँ अध्ययन कर उसकी सूक्ष्मता एव गूढता को जान पाये हैं यह आज भी एक विचारणीय प्रश्न बना हुआ है।

4—पाश्चात्य जगत् के वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिको ने स्मृति सुधार पर किये गये अनेक शोधो के आधार पर केवल 'स्मृति प्रशिक्षण' की बात की है-दूसरी ओर मौलिक रूप से स्मृति के सबध मे चिंतन कर विश्लेषणात्मक विचारो के आधार पर इस पुस्तक के सत प्रवर्तक ने 'स्मृति-साधना' की सोपान को लाकर खडा कर दिया है।

5—मेरे विचार मे इस कृतित्व का मूल्याकन पाश्चात्य जगत् के विचारको के मतो से तुलनात्मक विधि को अपनाकर उनमे समता और

विषमता ढूँढना यथोचित नही होगा। 'स्मृति साधन' के पच्चीम पत्र वस्तुत एक माला के मणियो की भाँति है—क्योकि हर पत्र पत्र स्मृति प्रक्रिया के किसी न किसी पक्ष पर समुचित रूप से प्रकाश डालता है—तथा कई मौलिक तत्वो को उजागर करता है।

6—प्रत्येक पत्र मे प्रस्तुत किये गये प्रमुख तथ्यो का साररूप से विश्लेषण करना अनिवार्य है। प्रथम पत्र मे स्मृति को विकसित करने के लिये चार बातों का होना आवश्यक माना गया है सकल्प, अभ्यास, एकाग्रता तथा विविध विकल्पो के समाधान करने की तत्परता Readiness for differential cue selection, दूसरे पत्र मे स्मृति को पतजलि के चिंतन के अनुसार चित्त को आतरिक साधन की सज्ञा दी गई है एव चित्त को निम्नलिखित पाच वृत्तियो मे सम्मिलित किया गया है : 1) प्रमाण, 2) विपर्यय, 3) विकल्प, 4) निद्रा, 5) स्मृति। स्मृति को मन के तीन प्रकार के व्यापारो—बुद्धि एव विचार प्रधान व्यापार, Cognitive Memorizing, भाव प्रधान व्यापार Emotional Memorizing एव इच्छा या अभिलाषा प्रधान व्यापार Motivated Memorizing से सम्बन्धित माना गया है। प्रतीति (Percept) के द्वारा सस्कार (Impression) जिसे शरीर क्रिया मनोवैज्ञानिक engrams कहते हैं, उसका निर्माण होता है और इनके पुन: सक्रियण Re-activations से स्मृति विकास होता है। तीसरे पत्र मे स्मरण के नैदानिक पक्षो, जिसकी चर्चा गीता मे भी की गई है, का उल्लेख करते हुए कहा है, 'स्मृतिभ्रशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।' आधुनिक मनोवैज्ञानिक इसे कहते है कि 'Memory offers a basis of cognitive development चौथे पत्र मे स्मरण के प्रकार को अतिमद, मद, विभागीय मद, तीव्र एव तीव्रतम श्रेणियो मे विभाजित किया गया है। सार रूप से यह स्वीकार किया गया है कि शक्ति क्षमता Capacity की अभिव्यक्ति से विचलनशीलता है। स्मृति प्रसार के सप्रत्यय मे स्मृति सुधार की सभावना निहित है। पाचवे पत्र मे स्मरण का विश्लेषण करते हुए स्मृतिलोक के दो प्रमुख वैज्ञानिक कारको की चर्चा की गई है। उत्तर स्मृति भ्रंश और पूर्व स्मृति भ्रंश जिसे आधुनिक मनोवैज्ञानिक retro active तथा Proactive स्वीकार करते है। इसके अतिरिक्त विस्मरण के चित्त की पाच Interference के रूप में अवस्थाओ मे एकाग्रता को मुख्य माना गया है। छठे पत्र मे एकाग्रता की आवश्यकतायें तथा विषय को केन्द्र स्थान मे रखकर उसका वर्ग, अवयव गुण, स्वानुभव से विचार करना,

यौगिक उपाय—दस प्रकार के साधन बताये गये है। सातवें एवं आठवें पत्रो मे साधक की परिचर्या की चर्चा की गई हैं। नवें एवं दसवें पत्रो मे स्मृति के सवेदनात्मक पक्षो की चर्चा करते हुए इन्द्रियों की कार्यक्षमता एव इन्द्रिय-निग्रह की परीक्षा की गई है। ग्यारहवें एव बारहवें पत्रो में स्मृति मे कल्पना के योगदान की चर्चा करते हुए सृजनात्मकता (Creativity) के विकास को इ गित किया गया है। तेरहवें पत्र मे कल्पना के विकास और उसके उपयोग में स्मृति शिक्षण एवं सृजनात्मकता शिक्षण को सम्बन्धित किया है। इस सम्बन्ध को पुष्ट करने के लिये आधुनिक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भी Momory Training का Creativity Training. मे संवध जोड़ने के लिये शोध पर वल देते हैं। चौदहवें, सत्रहवें पत्रों मे स्मृति मे साहचर्य की स्वीकृति भूमिका की विस्तार पूर्वक चर्चा एवं विश्लेषण किया गया है। अठारहवें से वाइसवें पत्रो मे स्मृति के क्रम की उपयोगिता की चर्चा की गई है। तेइसवें एव चौबीसवें पत्रो में स्मृति को सुधारने के के लिए एक वैज्ञानिक प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है, जिसे अवधान प्रयोग Interference reduction के सोपानो के रूप मे दर्शाया गया है। है। अतिम पत्र मे स्मरण कला की समग्र विवेचना का सार प्रस्तुत करते हुए यह वताया गया है कि किसी भी विषय को याद रखने का आधार उसकी विधि सग्रह पर निर्भर करता है।

अत मे उपरोक्त विवेचना के आधार पर मेरा सविनय निवेदन है कि इस पुस्तक मे प्रस्तुत किये गये सैद्धान्तिक पक्षो की प्रायोगिक पुष्टि की सभावना निहित है। इस दिशा मे किये गये मौलिक शोध कार्य का नितान्त अभाव है, और शोध प्रयास लाभप्रद होगे।

विनीत

जयपुर 7-3-80

सच्चिदानन्द सिन्हा
Professor of Psychology.
University of Rajsthan
JAIPUR

शतावधानी पं. धीरजलाल टोकरसी शाह

का

संक्षिप्त परिचय

शतावधानी मन्त्रमनीषी शताधिक ग्रन्थो के लेखक प. धीरजलाल टोकरसी शाह जैन साहित्य और मन्त्र साहित्य के प्रौढ विद्वान् हैं। प्रस्तुत पुस्तक के गुजराती मे मूल लेखक होने से आपके जीवन की सक्षिप्त रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत करना अनुपयुक्त न होगा।

श्री धीरजलाल टोकरसी शाह का जन्म सौराष्ट्र प्रदेश के सुरेन्द्रनगर के समीप दाणावाड़ मे 18-3-1906 फाल्गुन कृष्णा अष्टमी वि स 1962 को हुआ था। इनके पिता टोकरसी और माता मणी बहन धर्म प्रिय व्यक्ति थे। अन्य गुजराती परिवारो की तरह माता की धर्म-निष्ठा अधिक थी। इनकी स्मरण शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। अचानक इन के पिता की मृत्यु वि. स. 1970 की कार्तिक शुक्ला 1 को हुई। उस समय अवस्था अत्यन्त छोटी थी। माता ने कठिन परिश्रम करके इनके परिवार का लालन-पालन किया था।

गाव मे प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करके श्री अमृतलाल गोविन्दजी रावल की प्रेरणा से अहमदाबाद मे सेठ चिमनलाल नगीनदास शाह छात्रावास मे 30-6-1971 को प्रवेश लिया। इसके बाद महात्मा गाँधी की प्रेरणा से अंग्रेजी स्कूल छोडकर प्रोप्रायटरी हाई स्कूल मे प्रवेश लिया। वहाँ रहते हुये कई विद्वानो के सम्पर्क मे आने का भी आपको सौभाग्य मिला, इनमे से काका कालेलकर, अध्यापक कौसाम्बी, आचार्य कृपलानी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सन् 1924 मे आपने गुजराती विद्यापीठ मे प्रवेश लिया। वहाँ रहते हुए गांधीजी के विचारो से काफी प्रभावित हुए। अपनी निश्चित दिनचर्या बनाकर धार्मिक शिक्षा, चित्रकला, सगीत आदि का आपने भली भाँति अध्ययन किया। काश्मीर, ब्रह्मदेश, यूनान, चीन की सीमा रेखा तक देश के कई भागो मे आपने भ्रमण किया। साहित्यिक सशोधन की दृष्टि से भी आपने बगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्नाटक प्रदेश मे अनेक प्रवास किये।

चित्रकला के प्रति आपकी बडी अभिरुचि रही। गुजरात विद्यापीठ मे रहते हुए आपने चित्रकला का अच्छा अध्ययन किया। आगे चलकर सर्व

श्री नानालाल, एम जानी एव रविशकर रावल के अधीन रहकर भी आपने चित्रकला के लिये कार्य किया।

छोटी अवस्था से ही लेखन, भाषण, पत्रकारिता, चित्रकला आदि मे आपकी रुचि रही थी। छात्रजीवन मे आपने 'छात्र' एवं 'प्रभात' नामक पत्रो का सचालन और सम्पादन किया। वाद मे इनको मिला कर 'छात्र-प्रभात' नामक पत्र निकाला। 'जैन-ज्योति' नामक पत्रिका भी प्रकाशित की। 'जल-मन्दिर पावापुरी', 'अजन्ता नो यात्री' नामक खण्डकाव्य लिखे। आपने अव तक 362 छोटी-वडी पुस्तकें लिखी है, जिनकी 25 लाख से भी अधिक प्रतियाँ छप चुकी हैं। यह वात आपकी लोकप्रियता और प्रतिभा को स्पष्टत इंगित करती है। 1934-35 मे अहमदावाद मे स्वतन्त्र रूप से 'ज्योति कार्यालय' के नाम से प्रकाशन सस्था स्थापित कर प्रथम वार मुद्रण कार्य आरम्भ किया किन्तु वाद मे इसे वन्द कर देना पडा। कालान्तर मे धीरजभाई वम्वई जाकर रहने लगे। सन् 1948 मे वहाँ सेठ अमृतलाल कालीदास दोशी के सम्पर्क मे आकर 'जैन साहित्य विकास मण्डल' नामक सस्था की स्थापना की। वहाँ प्रतिक्रमण सूत्र की प्रवोध टीका को तीन भागो मे तैयार कराया। मुनिराज यशोविजय जी की प्रेरणा से 'धर्मवोध ग्रन्थमाला' की 10 पुस्तकें तैयार की।

वि-स. 20'4 श्रावण अष्टमी को श्री धीरजलाल भाई ने स्वतन्त्र रूप से 'जैन साहित्य प्रकाशन मन्दिर' की स्थापना की और जैन धर्म, जैन सस्कृति तथा जैन साहित्य से सम्वद्ध साहित्य सृजन की धारा को निरन्तर प्रवाहशील रखा।

जैन शिक्षावली की तीन श्रेणियो मे 36 पुस्तिकाये लिखकर आपने समस्त जैन वाड्.मय की आवश्यक प्राथमिक जानकारी को वडे ही सरल रूप मे प्रस्तुत कर दिया। श्री वीर वचनामृत (गुजराती) तथा श्री महावीर वचनामृत (हिन्दी) प्रकाशित किये। इन ग्रन्थो का सार अग्रेजी मे 'दि टीचिंग्स ऑफ लॉर्ड महावीर' के रूप मे प्रस्तुत हुआ।

पाठको के लिये आपने 'जिनोपासना, नमस्कार मन्त्रसिद्धि, भक्तामर रहस्य, श्री ऋषि मण्डल आराधना' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की और मन्त्र-तन्त्र की अटपटी साधना को सुवोध वनाने के लिये 'मन्त्र चिन्तामणि' तथा 'मन्त्र दिवाकर' नामक मननपूर्ण ग्रन्थ लिखे।

जैन साहित्य प्रकाशन मन्दिर की स्थापना के तीन चार वर्षों के बाद आपने 'प्रज्ञा प्रकाशन मन्दिर' की स्थापना की। इसके माध्यम से विशिष्ट कोटि का साहित्य प्रकाशन आरम्भ किया। इसमे अब तक 10 ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

काव्य, निबन्ध, टीका तथा आध्यात्मिक साहित्य की सृष्टि के समान ही, श्री धीरजलाल भाई ने नाट्य लेखन मे भी पूरी सफलता प्राप्त की है। आपके द्वारा सती दमयन्ती, शालिभद्र, सकल्पसिद्धि याने समर्पण, काचा सूतरना तातणे, बन्धन तूट्या, हजी बाजी छे हाथ मा, श्री पार्श्वप्रभाव, कारमी कसोटी, जागी जीवनमा ज्योति जैसी अनेक रचनाये लिखी गई और क्रमश. पुस्तक प्रकाशन समारोह के अवसरो पर सफलतापूर्वक मच पर प्रदर्शित हुई। आपने जीवन मे सदा गतिमान रहने मे ही आनन्द माना है। वही कारण है कि अनवरत कुछ न कुछ लेखन चलता ही रहा है। ग्रन्थावली, पत्र-पत्रिकाएँ तथा अन्यान्य पुस्तिकाओ के सम्पादन के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थो, स्मारक ग्रन्थो, विशेषाको आदि का सुरुचिपूर्ण सम्पादन भी आपके हाथो से सम्पन्न हुआ है।

भारत की प्राच्य विद्याओ मे रुचि रखने वाले तथा प्रतिभा के धनी प धीरजलाल भाई ने अपने स्वाध्याय एव श्रम से अनेक प्रकार की विद्याओ को आत्मसात् किया है। विद्यार्थी वाचनमाला मे श्रीमद् राजचन्द्रजी का जीवन चरित्र लिखते हुए आपके मन मे शतावधानी बनने की रुचि जागृत हुई। बाद मे प सन्तबालजी के समागम से मार्ग-दिर्देशन प्राप्त कर सतत प्रयत्न करते हुए आप 'शतावधानी' बने। बीजापुर गुजरात मे सकल सघ के समक्ष दिनाक 29-9-1953 ई. मे आपने प्रथम बार शतावधान के प्रयोग किये और वही आपको सम्मानपूर्वक 'शतावधानी' पदवी से विभूषित किया गया।

इस विद्या के साथ ही आपने गणित के आश्चर्यजनक प्रयोगो मे अच्छा कौशल प्राप्त किया और अनेक प्रयोगो के प्रदर्शन द्वारा बडे-बडे गणितज्ञो को चकित कर दिया। आपके शतावधान एव गणित के प्रयोगो का प्रदर्शन भारत के अनेक शहरो मे सफलतापूर्वक होता रहा है। इस विषय मे आपने गणित चमत्कार, गणित रहस्य, गणित सिद्धि और स्मरण कला नामक चार ग्रन्थ लिखे। इनमे 'स्मरण कला' हिन्दी मे अनुवादित होकर पाठको को प्रस्तुत है।

▷◁

अनुक्रम

स्मरण कला

पत्र-प्रथम

कार्य-सिद्धि के आवश्यक अंग

प्रिय बन्धु !

भगवती सरस्वती का स्मरण और वन्दन पूर्वक जिज्ञासा पूर्ण तुम्हारा पत्र यथा समय मिल गया है। इसमे तुमने स्मरण-शक्ति को विकसित करने की और उसके लिये मेरे सहयोग प्राप्ति की जो अभिलाषा प्रकट की है, उसका मैं योग्य सम्मान करता हूँ। अनुभव का उचित विनिमय मेरे लिए आनन्द का विषय है, इसलिए आभार ज्ञापन की कोई आवश्यकता नही।

अब मुद्दे की बात। अगर तुम्हे स्मरण शक्ति का विकास करना ही हो तो उसके लिए सबसे पहले दृढ निश्चय करना पडेगा। यथार्थ मे दृढ निश्चय के बिना किसी भी कार्य की सिद्धि नही हो सकती। "चलो, प्रयास कर ले, कार्य सम्पन्न होगा तो ठीक और न होगा तब भी ठीक" इस प्रकार के ढीले-ढाले, अधकचरे विचारो से कार्य आरम्भ करने वाला थोड़ी-सी उलझन, जरा-सी प्रतिकूलता और तनिक सी मुसीबत आते ही पीछे हट जाता है। इसलिए ही प्राज्ञ पुरुष ने "देह वा पातयामि कार्य वा साधयामि" यह सकल्प-मय भावना-सूत्र प्रसारित किया है। इसलिए इस बात का तुम दृढ निश्चय करो कि—"मैं अपनी स्मरण-शक्ति को अवश्य विकसित करूँगा।"

तुम्हारा यह निश्चय कोई शेख-चिल्ली का विकल्प नही है, कुतुहल-प्रिय मन की तरग मात्र नही है, किन्तु सबल आत्मा की दृढ़-प्रतिज्ञा है। ऐसा विचार निरन्तर रखोगे तो सफलता का द्वार सत्वर ही खुल जायगा। इसलिए एक नोट-बुक लेकर उसके प्रथम पत्र के ऊपरी भाग मे निम्नलिखित शब्द अंकित करो—

प्रतिज्ञा

'मै अपनी स्मरण शक्ति को अवश्य विकसित करूँगा ।'

तिथि-मिति तारीख

और नीचे के भाग मे यह पंक्ति लिखो—

"प्राण टले पर प्रतिज्ञा न टले, यही वीर का धर्म है ।

इस पंक्ति पर सुबह-शाम एक बार अवश्य मनन करो । दृढ निश्चय के बाद दूसरी जरूरत है प्रयास की । प्रबल पुरुषार्थ की । यह पुरुषार्थ सुव्यवस्थित होना चाहिए । प्रारम्भ मे भारी उत्साह और बाद मे उसकी विस्मृति, यह कार्य करने की सुचारु पद्धति नही है, वैसे ही किसी प्रकार की व्यवस्था अथवा पद्धति का अनुसरण करते हुए कार्य मे अंधा-धुन्ध लग जाना भी कार्य करने की रीति नही है । वृक्ष तक पहुँचने की शर्त मे मन्दगति कछुए ने त्वरितगामी खरगोश को हरा दिया था, इसका मर्म बार-बार विचार मे उतार लेना चाहिए । इसलिये स्मरण-शक्ति पुष्ट बनाने का दृढ निश्चय करने के बाद निरन्तर उसके लिए थोडा समय लगाना और उसके बीच जिन-जिन विषयो मे अभ्यास करना आवश्यक हो, वह नियमित रीति से करना बहुत जरूरी है ।

अभ्यास से जैसे-जैसे अधूरे और अटपटे कार्यो की भी सिद्धि हो जाती है । अभ्यास से मनुष्य एक डोर पर चल सकता है । अभ्यास के द्वारा लहरो से उफनते सागर मे मीलो तक तैरा जा सकता है और अभ्यास से प्राणहारी विष को भी पचाया जा सकता है । सुज्ञ पुरुषो की मूल्यवान् वाणी है—

अभ्यासेन स्थिरं चित्तमभ्यासेनानिलच्युतिः ।
अभ्यासेन परानन्दो ह्यभ्यासेनात्मदर्शनम् ।

अभ्यास से चित्त को सुस्थिर किया जा सकता है । अभ्यास से (शरीरस्थ) वायु पर नियन्त्रण पाया जा सकता है । अभ्यास के द्वारा परम आनन्द की प्राप्ति हो सकती है और अभ्यास से आत्म-दर्शन किया जा सकता है ।

कार्य-सिद्धि का तीसरा अंग मन का एकाग्र मूड (मिजाज) है। किसी वस्तु को सिद्ध करने की तैयारी हो परन्तु मन की प्रवृत्ति एकाग्र न रहे, बार-बार बदलती रहे तो उस कार्य मे सिद्धि नही मिल सकती अथवा सिद्धि-प्राप्ति मे अत्यन्त परिश्रम करना पडता है और बहुत समय लगता है पर मर्कट जैसा चचल मन एकाग्र कैसे रहे ? यह एक गूढ प्रश्न है ? इसलिए इसके सम्बन्ध मे कुछ एक सूचनाएँ प्रस्तुत करता हूँ—

(१) यह कार्य मैं कर सकूँगा या नही, ऐसी शका मन मे नही लानी चाहिए। उसके बदले यह कार्य मै अवश्य कर सकूँगा—ऐसा आत्म-विश्वास रखना।

(२) इस कार्य के बदले कोई दूसरा कार्य करूँ तो ठीक रहे, इस प्रकार की विचारणा नही करनी चाहिए। उसके बदले स्वीकृत कार्य बहुत उत्तम है, ऐसी प्रतीति (निष्ठा) रखना।

(३) यह कार्य वास्तव मे फलदायी होगा या नही, ऐसी विचिकित्सा (आशका) नही करना। उसके बदले यह कार्य पूर्ण रूप से फलदायक है और इसकी सिद्धि से मै अपने जीवन मे अद्भूत प्रगति कर सकूँगा ऐसा दृढ-विश्वास रखना।

(४) तुम्हारे स्वीकृत कार्य की कोई निन्दा करे और दूसरे के कार्यो की प्रशसा करे तो उसके प्रलोभन मे नही पडना। "भिन्न-रुचयो लोका" लोक भिन्न-भिन्न रुचि वाले होते है इस कारण एक को एक वस्तु प्रिय लगती है, तो दूसरे को दूसरी वस्तु प्रिय लगती है—यह जान कर अपने निश्चय मे स्थिर रहना।

(५) जो अपने ध्येय को सिद्ध करने के लिए किसी प्रकार की साधना नही करते हैं, अथवा साधना से भ्रष्ट हो गये है, उनकी बातो का विश्वास नही करना। उनकी बातो मे रस नही लेना। उनके साथ किया गया परिचय अन्त मे अपनी साधना मे विघ्न डालता है, इस लिए बन सके जहाँ तक उन से दूर रहना चाहिये और उनके कार्य-कलापो से उदासीन रहना चाहिये तथा उसके बदले जिन्होने अपूर्व पुरुषार्थ से अपने कार्यो की सिद्धि की है, उनके साथ परिचय करना, उनकी बातो से उत्साह प्राप्त करना और उनकी तरह अपने कार्य को सिद्ध करने का मनोरथ रखना उचित है।

संक्षेप मे १. शका, २. कांक्षा, ३ विचिकित्सा, ४. अन्य प्रशसा और ५. कुसग ये पाँच बाते मन की एकाग्रता को भग करने मे निमित्त रूप है। तथा १ आत्म श्रद्धा, २ प्रतीति, ३. दृढ-विश्वास ४ स्थिरता और ५ सत्सग ये मन की धारा को एकाग्र रखने के उत्तम उपाय है।

यहाँ पर एक स्पष्टीकरण कर देना भी उचित समझता हूँ कि मन मे उठते विविध विकल्पो के समाधान प्राप्त करने की तत्परता रखनी चाहिए। यह किसी भी प्रकार की कार्य सिद्धि मे बाधक नही प्रत्युत साधक है। यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि प्रश्न उनके नही उठते है, जो सम्पूर्ण ज्ञानी है, या फिर पूरे-पूरे मूढ़ है। इन दोनो स्थितियो की बीच की स्थिति वाले मनुष्यो के तो प्रश्न अवश्य उठते है और उनका समाधान होता है तभी मनुष्य आगे बढ सकता है। इसीलिए अनुभवी पुरुषो ने बुद्धिमान् होने के लिए निम्नोक्त आठ गुणो को प्रमुख स्थान दिया है—

१. शास्त्र विज्ञान) श्रवण की इच्छा
२ शास्त्र को समझना
३. मन मे उतारना
४ याद करना
५ उस पर तर्क करना
६ उस पर विविध प्रकार से चिन्तन करना।
७. तर्क पर योग्य समाधान प्राप्त करना।
८ उसके सम्बन्ध मे अन्त.करण मे दृढ निश्चय करना।

इस (विषय) के सम्बन्ध मे तुम्हे जो जो प्रश्न उठे, उन्हे बिना सकोच मुझे सूचित करना। उनके उत्तर अपने अध्ययन और अनुभव के मुताबिक देता रहूँगा। ये उत्तर कई बार सक्षेप मे तो कई वार विस्तार से मिलते रहेगे। इनका आधार प्रश्न की योग्यता और तुम्हारी विषय-ग्रहण करने की शक्ति पर निर्भर होगा।

मैं मानता हूँ कि तुम आवश्यक प्रश्नो का समाधान प्रथम प्राप्त करोगे तो सफलता शीघ्र मिलेगी।

मंगलाकाक्षी
धी

मनन

प्रतिज्ञा—पार पाने के लिए व्यवस्थित पुरुषार्थ—मानसिक एकाग्रता की स्थिरता—कार्य सिद्धि।



पत्र-दूसरा

मन और उसके कार्य

प्रिय बन्धु !

तुमने मेरे पत्र को पुन: पुन: पढकर उस पर पर मनन किया, यह जान कर सतोष की अनुभूति करता हूँ। यही पद्धति चालू रखोगे तो प्रगति बहुत शीघ्र होगी।

तुम्हारे पूछे हुए प्रश्नो के उत्तर निम्नोक्त है—

प्रश्न—मन शब्द से क्या समझा जाये ?

उत्तर—अनुभूति का जो आन्तरिक साधन है, उसे मन कहा जाता है। हमे अपनी चेतना से अनुभव होता है। यह अनुभव जिस विषय मे अथवा जिन साधनों से होता है उनके मुख्य दो प्रकार है—एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। उनमे बाह्य प्रकार स्थूल है, जो दिखाई पडता है। उसके स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय ये पाँच विभाग है।

स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा हमे शीत - उष्ण, कोमल-कठोर आदि स्पर्शो का अनुभव होता है।

रसनेन्द्रिय के द्वारा हमे कटुक, तीक्ष्ण, खट्टे, मीठे आदि रसो का अनुभव होता है।

घ्राणेन्द्रिय द्वारा हमे सुगध और दुर्गन्ध का बोध होता है। चक्षुरिन्द्रिय द्वारा हमे लाल, पीला, बादली आदि रगो का तथा चौरस, लम्ब चौरस, गोल, लम्ब गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण, बहुकोण, समाकृति, विषमाकृति आदि आकारो का ज्ञान होता है। और वैसे ही श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा हमे मद, तीव्र, अति तीव्र, मधुर, कर्कश आदि स्वरो का ज्ञान होता है।

आन्तरिक प्रकार सूक्ष्म है। इसलिए इन चर्म चक्षुओ से दिखाई नही पडता, परन्तु अनुभव के द्वारा जाना जा सकता है। यही है सामान्य व्यवहार मे मति, बुद्धि, चित्त आदि शब्दो द्वारा पहचाना जाने वाला मन।

कितने ही तत्वज्ञ अनुभूति के इस आन्तरिक साधन को अन्त.-करण की सज्ञा देते है और उसके चार विभाग करते हैं जैसे कि मन, बुद्धि, चित्त और अहकार। उसकी पहचान वे इस रीति से देते हैं कि जिसके द्वारा योग्य और अयोग्य का अथवा खोटे और खरे का निर्णय होता है, वह बुद्धि कहलाती है।

जिसके द्वारा विविध प्रकार का चिन्तन होता है, वह चित्त कहलाता है। जिसके द्वारा इच्छा का प्रवर्तन होता है और परिणाम स्वरूप कार्य मे प्रवृत्ति होती है, वह अहकार कहलाता है।

महर्षि पतजलि ने अनुभव के इस आन्तरिक साधन को चित्त सज्ञा दी है और उसकी मुख्य वृत्तिया पाच गिनाई है। वे इस प्रकार है—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। दूसरे विद्वानो ने उसका विस्तार दूसरी प्रकार से किया है, परन्तु यह तो वाणी व्यवहार अथवा परिभाषा का प्रश्न है। मूल विषय मन आन्तरिक अनुभव का साधन है। इसमे किसी प्रकार का मतभेद नही है। यह अनुभव जिसको होता है अथवा जिसके द्वारा यह शक्य बनता है, उसे आत्मा या जीवात्मा कहा जाता है।

प्रश्न—मन क्या-क्या कार्य करता है ?

उत्तर—मन के कार्य, मन के व्यापार असख्य होने से तत्वत· उनकी गणना हो सके, ऐसा सम्भव नही है। फिर भी व्यावहारिक सरलता के लिए अपनी समझ मे आ सके इसलिए मानस शास्त्रियो ने उन्हे तीन भागो मे विभक्त किया है वे निम्नलिखित है—

(१) बुद्धि प्रधान या विचार प्रधान व्यापार—उनमे पृथक्-पृथक् सज्ञाये, प्रतीतियाँ, सस्कार, जिज्ञासा, तर्क, तुलना, अनुमान, कल्पना और स्मृति आदि का समावेश होता है।
(२) वृत्ति प्रधान अथवा भाव प्रधान व्यापार— कोई भी सज्ञा या विचार ग्रहण करने के बाद मन मे आनन्द, शोक, उत्साह, धैर्य, सुख, दु ख आदि जो सस्कार जन्मते है अथवा जो भाव उठते है उनका इस प्रकार मे समावेश होता है।

(३) इच्छा या अभिलाषा प्रधान व्यापार-मन मे उत्कट (एक प्रकार की) वृत्ति जागने के बाद, जो कार्य करने की इच्छा होती है, अभिलाषा उत्पन्न होती है और जो पूर्ण रूप से नाडी-तन्तुओ के माध्यम से शरीर की चेष्टा मे व्याप्त हो जाती है। इन सब का समावेश इस विभाग मे होता है।

ये व्यापार (भाव) एक के बाद एक उत्पन्न होते रहते है अथवा एक साथ भी अनेक व्यापारों का प्रवर्तन एकदम हो जाता है, इससे इनकी समग्र क्रिया बहुत ही अटपटी हो जाती है। इन मनो-व्यापारो का वेग कोई भी भौतिक फेरफार या व्यापार की अपेक्षा बहुत त्वरितगामी होता है। इसीलिए जब किसी भी वस्तु की शीघ्रता बतानी होती हैं तब उसकी समानता मानसिक वेग के साथ की जाती है। हम थोडी देर पहले किन्ही कल्पनाओ मे विचरण कर रहे होते है कि एकाएक कितनी हो घटनाएँ (भाव) स्मृति पटल पर उतर आती है। उनके साथ कुछ वृत्तिया भी उत्पन्न हो जाती है और वे फिर अनेक अभिलाषाओ को जन्म देती रहती है। यह सब इतनी शीघ्रता से होता है कि अति कुशाग्र बुद्धि के सिवा उसे समझना बहुत मुश्किल है।

प्रश्न— मन दिखायी नही देता है तो उसके अस्तित्व का विश्वास कैसे हो?

उत्तर— जिस वस्तु को देख न सके परन्तु अनुभव कर सके, या समझ सके उसका अस्तित्व हो सकता है।

उदाहरण के तौर पर हवा को हम देख नही सकते पर स्पर्श के द्वारा अनुभव कर सकते है। इसलिए हवा का अस्तित्व है, ऐसा निश्चय किया जा सकता है। वैसे ही चैतन्य को तथा मन को देखा नही जा सकता परन्तु उसका निश्चय प्रतिकार* और

* पत्थर को तोडते, लकडी को चीरते, लोहे को काटते समय वे कोई प्रतिकार नही कर सकते। मछली को जब पकडते है, तो वह ऊँची नीची होती है। कुत्ते को मारा जाता है तो वह भूकने लगता है। कबूतर को पकडा जाता है तो वह सामने हो जाता है। मनुष्य को कोई भी नुकसान पहुँचाता है तो वह सुरक्षा का प्रयत्न करता है क्यो कि उनमे प्रतिकार शक्ति है। यह चैतन्य का लक्षण होने से पशु-प्राणियो मे चैतन्य है—यह समझा जा सकता है।

विचार रूप क्रियाओ के द्वारा हो सकता है। बुद्धि वृत्तियाँ और इच्छा आदि मन के अस्तित्व के सबल प्रमाण हैं।

प्रश्न— स्मरण या स्मृति किसे कहा जाता है ?

उत्तर—स्पर्श, रस, गध, रूप और शब्द वगैरह की सज्ञाओ (Sensations) वैसे ही विविध प्रकार की सज्ञाओ के मिलने से उत्पन्न हुई विशिष्ट विपय की प्रतीति (Percept) के द्वारा अपने मन पर जो सस्कार (Physical impression) पड़ते हैं इन सस्कारो का जो उद्‌बोधक होता है, वे फिर से ताजे होते हैं वही स्मरण या स्मृति (Memory) कहलाती है।

मानसिक सृष्टि बड़ी विचित्र है, यह गहराई से ध्यान मे रहे।

मगलाकाक्षी
धी०

मनन

अनुभवो के बाह्य और आन्तरिक साधन, आन्तरिक साधन अर्थात् मन। मन के तीन प्रकार के व्यापार है- मनो व्यापार की विलक्षणता, मन के साक्ष्य स्मरण-शक्ति की व्याख्या।



तीसरा पत्र

स्मरण-शक्ति का महत्त्व

प्रिय बन्धु !

मैंने पिछले पत्र में मन और उसके कार्यों के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नो के उत्तर दिये थे। उनमे स्मृति किसे कहा जाय यह भी स्पष्ट किया गया। अब शेष प्रश्नों के उत्तर इस पत्र मे दिये जा रहे हैं।

प्रश्न— स्मरण शक्ति की क्या महत्ता है ?

उत्तर—स्मरण शक्ति की महत्ता योगीश्वर श्रीकृष्ण के शब्दो मे नीचे के अनुसार है। उन्होने गीता में कहा है—

"स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।"

स्मृति का भ्रंश होने पर बुद्धि नष्ट हो जाती है, बुद्धिनाश होने पर पूरा पतन होता है। आधुनिक मानस-शास्त्रियो का अभिमत भी ऐसा ही है। प्रो० लार्ड सेट ने कहा है—"आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक इन तीन शक्तियो के क्षीण होने का प्रथम कारण स्मृति का अभाव है।" प्रो. केन का कथन है—"समग्र शक्तियो मे स्मरण शक्ति अद्भुत है। वह न हो तो मनुष्य एक क्षुद्र जन्तु के समान बन जाये और जीवन के सर्वोत्कृष्ट आनन्दो से तथा प्रगति से वंचित हो रहे।" ग्रीक लोगो ने स्मृति को स्वर्ग और पृथ्वी की पुत्री तथा साहित्य, संगीत एवं कला पर अधिकार भोगने वाले नवभ्युजीज की माता मान कर उसकी अपूर्वता जाहिर की है। तत्त्वज्ञो ने उसे 'आत्मा की अन्नपूर्णा', 'विचारो की अदृश्य खान', 'समग्र क्रियाओ की अधिष्ठात्री,' 'प्रगति की माता' आदि भाव भरे विशेषणो से सम्बोधित किया है।

लार्ड टेनिसन ने अपनी एक काव्य कृति मे स्मृति देवी को अर्घ्य चढाते हुये कहा है कि भूतकाल के भण्डार मे से तेज: पुज को लेकर वर्तमान काल को प्रकाशित करने वाले ओ स्मृति के मधुर प्रभात ! तुम मेरी कुछ भावनाओ की मुलाकात लो तथा मुझ अज्ञान मूर्च्छित को नया आलोक दो, नया वल दो ।

नीचे के मुद्दो पर विचार करने से स्मरण-शक्ति का महत्त्व समझ सकोगे—

१. विद्यार्थी परीक्षा देने जा रहा है, पर कोई पाठ याद नही आ रहा है ।
२. वकील न्यायालय मे जा रहा है पर कानून के नियमो-उपनियमो को भूल रहा है ।
३ चिकित्सक एक नुस्खे मे एक दवा के बदले मे दूसरी दवा लिख देता है ।
४. रगमच पर एक नट अभिनय कर रहा है, पर तैयार किया हुआ पाठ याद नही आता है ।
५ सगीतकार जलसा जमाने के लिये बैठा है पर सगीत की तर्ज ही भूल गया है ।
६. व्यापारी एक ग्राहक को एक के बदले दूसरा भाव बता-देता है ।
७. सर्राफ दिवानी दावे मे कोर्ट की तारीख भूल जाता है जिससे अदालत मे हाजिर नही हो पाता है ।
८ एक बीमार अपथ्य और पथ्य का भेद भूल कर अपथ्य वस्तु का सेवन कर लेता है ।
९ नगर से अपरिचित मित्र बड़े शहर मे आ रहा है, पर उसके सामने स्टेशन पर जाना भूल जाता है ।
१०. महत्त्वपूर्ण दस्तावेजो का गट्ठर गाडी मे ही रह जाता है ।
११ बैंक की चेक बुक जेब से गिर जाती है ।
१२ आवश्यक वस्तु रख कर भूल जाता है ।
१३. किसी को कोई वस्तु दी, वह याद नही आ रही है ।

१४. मित्र को लिखा पत्र पत्नी के लिफाफे मे और पत्नी को लिखा पत्र मित्र के लिफाफे मे डाल दिया जाय।

कहने की जरूरत नही कि ऊपर की परिस्थिति मे निर्बल स्मरण शक्ति के प्रताप से उसका मालिक कितने नुकसान, कितनी निराशा और कितनी बदनामी को भोगता है।

प्रश्न—स्मरण शक्ति को विकसित करने से क्या लाभ होता है?

उत्तर—स्मरण शक्ति सुधरे तो मनुष्य अपने विषय मे निष्णात बनकर यश और लाभ प्राप्त कर सकता है। वह कोई नया विषय सीखना चाहे तो बहुत शीघ्रता और सरलता से सीख सकता है। वैसे ही वह विषय दूसरो को सिखाना हो तो अच्छी तरह से सिखाया जा सकता है और भजन कीर्तन करना हो, बातचीत करनी हो, कहानी कहनी हो, उपदेश देना हो, प्रवचन करना हो तो सामान्य-व्यक्तियों की अपेक्षा स्मृति-समृद्ध व्यक्ति सुन्दर पद्धति से सम्पन्न करता है। सक्षेप मे स्मरण-शक्ति के विकास से मन की समग्र शक्तियां विकस्वर हो जाती हैं।

मगलाकाक्षी
धी०

मनन

स्मरण-शक्ति बुद्धि का आधार है। समस्त विकासो का मूल है। सब प्रवृत्तियों मे उपयोगी है। आगे बढने के लिये अत्यन्त सार्थक साधन है।



□

पत्र चतुर्थ

स्मरण-शक्ति के प्रकार

प्रिय बन्धु !

प्रस्तुत विषय मे तुम्हारा रस दिन-प्रति दिन वृद्धि पा रहा है; उसे देख कर आनन्दित हूँ। तुम्हारे प्रश्नो के उत्तर इस प्रकार है—

प्रश्न—स्मरण शक्ति कितने प्रकार की है ?

उत्तर—स्मरण-शक्ति मूल तो एक ही प्रकार की है, पर उसकी अवस्था के आधार पर उसके विभिन्न प्रकार हो जाते हैं। जैसे कि—अति मद, मद, विभागीय मंद, तीव्र, तीव्रतम और अद्भुत आदि आदि।

प्रश्न—एक मनुष्य की स्मरण शक्ति तीव्र है और दूसरे की मन्द है—इस कथन का क्या अभिप्राय होता है ?

उत्तर—एक मनुष्य की स्मरण-शक्ति तीव्र है यह कहने का तात्पर्य है कि—

१. वह थोड़े से प्रयत्न से याद रख सकता है।

२. वह वहुत अतीत की बात याद रख सकता है।

३ वह वहुत समय तक याद रख सकता है।

४ यदि जरूरत पडे तो वह वरावर स्मृति मे ला सकता है।

इसके विपरीत एक मनुष्य की स्मरण शक्ति मंद है—इस कथन का अर्थ यह है कि—

१. उसे एक वात को याद रखने के लिए वहुत प्रयत्न करना पड़ता है।

२. बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे वह वस्तु हूबहू याद नही रहती है। वह अथवा तत्सम्बन्धी महत्त्व की घटनाएँ स्मृति मे रख नही सकता।
३. थोडे समय के बाद ही वह बिल्कुल याद नही कर सकता।
४. ध्यान देने पर भी याद नही कर सकता है अथवा एक के बदले दूसरी बात प्रस्तुत कर देता है।

प्रश्न—एक मनुष्य को एक बात बराबर याद रहती है और दूसरी बात बराबर याद नही रहती इसका क्या कारण है? यदि स्मरण शक्ति तीव्र हो तो सब बाते बराबर याद रहनी चाहिये।

उत्तर—यह प्रश्न विभागीय मंदता से सम्बद्ध है। एक मनुष्य को एक बात बराबर याद रहती है और दूसरी अच्छे प्रकार से ध्यान मे नही रहती, इसका मुख्य कारण रस की न्यूनाधिकता है। जिस विषय मे उसको रस होता है, उस तरफ उसका लक्ष्य बराबर दौडता है, परिणाम स्वरूप उसमे एकाग्रता आ जाती है, इसलिए उस विषय के छोटे-मोटे अनेक पहलुओ को शीघ्रता से ग्रहण कर लेता है, परन्तु जिस विषय मे उसको रस नही होता है, उस तरफ उसका दुर्लक्ष्य हो जाता है, इसलिये उसमे सजग एकाग्रता नही आ पाती। परिणाम स्वरूप वह वस्तु उसको याद नही रहती।

एक लडका सिनेमा का गायन जल्दी सीख जाता है। और एक या दो बार सुनकर ही उसको याद कर लेता है और बहुत बार तो उसको उसी लहजे मे गाता है, परन्तु कोई धार्मिक भजन या कीर्तन वह उतना जल्दी याद नही कर सकता, उसकी राग जल्दी ग्रहण नही कर सकता, इसका कारण यह है कि उस विषय मे उसको इतना रस नही है।

एक लड़के को यह पूछा जाए कि क्रिकेट का अन्तिम मेच जब खेला गया तब कौन-कौन खिलाडी थे, उन्होने कैसा खेल खेला? और उस बार किसने कितने रन किये तो वह सब बराबर बता देगा, परन्तु उससे यदि यह पूछा जाए कि अपने देश के मत्री-मण्डल मे कितने सदस्य है, उनके क्या-क्या नाम हैं? और वे देश के कौन कौन से भाग से आये हुए है? तो वह अपना सिर खुजलाने लगेगा। कारण कि उसने क्रिकेट मे पूरा-पूरा रस लिया है,

पर मन्त्रि-मण्डल की रचना मे उसने जरा भी रस नही लिया है। इससे उल्टा, एक राज्य कर्मचारी को यदि यह पूछा जाए कि अभी अभी प्रधान मडल मे कितने पार्षद है, और वे कौन से प्रान्तो से आये हुए है तो वह इसका उत्तर बराबर दे सकता है, और वह हरेक सदस्य की वास्तविकता तथा कार्य क्षमता के विषय मे भी जरूर कुछ बता सकता है, परन्तु क्रिकेट मेच के विषय मे वह सम्भवतः उतना सतोषजनक जवाब न दे पाये। यह वस्तुस्थिति हरेक विषय मे समझ लेनी चाहिये।

कितनी ही बार इस रस की गाढता एक विषय में इतनी अधिक बढ जाती है कि मनुष्य एक लक्षी बन जाता है। अर्थात् उसको अपने आस-पास होने वाली घटनाओ का या अपने शरीर का भी पूरा भान नही रहता। उदाहरण के तौर पर महान् वैज्ञानिक एडिसन एक बार सरकारी आफिस मे कर (टेक्स) भरने के लिये गये हुए थे। वहाँ वे अपना नाम ही भूल गये। बहुत प्रयत्न करने पर भी याद नही आया। उनकी यह दिक्कत पास मे खडे एक चतुर मनुष्य ने ताड ली। इसलिये उसने उनको नाम पूर्वक सम्बोधन किया और तब वैज्ञानिक एडिसन को विस्मय के साथ अपना नाम याद आया। यह स्थिति बनने का कारण यह था कि उनका मन नये-नये आविष्कार और खोज करने मे इतना तल्लीन रहता कि बाकी के समग्र विषयो की तरफ उपेक्षा वृत्ति हो गई थी।

ऐसा ही एक उदाहरण महात्मा मस्तराम जी का है। वे वास्तव मे मस्त थे। इसलिये बहुताश मे उनका लक्ष्य आत्माभिमुखता ही रहता था और अन्य विषयो मे उपेक्षा रहती। वे एक बार सौराष्ट्र के एक ग्राम मे किसी भक्त के निमत्रण से उसके वहाँ भोजन करने गये। उस भक्त ने उनको जिमाने के लिये चूरमा बनाया था, परन्तु हुआ यह कि उसने उस दिन एक ओर नमक पीस कर एक थाली मे रख दिया था, उसके पास ही पिसी हुई मिश्री की थाली भी पड़ी थी। इसलिए भोजन के साथ चूरमे मे मिलाने के लिए मिश्री वाली थाली के बदले भूल से नमक वाली आ गई। नमक कितना कडुआ होता है यह समझा जा सकता है परन्तु महात्मा मस्तराम जी तो सब वस्तुओ को मिला कर खा गये। खाना खाते समय उनका अन्तःकरण प्रसन्न दिखाई पड़ता

था, भोजन करने के बाद आशीर्वाद देकर वे चले गये और गाँव से थोडी दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे आराम करने लगे, इधर उस भक्त ने जीमते समय उसी थाली से चीनी ली तो पता चला कि उसने महात्मा मस्तरामजी को भूल से नमक ही परोसा है। इसलिए वह खाना खाये बगैर ही एकदम उठा और मस्तराम जी कहाँ होने चाहिये यह अनुमान करके उनको खोजने के लिये निकल पडा। थोडी देर मे ही उसे पता चला कि वे एक वृक्ष के नीचे प्रसन्नचित्त बैठे हैं। वह भक्त पहुँचते ही उनके चरणों मे गिर पडा और कहने लगा, "महाराज! आज भारी अनर्थ हो गया है आप को जिमाते समय चीनी के बदले नमक भूल से चूरमे मे डाल दिया। उसका मुझे बहुत भारी अनुताप है। अब पता नही आपके शरीर को क्या होगा।" उक्त बात सुन कर मस्तराम जी बोले—"भक्त! हमने मिश्री खाई या नमक यह तो मालूम नही, परन्तु रसवती अच्छी बनी थी। इतना ख्याल आता है।" ऐसी बात एक दम किसके गले उतरे? पर महात्मा मस्तराम के लिये यह बात एकदम सत्य थी। वे स्वाद के विषय मे बिल्कुल उदासीन बन गये थे। इस कारण क्या वस्तु खाई, उसका ख्याल तक नही रखते थे। तात्पर्य है कि 'रस' परिवर्तन के कारण एक मनुष्य को एक बात बराबर याद रहती है और दूसरी बात बराबर याद नही रहती।

प्रश्न—अद्‌भुत स्मरण शक्ति किसे कहते है? इसका कोई उदाहरण देगे?

उत्तर—कुछेक मनुष्यो की स्मृति इतनी अधिक तीव्र होती है कि वे एक बार पढ कर ही या एक बार सुन कर ही सैकडो क्या हजारो बातो को बराबर याद रख सकते हैं। उसे हम अद्‌भुत या असाधारण स्मरण शक्ति कह सकते है।

महाभारत की रचना श्री वेद व्यास ने मौखिक रूप मे ही की थी। तपोवन मे महर्षि सैकडो शिष्यो को मौखिक ही अध्ययन कराते और कौन से शिष्य को कौन-सा पाठ दिया है, वह सब बराबर स्मृति मे रखते।

विद्या के परम प्रेमी (शौकीन) मालवपति महाराजा भोज के दरबार मे ऐसे भी कवि थे कि जो एक बार सुनकर ही जैसे तैसे

क्लिष्ट श्लोक याद कर लेते। उनके समय के महाकवि धनपाल द्वारा रचित तिलक मजरी नामक ग्रन्थ राजा के आदेश से नष्ट किये जाने पर भी उनकी पुत्री तिलक-मजरी ने अक्षरशः फिर से लिखा दिया था।

गुजरात के महान् ज्योतिर्धर श्री हेमचन्द्रसूरि जी आचार्य को लाखो श्लोक याद थे। वे बिना रुके अस्खलित गति से ग्रन्थ रचना कर सकते थे।

युक्त प्रान्त मे हुए बचु कवि को दो लाख पद्य याद थे। स्वामी विवेकानन्द, श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, महाकवि गट्टू लाल जी, श्रीमद् राजचन्द्र आदि अनेक महान् पुरुष अपनी अद्भुत स्मरण-शक्ति के लिये भारत भर मे विख्यात हैं।

विदेश की तरफ दृष्टि उठाये तो सायरस अपनी सेना के हर एक सैनिक को नाम पूर्वक पहचानता था। रोमन सेनेटर और फिलसूफ सेनेको २००० नाम सुनकर उन्हे क्रमश दुहरा सकता था। लॉर्ड मेकाले ने मात्र चार वर्ष की अल्पायु मे ही पत्र पढना सीख लिया था। वे समग्र उनको याद हो गये थे। वाल्टर स्काट के "ले ऑफ दी लास्ट मीन्सट्रल" को उन्होने एक बार पढ कर अपनी माता को अक्षरश सुना दिया था। दूसरे भी अनेक ग्रन्थ उन्हे इसी तरह याद हो गये थे।

फ्लोरेंस के राज पुस्तकालय के ग्रन्थपाल (लायब्रेरियन) मेग्लीआबेची के अनेक पुस्तको का सार दिमाग मे भरा हुआ था। जिससे किसी भी पुस्तक का अवतरण वह स्मृति मात्र से दे सकता था।

अमेरिकन सिविल-वार के समय मत्री पद पर कार्य करने वाले मी. स्टेन्टन प्रख्यात नवल कथाकार डीकन्स की कोई भी नई कहानी का कोई भी प्रकरण अक्षरशः बोल सकते थे। ई स १८६८ मे एक भोजन प्रसग मे उन्होने इसका प्रयोग करके दिखाया था।

डा जहोन लेडन कलकत्ता आए, तब कानून का एक ऐसा प्रश्न उठा कि जिसमे पार्लमेंटरी कानून पुस्तिका के अक्षर अक्षर की जरूरत पड़ी, परन्तु कोर्ट मे उसकी नकल नहीं थी। ऐसी

स्थिति मे मि लेडन ने अपनी स्मृति के आधार पर समग्र विधान लिखाया। जो कि उसने अपना देश छोड़ने से पहले मात्र एक बार पढा था। एक वर्ष बाद विलायत से विधान की प्रति आई तब देखा गया कि वह विधान अक्षरश: ठीक है (प्रमाणित हुआ)।

बेन जेन्सन, डेज्ञ फ्रेइटस्, लीबनीट्ज, पास्कल, स्केलीजर्स, हेमील्टन, नोबुहर, मेकीन्टोश, डग्लास स्टुअर्ट ग्रोशीअस, युलर, डीन मेन्सेल आदि पुरुष अपनी अद्भुत स्मृति के लिए सुप्रसिद्ध है।

केरो के विश्वविद्यालय मे सम्पूर्ण कुरान शरीफ को कंठस्थ रखने वाले अनेक विद्यार्थियों के नाम उज्ज्वल अक्षरों मे अंकित है। चीन के विद्यार्थी भी अपने खास ग्रन्थो को अक्षरश: याद रखने वाले सिद्ध हुए है।

तात्पर्य यह है कि ससार मे समय-समय पर अद्भुत स्मृति वाले पुरुष पैदा होते रहे है और आज भी पैदा हो रहे हैं, पर उनकी संख्या बहुत विरल है।

इन उदाहरणों से यह बात सिद्ध होती है कि स्मरण शक्ति की वास्तविक शक्ति अगाध है। कितनेक मनुष्यो को पूर्व-जन्म की बाते भी याद आ जाती है, और वे एक या दो को नही, पर अनेक जन्मो की। वर्तमान पत्र-पत्रिकाओ मे उद्धृत अनेक घटनाओ ने इस बात को पुष्ट किया है।

मैं मानता हूँ कि ये उत्तर तुम्हारी स्मरण शक्ति को सुधारने की प्रतिज्ञा मे प्रेरक सिद्ध होगे।

मगलाकाक्षी
धी०

मनन

स्मरण शक्ति के प्रकार अतिमद, मद, विभागीय मद, तीव्र और तीव्रतम (अद्भुत)। स्मरण शक्ति की वास्तविक क्षमता अगाध है।

पत्र पंचम

विस्मरण

प्रिय बन्धु !

तुम्हारे पत्र की भावपूर्ण ललित पंक्तियां ने मुझे प्रचुर आह्लादित किया है। यह सत्य है कि "सौ सुनी हुई बात और एक देखी हुई बात" उसी प्रकार यह बात भी सत्य है कि 'सौ देखी हुई बात और एक अनुभूत की हुई बात" अर्थात् सुनने से अधिक साक्षात् देखने से और देखने से अधिक करने से किसी भी बात की विशेष प्रतीति होती है। यदि समय-समय पर जगत मे अद्भुत स्मरण शक्ति वाले पुरुष पैदा नही होते तो संसार के मनुष्य स्मरण शक्ति के अद्भुत सामर्थ्य को शायद ही स्वीकार करते; परन्तु आज तक वह क्रम चालू रहा है इस कारण मानव समाज ने स्मरण शक्ति के अपूर्व बल को अंगीकार कर रखा है।

लाखो करोड़ो अरे अरबो सस्कारो के समूह मे से अमुक सस्कार को ही कुछ पलको मे मन मे जागृत करना यह कोई ऐसी-वैसी बात नही है। इस एक मुद्दे पर ही मनुष्य यदि गम्भीरता से विचार करे तो स्मृति की महत्ता उसके हृदय मे बैठे बिना नही रहेगी।

अभी तुम्हारे दिल मे विविध प्रश्न उठते हैं। इसलिये कि तुम्हारी जिज्ञासा पूरी-पूरी सन्तुष्ट नही हुई। पर मै मानता हूँ कि अब थोडे समय मे ही तुम्हारे मन का सम्पूर्ण समाधान हो जायेगा और तुम क्रियात्मक समाधान के मार्ग मे शीघ्रता से चलने लगोगे।

तुम्हारे प्रश्नो के उत्तर निम्न हैं—

प्रश्न—हम भूल कैसे जाते है ?

उत्तर—हम बहुत बातों को भूल जाते हैं। उसका प्रथम कारण तो यह है कि हमें अपनी स्मरण-शक्ति में जितनी श्रद्धा होनी चाहिये, नही है। दूसरा कारण यह है कि अपने बहुत सी बातों को याद रखने की इच्छा ही नही रखते। तीसरा कारण है कि अपने उसमे पूरा रस नही लेते। चौथा कारण है कि जिस वस्तु को हमने देखा उसको उतना समझा नही। अथवा समझा तो मन की चौखट मे उसे बराबर बिठाया नही। पचम कारण है कि उसको जितना देखा उतना गहराई से उस पर ध्यान नही दिया। छठा कारण यह है कि हमने उसे साहचर्य के गाढ़ बन्धन मे जकड़ा नही और सप्तम कारण यह है कि उस पर समय-समय पर चिन्तन नही किया—पुनरावर्तन नही किया।

इस सकल कथन का फलितार्थ यह है कि यदि हमे कोई वस्तु सही ठीक से याद रखनी हो तो स्मृति-शक्ति मे दृढ विश्वास होना चाहिये। उसके सम्बन्ध मे खास इच्छा जागृत होनी चाहिये। उसमे पूरा रस पैदा होना चाहिये। उस पर एकाग्रता से ध्यान देना चाहिये। उसको गहराई से समझने का प्रयास करना चाहिये। उसको साहचर्य से समृद्ध करना चाहिये और उसका समय-समय पर योग्य पुनरावर्तन करना चाहिए।

प्रश्न—स्मृति-भ्रंश किसे कहा जाता है और उसका स्वरूप क्या है?

उत्तर—स्मृति का लोप होना, कुछ भी याद न आना, उसको स्मृति-भ्रंश कहते हैं। यह स्थिति एक प्रकार की मानसिक बीमारी है। उसके मुख्य प्रकार दो है—

१—उत्तर स्मृति भ्रंश और २—पूर्व स्मृति भ्रंश।

जिसमें पूर्व के अनुभव याद होते है पर ताजी या वर्तमान की घटनाएं याद नही रहती, उसे उत्तर-स्मृति भ्रंश कहते हैं और जिसमे पूर्व का कुछ भी याद नही रहता; पर वर्तमान का कुछ-कुछ याद रहता है, वह पूर्व-स्मृति-भ्रंश कहलाता है। जिसका चित्त सम्पूर्ण नष्ट हो जाता है। वह चाहे जितना प्रयत्न करने पर भी अपने पूर्व के अनुभवों को, संस्कारो को याद नही कर सकता, उससे वह पशु जैसा बन जाता है।

प्रश्न—एक बात को याद करना न चाहे तब भी याद आये तब क्या समझा जाए ?

उत्तर—मन का सामान्य सयोजन ही ऐसा है कि उपयोगी विषय याद रखें और बिना उपयोगी विषय भूल जाए। यदि ऐसा न हो तो उपयोगी, निरुपयोगी संस्कार याद आते ही रहे तो आवश्यकता की बात पकडी नही जा सकती। इसलिये निर्धारित बात को स्मृति मे लाना हो तब दूसरी बातें याद न आयें, यह बहुत अपेक्षित है। उदाहरण के लिये आठ वर्ष पूर्व घटी घटना का सन्दर्भ याद करना हो तो बीच के वर्षों के समग्र विषय भूल कर उसे ही याद करना होता है, तभी वह वैसा बन सकता है। इसके बदले यदि मध्यवर्ती वर्षों के विषय याद आने लगे तो लाखो करोड़ो विषय एकत्रित हो जाएं और उन समस्त का कालक्रम से चिन्तन करते हुए दूसरे आठ वर्ष और लग जाएं। इसलिये कोई भी कार्य करने के लिये विस्मरण की खास आवश्यकता है।

अगर मनोनिर्णीत विषयो मे सन्तुलन होता है तो जिसे याद करना न चाहे वह विषय याद न आये। यदि याद न करने योग्य विषय भी याद आते रहे तो यह मन के सन्तुलन की खराबी कही जायेगी। ऐसी खराबी बढ़ जाए तो मनुष्य अस्वस्थ बन कर अ त मे उन्माद का रोगी बन जाता है।

"तीव्र स्मरण शक्ति" और "याद नही करनी हो फिर भी कोई बात याद आये" इन दो बातों मे महान भेद है। तीव्र स्मरण शक्ति मे नियत समय मे धारी हुई बात बराबर याद आती है। और दूसरी स्थिति मे आवश्यकता हो अथवा न हो पर एक विषय याद आता है। इसलिये पहली स्थिति इष्ट है, पर दूसरी स्थिति किसी भी दशा मे इष्ट नही है।

प्रश्न—एकाग्रता किसे कहा जाता है ?

उत्तर—मन की एक-वैषयिक चिन्तन स्थिरता को एकाग्रता कहा जाता है अर्थात् मन जब अन्य विषयो का विस्मरण करके कोई एक ही विषय का अवलम्बन लेता है, तब मन एकाग्र हो गया, ऐसा कहा जाता है। उदाहरण के तौर पर अश्व पर मन को एकाग्र

करना हो तो उस समय अश्व का ही विचार किया जा सकता है, पर गधा, ऊंट या हाथी का विचार नही किया जा सकता। दूसरी प्रकार से यों भी कहा जा सकता है कि अश्व को ही केन्द्र में रख कर जिस विचारधारा का अवलम्बन लिया जाता है, वह अश्व विषयक एकाग्रता है और उस समय उसके सिवाय जो भी कोई विकल्प उठते हैं वे सब विक्षेप है। इसलिये जो वस्तु भूलनी हो वह भूल जायें तब ही एकाग्रता सिद्ध होती है।

योग शास्त्र मे महर्षि पतजलि ने चित्त की पाच दशाएं बताई है, वे इस प्रकार है—

(1) क्षिप्त—खूब आन्दोलित अर्थात् बहुत ही अस्थिर

(2) मूढ—जड-प्रमाद युक्त।

(3) विक्षिप्त—प्रसग-प्रसंग पर स्थिरता का अनुभव करने वाला।

(4) एकाग्र—एकत्व के अवलम्बन से स्थिर रहने वाला।

(5) निरुद्ध—कोई भी तत्त्व के आलम्बन बिना स्थिर रहने वाला।

इस अवस्था में प्रमाद, विपर्यय, विकल्प, निद्रा या स्मृति आदि कोई भी वृत्ति नही रहती है। मात्र संस्कार ही शेष रहते हैं। इसलिये यहाँ एकाग्रता से भी मन की बहुत ऊंची स्थिति है, जो योग्य अभ्यास से साधी जा सकती है।

पूर्व पत्रो का पुन:-पुन: वाचन हो यह इष्ट है।

मगलाकांक्षी

धी०

मनन

स्मरण शक्ति एक अजीब शक्ति। भूलने के सात कारण; स्मृतिभ्रंश—उसके दो प्रकार, विस्मरण के लिए चित्त की पाच अवस्थाओ मे एकाग्रता मुख्य।



पत्र छठा

एकाग्रता के उपाय

प्रिय बन्धु !

तुम्हारा पत्र मिला। अक्षर पहले की अपेक्षा सुधरे है। विचार भी काफी व्यवस्थित बने हैं और प्रश्न अपने ठीक लक्ष्य को पकड़ रहे हैं। इसलिए तुम प्रगति के पथ पर हो, यह निश्चित है। पूछे हुए प्रश्नो के उत्तर निम्नलिखित है—

प्रश्न—एकाग्रता का स्मरण शक्ति के साथ क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—एकाग्रता का स्मरण शक्ति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे आन्दोलित पानी पर गिरने वाला चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब अस्थिर होता है। जैसे चचल चित्रपट पर गिरने वाला चित्र स्पष्ट दिखाई नही पड़ता है। जैसे निरन्तर हिलते फलक—(पाटिये) पर अभीष्ट अक्षर उकेरे (अकित) नही जा सकते, वैसे ही आन्दोलायमान मन पर सस्कार स्पष्ट नही जम पाते। इस कारण उनका चाहे जैसे, (चाहे उसे उस प्रकार से) स्मरण नही हो सकता। विद्यालय में पढते समय विषय गणित का चलता हो और विचार क्रिकेट या पतग के चलते हो, उस विद्यार्थी को यदि शिक्षक पूछ बैठे कि तुमने इस उदाहरण का भाव ठीक-ठीक समझा या नही, तो वह उन्हे क्या उत्तर देगा? शिक्षक बोल रहा था, सरस पद्धति से समझा रहा था और ब्लेक बोर्ड पर लिख भी रहा था; परन्तु उन विद्यार्थियो का मन उनकी किसी भी बात पर एकाग्र नहीं था, इस लिये वे कुछ भी याद नही रख सके।

प्रश्न—एकाग्रता प्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर—एकाग्रता को साधने के लिए अनुभवी पुरुषो ने अनेक उपाय बताये हैं, उनमे एक उपाय यह है कि जिस विषय पर एकाग्रता करनी हो, उसे केन्द्र मे स्थिर करना चाहिये और उसका विचार

(१) वर्ग (२) अवयव (३) गुण और (४) स्वानुभव इस क्रम से करना चाहिये। उदाहरण के तौर पर तुम्हे गाय पर मन को एकाग्र करना हो तो सर्वप्रथम गाय का चित्र मन में खड़ा करना चाहिए। फिर उसके वर्ग के सम्बन्ध मे विचार करना चाहिये वह इस प्रकार कि गाय एक पशु है, वह एक चतुष्पद प्राणी है। भैस, बकरी, अश्व, ऊँट, हाथी आदि भी चतुष्पद प्राणी है। वह एक दुधारू जानवर है। जैसे भैस दूध देती है, बकरी दूध देती है, वैसे ही यह भी दूध देती है, आदि-आदि। जब इस रीति से वर्ग सबधी विचारणा पूरी हो जाए, तब उसके अवयव संबधी चिन्तन करना चाहिए, जैसे कि गाय के चार पैर है। सिर पर दो सीग हैं। गले मे गल-कम्बल हैं। पीछे लम्बा पूँछ है, वगैरह-वगैरह। उसके बाद उसके गुणो के सबध मे विचार करना चाहिये। जैसे कि गाय बहुत ममतामयी होती है। उसे अपने मालिक के प्रति बहुत ही ममता भाव होता है, उसको जहाँ बाधा जाता है बन्ध जाती है। इसलिए कहावत है कि 'गाय और लड़की को जहा भेजो चली जाती है।'

गाय को बहुत से लोग खूब पवित्र मानते है। उसके दूसरे कारण तो चाहे जो हों, पर उसका दूध, दही, घी, गोबर और मूत्र ये पाँच वस्तुएँ तो बहुत ही उपयोगी है एवं बैलो की पूर्ति भी यही करती है आदि आदि। उसके बाद स्वानुभव से विचार करना। मैंने अमुक मित्र के यहाँ एक गाय देखी थी। वह रूप रग मे ऐसी थी। उस प्रसंग मे उसने अमुक प्रकार का दृश्य खडा किया था, आदि आदि अथवा गाय के विषय मे जो कोई अनुभवो का संग्रह हुआ हो तो उन्हे एक के बाद एक स्मृति-पटल पर उतारना। इस प्रकार विचार करने से मन गाय के विचारो मे ही खो जाएगा, एकाग्र बन जाएगा। इस सारी प्रक्रिया के बदले मात्र जो गाय, गाय, गाय की रटन लगायेगा तो संभव है कि थोडे ही पलो मे भैस, बकरी, अश्व आदि शब्द उसका स्थान ले लेगे और गाय पर कोई एकाग्रता नही हो पायेगी।

दूसरे मे इस प्रणाली से विचार करने की आदत डालने से मन बहुत व्यवस्थित बन जायेगा। जिससे वह हरेक वस्तु का विचार पद्धति से ही करने लगेगा।

प्रश्न—एकाग्रता साधने के लिए खास उपाय क्या है ?

उत्तर—एकाग्रता साधने के लिए महर्षि पतजलि ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान आदि साधन बताए है। उनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम है। शौच, सन्तोष तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान ये पाँच नियम है। शरीर स्थिर रह सके तथा मन व्याकुल न हो, ऐसी स्थिति मे बैठना आसन है। प्राण-पवन (श्वासोश्वास) को सर्व प्रकार से नियत्रण मे लेना प्राणायाम है। इन्द्रियों को अपने-अपने विषयो से निवर्तित करके चित्त के अनुकूल बनाना प्रत्याहार है। शरीर के हृदय आदि आन्तरिक भागो पर अथवा नासिका, भृकुटि आदि बाह्य भागों पर या देव गुरु की कोई मूर्ति विशेष पर एकतानता अनुभव करना ध्यान कहलाता है। ये साधन जो कि अति उच्च प्रकार की एकाग्रता साधने के लिए है तथापि इनके पीछे रहे सिद्धान्तों का उपयोग सामान्य एकाग्रना के लिए भी किया जा सकता है।

अब तुम जिनका प्रयोग कर सको वैसे कुछेक अनुभव-सिद्ध साधन बता रहा हूँ। उनका अभ्यास करने के लिए निम्नलिखित सूचनाएँ लक्ष्य मे रखना।

१ एकाग्रता के अभ्यास के लिए प्रतिदिन आधा घण्टा पृथक् निकालना।

२ अभ्यास करते समय शरीर और वस्त्र से शुद्ध होकर बैठना।

३ स्थान ऐसा पसन्द करना कि जहाँ तक बन सके घरघराट या हल्ला होने की सम्भावना न हो। प्रारभ मे इसकी खास जरूरत है।

४ आसन बिछाकर बैठना।

५ बैठने का ढग ऐसे रखना चाहिए कि जिससे मेरुदण्ड पर फैले ज्ञान तन्तु सजग रहे।

६ प्रात काल का समय अधिक अनुकूल माना जाना है।

प्रथम साधन

अंगुलि के पैरवों (पर्वो) पर १०८ की संख्या गिनो। उसके बीच मे किसी भी प्रकार का विक्षेप हो जाए, दूसरे विचार मन मे आ जाए तो भी इसका अभ्यास बराबर चालू रक्खो। यह गणना जब निर्विक्षेप सम्पन्न हो जाये तब इस संख्या को २५१ कर दो। इस रीति से क्रमशः आगे बढ़ाते हुए ५०१ और फिर १००१ तक ले जाओ।

द्वितीय साधन

कोई भी पुस्तक को खोल कर उसके एक पत्र मे कितने अक्षर अंकित हैं, उसकी गणना करो। ध्यान मे रखना कि गणना शब्दों की नही पर अक्षरो की करनी है। उत्तरोत्तर सूक्ष्म अक्षरों को गिनने का अभ्यास करो।

तृतीय साधन

इस पुस्तक के पचम पत्र की प्रतिलिपि करो। यह प्रतिलिपि एकदम बराबर होनी चाहिए। इसमे जिस प्रकार से वाक्य मुद्रित है, उसी रीति से वाक्य लिखने है। जहाँ अल्प विराम हो वहाँ अल्प विराम, जहाँ अर्ध विराम हो वहाँ अर्ध विराम और जहाँ पूर्ण विराम हो वहाँ पूर्ण विराम। दूसरे चिह्न भी यथा स्थान बराबर होने चाहिए। ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व न हो।

तुम्हारे द्वारा किया गया अनुलेखन कितना सही है, इसका निर्णय दूसरे के माध्यम से होने दो। प्रारम्भ मे अपनी भूले अपने आप अच्छी प्रकार से नही पकड सकोगे।

जब प्रतिलिपि एक दम शुद्ध हो जाए तब आगे बढो

चतुर्थ साधन

हथेली मे चने लेकर उनकी गिनती करो। फिर मूंग लेकर गणना करो, शेष मे चावल के दाने गिन सको, इतने आगे बढो।

यह विषय अभ्यास का है, इसलिए उसे सिद्ध करने के लिए बराबर कोशिश करो। भूल या अनिश्चितता बिल्कुल नही करो।

पंचम साधन

बराबर सम बैठकर आँखें बन्द करो। वातावरण में कौन सी कौन सी प्रकार की आवाज हो रही है, उनकी नोध लो—मन मे सूची बनाओ और हर एक आवाज किस चीज की है, यह समझने का प्रयत्न करो। यह अभ्यास तब तक चालू रखो जब तक कि दूर की आवाज को भी बराबर सुन सको।

छठा साधन

अतीत काल के हुए व्यवहारों का पिछले क्रम से याद करो। उसी रीति से उसके अगले दिन मे भी याद करो। यह क्रम एक सप्ताह तक बनाओ। सात दिन तक की घटनाओं का इस क्रम से स्मरण करो।

सप्तम साधन

विगत महीने की खास खास घटनाओं को याद करो, फिर उसके अगले महीने की घटनाओ को भी याद करो। यह क्रम बारह मास तक ले जाओ, वह बराबर हो इसलिए इस क्रम को वर्ष बार पीछे ले जाओ। कुल सोलह वर्ष तक की घटनाओ को इस रीति से याद करो।

अष्टम साधन

आँखे बन्द करो। मन मे आठ पँखुड़ी वाले एक कमल की कल्पना करो। उसके मध्य भाग मे ॐकार की स्थापना करो, उसमे चित्त को एकाग्र करो। निरन्तर थोड़े समय के लिए यह अभ्यास चालू रखो।

नवम साधन

आँखें बन्द करो। किसी भी प्रकार के विचार मन मे न आए, वैसे प्रयत्न करो। इस अभ्यास का प्रारम्भ दो मिनट से शुरू करके ४८ मिनट तक ले जाओ।

दशम साधन

आँखे बन्द करो। निम्नलिखित विषयों के सिवाय कोई भी विषय पर विचारणा करो।

अश्व, वानर, स्त्री पैसा, मोटर, प्यार और औषधि । इन विषयो का विचार बिल्कुल न आये तो समझना कि तुम एकाग्रता साधने मे सफल हो गये हो ।

इन साधनो का उपयोग क्रमश करने पर विशेष लाभ होगा ।

मगलाकाक्षी
धी०

मनन

एकाग्रता की आवश्यकता, विषय को केन्द्र स्थान मे रखकर उसका वर्ग, अवयव, गुण और स्वानुभव से विचार, करना यौगिक उपाय दस प्रकार के साधन । साधन केवल पढ लेने के लिए नही, किन्तु अभ्यास करने के लिए हैं ।



☐

सप्तम पत्र

साधक की परिचर्या (१)

प्रिय बन्धु !

स्मरण-शक्ति के विकास के इच्छुक व्यक्ति को किस प्रकार की परिचर्या रखनी चाहिए, उसके कुछ नियम इस पत्र मे दे रहा हूँ।

१. योग और अध्यात्म का गहरा अनुभव रखने वाले भारत के महर्षियो ने छान्दोग्य-उपनिषद् मे कहा है कि 'सत्त्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः' सत्त्व की शुद्धि होने पर अखण्ड स्मृति की प्राप्ति होती है।' इस आर्ष वचन का व्यापक अर्थ शरीर और मन इन दोनो की पवित्रता अथवा नीरोग दशा है क्योकि स्मृति सुधार के लिए शरीर और मन की अवस्था नीरोग होना अभीष्ट है।

२ शरीर जब नीरोग हो, इन्द्रियाँ जब पूरी तरह सजग और स्वस्थ हो, तब ज्ञान-तन्तु बराबर सक्रिय होते है। इसी कारण उस समय जो कुछ ग्रहण करने मे आता है वह सम्यक् प्रकार से याद रह जाता है।

३ स्वस्थ शरीर वाला साधक एक आसन मे दीर्घ समय तक बैठ कर अपने विषय मे एकाग्र हो सकता है। जबकि छोटे-मोटे रोग वाले को बार-बार थूकने के लिए उठना पडता है। पैरो को पसारना और संकुचित करना पडता है। आलस मरोडना पडता है। इसलिए वे दीर्घ समय तक एक आसन मे नही बैठ सकते हैं। वैसे ही अपने विषय मे एकाग्र भी नही हो पाते हैं।

४ कितने ही रोग ऐसे होते है जो स्मृति पर सीधा असर डालते है। उदाहरण के तौर पर हार्ट का दर्द (फेफड़े का अपस्मार).

उपदंश-क्षय की द्वितीय और तृतीय अवस्था, अनिद्रा, स्खलित निद्रा, सिर का दर्द, आँतो की व्याधि और बार-बार स्वप्न दोष आदि। ये रोग धीरे-धीरे स्मृति की तीव्रता को खोते चले जाते हैं और अन्त मे थोडा याद रखना भी मुश्किल हो जाता है। इन रोगियो को स्मृति-सस्कार के लिए पहले से ही रोगो का उचित उपचार करना चाहिए।

५ जिनके जन्म से ही दिमाग की कमजोरी हो उनकी बात एक बार, एक तरफ रखें; परन्तु जिनको चक्कर आने से या धक्का लगने पर अथवा भारी बुखार आने पर या टाईफाइड जैसी बीमारी पीछे पडने पर ज्ञान-तन्तुओं मे निर्बलता आती है और उसी कारण से स्मृति मे मन्दता आती है। उन्हे बिना विलम्ब कुशल चिकित्सको की देख-रेख मे उपचार कराना चाहिये।

६. शरीर, मानसिक विकास का प्रथम साधन है।

७. गुलाबी निद्रा शरीर और मन को ताजगी देने के लिए उत्तमोत्तम दवा हैं। जो वैसी नीद लेने के लिए भाग्यशाली है, उनका मन प्रातःकाल उठते समय प्रसन्नता से भरपूर होता है। उसमे भी यदि यह समय सूर्योदय से डेढ या दो घडी पहले का हो, तो वायुमण्डल की सात्त्विकता से पूर्ण होकर भारी एकाग्रता अनुभव की जा सकती है, गहरा चिन्तन किया जा सकता है और सीखी हुई विद्या या अतीत के अनुभवो को सरल रीति से स्मृति मे लाया जा सकता है। इसके विपरीत, जो लोग रात्रि मे बहुत देर तक जागते हैं और सुबह विलम्ब से उठते हैं। उनके मनो मे राजस और तमोगुण की वृद्धि हो जाती है, जिससे उनकी बुद्धि तथा स्मृति कुण्ठित हो जाती है। 'रात रहे ज्याहरे पाछली खट घड़ी, साधु पुरुष ने सूई न रहेबु' यह पक्ति नरसिंह मेहता ने पूर्व पुरुषो की वैसे ही अपने अनुभव पर लिखी है।

८ प्राचीन काल मे शीघ्र सोकर शीघ्र उठने की परिपाटी का सम्यक् प्रकार से अनुसरण होता था। इस कारण उनके शरीर नीरोग, मन मजबूत और हृदय सात्त्विकता से भरपूर रहते। जबकि आज धन्धे प्रधान और विलासी जमाने मे बहुत देर तक

नाटक-सिनेमा देखना, चाय-पानी पीना, ताश या जुआ खेलना आदि बुरी आदतों के कारण देर से उठने की कुटेव बढती चली जा रही है। इस कारण प्रातःकाल का पवित्र समय जिसे कि ब्रह्म मूहूर्त कहा जाता है, उसका यथेष्ट लाभ नही लिया जा सकता।

९. सामान्य मनुष्य को सात घण्टे की नींद काफी है। कुछ साधक उतनी ही ताजगी पांच-साढे पाँच घण्टे की नीद से भी प्राप्त कर लेते है। इसमे मुख्य बात यह है कि जो नीद ली जाए, वह दिमाग को शान्त करने वाली होनी चाहिए। अनेक साहित्य-स्वामी, वैज्ञानिक और राज्याधिकारी पुरुष इस रीति से स्वल्प पर सुखद निद्रा लेकर, कार्य करने के लिये काफी समय बचा लेते है जो उनके अग्रिम जीवन मे यश और लाभ देने मे उपयोगी सिद्ध होता है।

१०. शरीर मे से तमोगुण का प्रमाण बहुत घटने के बाद अल्पनिद्रा भी पूरी विश्रामदायक साबित होती है। योग सिद्ध पुरुष नीद लेते ही नही है। वैसा होने पर भी उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति सन्तुलित और सुदृढ बनी रहती है।

११ शीघ्र उठकर तुम्हे क्या-क्या करना है, यह भी समझ लेने की आवश्यकता है। उनका क्रम साधारणतया निम्नलिखित बनाया जा सकता है—

(क) उठते ही कुछ मिनटो तक इष्टदेव का स्मरण करना।
(ख) वह पूर्ण होते ही ॐकार का जप करना।

श्री छान्दोग्य-उपनिषद् मे ॐकार की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा है—

यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृणान्येव
ॐङ्कारेण सर्वावाक् सन्तृणोकार एवेदं सर्वम्।

ॐकार का अर्थ पृथक् पृथक् अनेक प्रकार से किया गया है, परन्तु उसका सर्व सामान्य अर्थ परमात्मा है। इसलिए उसका जाप कोई साम्प्रदायिक क्रिया नही है पर आत्म शुद्धि का परम मार्ग है।

(ग) उसके बाद प्रार्थना का आशय भावशुद्धि होना चाहिए। इस प्रार्थना के अन्त मे निम्न श्लोक से सरस्वती की स्तुति करनी चाहिये।

या कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवला या शुभ्र-वस्त्रावृता,
या वीणावर-दण्ड-मण्डित-करा या श्वेत-पद्मासना।
या ब्रह्माच्युत-शकर-प्रभृतिभिर्देवै. सदा वन्दिता,
सा मा पातु सरस्वती भगवती नि शेष-जाड्यापहा।

अर्थात्—जो मोगरे के फूल, चन्द्रमा, हिम और मुक्ता हार के समान उज्ज्वल श्वेत है, जिसने शुभ्र श्वेत वस्त्र धारण कर रखे है, जिसके हाथ वीणा के उत्तम दण्ड से शोभित हैं, जो श्वेत कमल के आसन पर बैठी है, जो ब्रह्मा, विष्णु और शकर आदि के द्वारा सदा वन्दित है; वह अज्ञान का सर्वथा नाश करने वाली पूज्य सरस्वती मेरा रक्षण करे।

(घ) फिर 'ॐ ह्राँ एँ ह्री ॐ सरस्वत्यै नम.' यह भारतवर्ष के सिद्ध सारस्वत-मन्त्र का १०८ बार या उससे अधिक जाप करना। ऐसा माना जाता है कि यह जाप ११००० बार होने पर मन्त्र सिद्धि हो जाती है। अनुभव के आधार पर भी इस मान्यता मे तथ्य जान पडता है।

(ङ) प्रात काल मे ही मल विसर्जन हो जाए यह उचित है। इस समय मे दस्त बराबर साफ हो जाए उस तरफ ध्यान देना चाहिए। अगर शौच बराबर नही होता हो तो भोजन मे उचित अदल-बदल करनी चाहिये। समय-समय पर ऐनिमा लेना अथवा रात्रि मे सोते समय ठण्डे पानी से मल-शुद्धि चूर्ण लेना चाहिये। इस चर्ण से एक दस्त बराबर साफ आ जायेगा। मल शुद्धि चूर्ण बनाने की रीति निम्नोक्त है—सुखाडी हरड २ तोला, सोनामुखी २ तोला, रेवद चीनी २ तोला, सैन्धव नमक दो तोला, सेंचल नमक आधा तोला, काली मिरच आधा तोला, कुल साढे नौ तोला। इन वस्तुओ को अच्छी तरह देखकर लेना चाहिये तथा एकदम साफ करके बारीक कूट कर

एक शीशी मे भरले। इतना चूर्ण लगभग ५० वार काम मे आ सकता है। आवश्यकता अनुरूप इसके प्रमाण को को कम वेसी किया जा सकता है।

यदि दूसरी कोई औषधि अनुकूल पडती हो तो प्रासगिक रूप से उसका उपयोग करने मे भी कोई आपत्ति नही है। परन्तु वह अधिक विरेचक (दस्तावर) नही होनी चाहिये, यह खास ध्यान में रखे।

मल विसर्जन के बाद मल-मूत्र के मार्ग तथा हाथ-पग आदि अवयवो की स्वच्छ जल से अच्छी तरह शुद्धि कर लेनी चाहिये। उसके लिये कहा गया है कि—

मेध्यं पवित्रमायुष्यमलक्ष्मीकविनाशकम् ।
पादयोर्मलमार्गाणा शौचाधानमभीक्ष्ण ॥

हाथ, पग और मल-मूत्र आदि के मार्गो को जल से स्वच्छ करना मेधाकारक, पवित्र, आयुष्यवर्धक और दारिद्रय-विनाशक माना जाता है।

(च) उसके बाद दान्तून से दाँत, जीभ और आंखो को स्वच्छ करना चाहिये। दाँतो की स्वच्छता के लिए बबूल की दान्तून तथा नमक उत्तम है। शास्त्रीय पद्धति से बना हुआ मजन भी प्रयोग मे लाया जा सकता है। उसके लिए आयुर्वेद का मन्त्र निम्नोक्त है—

कदम्बे तु धृतिर्मेधा, चम्पके दृढवाक्श्रुति ।
अपामार्गे धृतिर्मेधा प्रज्ञाशक्तिस्तथासने ॥

कदम्ब वृक्ष की दान्तून से धृति और मेधा, चम्पक की दान्तून से वाणी तथा श्रवण शक्ति, अपामार्ग-आगा आधीभाडा की दान्तून से धैर्य और बुद्धि और आसन (अश्वगध) की दान्तून से प्रज्ञाशक्ति विकसित होती है।

सप्ताह में एकाध बार माजुफल उबाल कर, उसमे थोडी फूली हुई फिटकरी डाल कर उससे कुल्ले करना हितप्रद है।

इससे दांत के ऊपर की पपड़ी और रस्सी दूर हो जाती है तथा दांत के मसूड़े मजबूत बनते है।

कब्ज, नि:सत्त्व खुराक, अति गर्म और अति ठण्डे पदार्थों का सेवन तथा दूसरे कारणो से होने वाला दांतो का दर्द मानसिक शक्ति मे भी बहुत विघटन पैदा करता है।

दन्त शुद्धि के साथ जीभ की शुद्धि भी होनी चाहिए। जिह्वा पर जमा हुआ मैल प्रतिदिन दूर कर देना चाहिये।

आँख की शुद्धि स्वच्छ जल के छबके (छीटे) मार कर अथवा मिट्टी के बर्तन मे रात्रि समय भीगे त्रिफला के शीतल जल से करनी चाहिए। त्रिफला सस्ती से सस्ती औषधि है। इतने सस्ते खर्च मे जो लाभ होता है वह बहुत अधिक है। ज्ञान वृद्धि मे आँखें अति उपयोगी है। इसलिए उनकी सुरक्षा ठीक करनी चाहिए।

(छ) मुख शुद्धि होने के बाद नासिका के द्वारा पानी पीना चाहिए, उसके लिए ग्रन्थो मे कहा गया है कि—

विगतघन-निशीथे प्रातरुत्थाय नित्य,
पिबति खलु नरो यो नासरन्ध्रेण वारि।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो,
बलिपलितविहीन. सर्वरोगैर्विमुक्त ॥

मेघ रहित रात्रि बीतने पर शीतकाल और ग्रीष्मकाल मे प्रतिदिन प्रात काल उठते ही जो मनुष्य नासिका से जल पीता है, वह बुद्धि सम्पन्न, गरुड़ समान दृष्टिवाला, झुर्रियो और सफेद बालो से रहित तथा समग्र रोगो से मुक्त हो जाता है।

नासिका द्वारा पीया जाने वाला पानी रात्रि मे ताम्बे के लोटे मे भर कर रखा जाये और सुबह इसका प्रयोग किया जाय तो बहुत अधिक फलदायक होता है।

(ज) थोडी देर प्रात कालीन शुद्ध वायु का सेवन करना चाहिये। प्रात: परिभ्रमण के लिए कहा गया है कि

यत्तु चक्रमणं नाति देहपीडाकर भवेत् ।
तदायुर्वलमेधाग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम् ॥

जो पर्यटन, शरीर को बहुत पीडाकारक न हो अर्थात् बहुत अधिक तकलीफ देने वाला न हो तो वह आयु, बल, बुद्धि और पाचन शक्ति का वर्धक होता है और इन्द्रियो को प्रबुद्ध रखता है।

(झ) फिर अनुकूल आसन करने चाहिये, उनमे शीर्पासन खास करना चाहिए। दोनो हाथो की हथेलियो पर सिर को नीचा रखकर पग आकाश मे अधर रखे जाये, उसे शीर्षासन कहते है। यह आसन करने से मस्तिष्क को प्रचुर मात्रा मे रक्त मिलता है, जिससे मानसिक शक्तियो का उन्मेष सम्यक् प्रकार से होता है।

(ञ) फिर प्राणायाम करना। प्राणायाम अर्थात् प्राण का आयाम, प्राण की कसरत, अर्थात् प्राण को नियत्रण की शिक्षा। इस सम्बन्ध मे वृहदारण्यक उपनिषद् और छान्दोग्य उपनिषद मे कहा है—

"वाणी, आँख, कान और मन इन सब मे प्राण श्रेष्ठ है इसलिए कि वाणी, आँख, कान और मन न हो तो प्राणी जी सकता है पर प्राण न हो तो प्राणी जीवित नही रह सकता।" तैत्तिरीय उपनिषद् (२-३) मे उल्लिखित है कि प्राण से ही देव, मनुष्य और पशु श्वासोश्वास लेते है।

अनुभवियो का अभिमत है कि—"शारीरिक परिश्रम करने वालो की अपेक्षा मानसिक परिश्रम करने वालो के प्राणतत्त्व का व्यय अधिक होता है, इसलिए मानसिक विकास के अभिलाषियो को प्राणायाम अवश्य करना चाहिए।

प्राण का मुख्य भण्डार मस्तिष्क मे स्थित ब्रह्म रन्ध्र मे, दिमाग मे और पृष्ठ वश के भाग मे आया हुआ है। उसका चेतना उत्पन्न करने वाले ज्ञान तन्तुओ के साथ

निकट का सम्बध है और रक्त को शुद्ध रखना तथा मन को स्वस्थ रखना यह भी इसी का काम है।

इस विषय के मर्मज्ञो का अभिमत है कि 'प्राण जब अपनी स्वाभाविक गति को छोड़कर बाँका-टेढा चलना शुरू करता है तब ही रोगो की उत्पत्ति होती है। खाँसी प्राण की विकृति का प्रथम चिह्न है। वीर्य का स्खलन तथा शक्ति का विनाश भी प्राण की विक्रिया का ही प्रताप है।

अपने चारो तरफ वायुमण्डल में प्राण तत्त्व ठसाठस भरा हुआ है। पर उसका लाभ कितने लोग उठा पाते है?

यदि प्राण तत्त्व को उचित प्रकार से ग्रहण किया जा सके तो अनेक व्याधियाँ इस शरीर से अपने आप चली जाती है। परिणाम स्वरूप पैसा, समय की बर्बादी तथा व्यर्थ की तकलीफ से व्यक्ति बच जाता है। मुफ्त की कीमत कितनी है ? विज्ञ मनुष्य इसका अंकन जरा भी कम नही करते है, योग्य लाभ उठाना चाहिये।

प्राणायाम यह श्वासोश्वास की कसरत है, जो हृदय और मस्तिष्क को उद्दीप्त करने के लिए बहुत उपयोगी है। अपने देश मे बहुत प्राचीन काल से उसका महत्त्व पहचाना गया है। इसलिए ही महर्षि पतजलि ने उसको योग के आठ अङ्गो मे चतुर्थ स्थान प्रदान किया है।

प्राणायाम करने की पद्धति यह है कि सर्वप्रथम पद्मासन मे स्थिरता पूर्वक बैठना, फिर बायाँ हाथ बाये जानु पर सीधा लटकता रखना और दाहिना हाथ नाक के आगे लाकर उसकी चिटली अ गुली नासिका के बाये भाग पर तथा अ गूठा दक्षिण भाग पर रखना चाहिए। अब चिटली अ ंगुली से उस भाग को दबाकर मात्र दक्षिण नासिका के द्वारा ही श्वास लेना प्रारम्भ करना चाहिए। इस रीति से पूरा श्वास लिया जाए तब तक अ ंगूठे से दाहिनी नासिका बन्द रखनी चाहिए और श्वास को रोक

कर रखना चाहिए। थोड़ी देर बाद चिटली अगुली उठा कर बायी नासिका से श्वास को धीरे-धीरे छोड़ देना चाहिए।

इतनी क्रिया का यह एक प्राणायाम हुआ। ऐसे पांच प्राणायामों से प्रारम्भ करके धीरे-धीरे बीस प्राणायामो तक आगे बढना चाहिए।

प्राणायाम करते समय इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये कि इस क्रिया से मुझे खूब लाभ मिल रहा है। मेरे मस्तिष्क के प्रत्येक भाग मे तथा रग-रग मे शुद्ध रक्त का सचार हो रहा है और दूषित मल बाहर निकल रहा है। मेरी प्राण शक्ति खूब सतेज हो रही है। मेरा शरीर तथा मन स्वास्थ्य से भरपूर बन रहा है।

प्राणायाम पर अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे गये है। इसलिए आवश्यकता महसूस हो तो उनमे से प्रमाणभूत एक-दो ग्रन्थ गहराई से पढ़ लेने चाहिये।

यह पत्र प्रमाण मे कुछ लम्बा हो गया है। इसलिए अब अधिक नही लिखकर यही समाप्त करता हूँ। साथ-साथ मैं ऐसी आशा रखता हूँ कि इनमे से जो-जो विषय आचरण मे लाने योग्य प्रतीत हो, उन्हे बिना विलम्ब आचरण मे उतारकर लाभ उठाओगे।

प्रात.काल की इस क्रिया के बाद क्या करना चाहिए ? इसकी सूचना अब बाद के पत्र मे ज्ञापित करूँगा।

मगलाकाक्षी
धी०



अष्टम पत्र

साधक की चर्या (२)

प्रिय बन्धु !

तुम्हे गत पत्र की विज्ञप्ति के मुताबिक प्रातःकाल की विधि के बाद के कार्यक्रम की रूपरेखा लिख कर भेज रहा हूँ। इन सूचनाओं का महत्त्व सही-सही पहचानना और अपनी जीवन चर्या में अपेक्षित परिवर्तन करना।

१. लगभग सात बजे तक प्रातःकाल की समग्र क्रियाये सम्पन्न कर दुग्ध पान करना। इसका लाभ अनुभवी पुरुषो ने सौ सौ मुखों से गाया है। उन्होने बताया है—

> दुग्ध सुमधुर स्निग्ध वात-पित्त-हर सरम्,
> सद्य शुक्रकर शीत सात्म्य सर्वशरीरिणाम्।
> जीवन वृहण बल्यं मेध्य बाजीकर परम्,
> वय स्थापनमायुष्य सन्धिकारी रसायनम्॥

दूध मधुर, स्निग्ध, वात पित्त नाशक, दस्त साफ लाने वाला, वीर्य को जल्दी पैदा करने वाला सब प्राणियो के लिए अनुकूल, जीवन रूप, पुष्टिकारक, बलदायक, मेधा वर्धक, धातु की पुष्टिकर्ता, आयुष्य की स्थिरता तथा वृद्धि करने वाला रसायन है। दूध के साथ दूसरी अनुकूल वस्तुये भी नाश्ते के रूप मे ली जा सकती है। चाय, कॉफी और कोकाकोला जैसे पेय पदार्थों का इन दिनों मे बहुत प्रचार हो गया है, पर दूध की तुलना मे सब निस्सार है, निःसत्त्व हैं। इनमे लाभ की अपेक्षा हानि की सम्भावना अधिक है। देश के उभरते बालकों को

विद्यार्थियो को तथा युवकों को आवश्यक मात्रा में दूध मिलता रहे, उसके लिए समाज और राज्य को समुचित व्यवस्था करने की अनिवार्य आवश्यकता है। जिस देश मे एक समय दूध और घी की नदियाँ बहती थी, इस देश की उभरती प्रजा को आज पूरा पीने जितना दूध भी नही मिलता है और जो मिलता है वह भी सब मिलावट वाला, यह बात कितनी खेदजनक है। इस स्थिति मे उभरती प्रजा बुद्धि-बल मे कितनी प्रगति कर सकेगी? कितनी सुचारु व्यवस्था बन सकेगी ?

भैस की अपेक्षा गाय का दूध स्मृति के लिए अधिक लाभदायक माना गया है। गर्दभी का दूध बुद्धिमांद्यकर और घोडी का दूध हृदय के लिए अहितकर है। बकरी का दूध पूरी तरह पथ्य और बुद्धि शक्ति के लिए मध्यम है।

२. खान-पान का प्रभाव मनुष्य की बुद्धि और स्मृति पर पडता है, इसलिए आहार यदि सात्त्विक हो तो बुद्धि सात्त्विक बनती है, आहार राजसिक हो तो बुद्धि राजसिक बनती है और आहार तामसिक हो तो बुद्धि तामसिक बनती है। इसीलिए कहा गया है कि—

आहार. प्राणिन सद्यो बलकृद् देहधारिण: ।
स्मृत्यायु शक्ति-वर्णौजः सत्त्व-शोभा-विवर्धन ॥

सात्त्विक आहार त्वरित ही बल को उत्पन्न करता है तथा देह को धारण करता है, वैसे ही स्मृति, आयुष्य शक्ति, वर्ण, ओजस्, बुद्धि और शोभा का वर्धन करता है।

३. नीचे की वस्तुओ का उपयोग स्मृति को सुधारता है। गाय का दूध, ताजा मक्खन, मधु, मिसरी, गेहूँ, चावल, बादाम, अखरोट केला और अमरूद।

४. निम्नोक्त वस्तुओ का प्रयोग स्मृति को विकृत बनाता है।—

मदिरा, भाग, गाजा, चरस, अतिकटुक पदार्थ, अतितिक्त पदार्थ, टीडोलाँ, सुपारी तथा नागरवेल के डण्ठल सहित पान।

५. शेष वस्तुएँ मध्यम है।

६ स्मृति साधकों के लिए गरिष्ठ मिष्ठान्न हितावह नही है। वैसे ही ठूंस-ठूंस कर खाना भी नुकसान करने वाला है। साधारणतया भूख की अपेक्षा कुछ कम खाना हर प्रकार से लाभप्रद है। रात्रि मे देर से खाकर शीघ्र सोने की आदत अनेक रोगो को उत्पन्न करती है। खासकर यह कुटेव मानसिक जडता पैदा करती है। सन्ध्याकालीन भोजन और निद्रा के बीच तीन घण्टा का अन्तर रहना अभीष्ट है।

७ शयन से पहले हाथ-पग और मुंह धो लेना चाहिए। उस समय कुल्ला करके मुंह को एकदम साफ कर लेना चाहिए, जिससे दात आदि मे कोई कचरा न रहे।

८ वीर्य शरीर का राजा गिना जाता है। बल, बुद्धि, कान्ति तथा स्मृति का आधार उसी पर निर्भर है। इसलिए जिसने वीर्य का सचय उत्तम प्रकार से किया है वह बलवान्, बुद्धिमान्, कान्तिमान् और तीव्र स्मृति वाला बन जाता है। उसके लिए भीष्म पितामह, अरिष्ट नेमि, वीर हनुमान आदि के उदाहरण आदर्शरूप है। दुनिया के सबसे महान् गणितवेत्ता सर आइजेक न्यूटन और महान् तत्वज्ञानी काट दीर्घायु बने उसका कारण उनका ब्रह्मचर्य पालन ही था। 'हर्बर्ट स्पेन्सर' और 'स्विडन वर्ग' जैसे समर्थ विद्वान् भी आजीवन ब्रह्मचारी थे।

हस्तदोष और अति समागम वीर्य को सम्पूर्ण तरह से नष्ट करने वाले है। उनसे धारणा और स्मृति का बल जल्दी ही क्षीण हो जाता है।

गृहस्थो के लिए स्वदारासन्तोष अर्थात् अपनी स्त्री से सन्तोष यह ब्रह्मचर्य के तुल्य है। इसके लिए परस्पर का स्नेह आवश्यक है।

९ जिसका मन समग्र समय तीव्र मोहासक्त विचारयुक्त अथवा आवेश भरे विचारो के अन्तर्द्वन्द्व मे रहता है। वह शीघ्र ही थक जाता है और उसकी शक्ति मन्द पडने लगती है। यदि ऐसा अत्याचार अधिक समय चालू रहे तो उसमे से मन की

अस्थिरता, विचार शून्यता, भ्रम, चक्कर, अनिद्रा, सिरदर्द आदि रोग हो जाते हैं। इसीलिए कहा है कि—

शोक क्रोधश्च लोभश्च, कामो मोह परासुताः।
ईर्ष्या मानो विचिकित्सा, घृणासूया जुगुप्सता॥
द्वादशैते बुद्धिनाश-हेतवो मानसा मलाः।

शोक, क्रोध, लोभ, काम, मोह, पर-पीडक विचार, द्वेष, अहंकार, संशय, घृणा, परदोषदर्शिता और परनिन्दा ये बुद्धि नाशक मानसिक दोष हैं।

०. शरीर और मन इन दोनों को योग्य आराम की आवश्यकता है। इसलिए निम्नलिखित सूचनाएँ ध्यान मे रखनी चाहिए।

१ पर्याप्त निद्रा।

२. जागृत अवस्था मे डेढ या दो घण्टे का आराम। एक साथ इतना समय मिल सके तो ठीक है अन्यथा दो विभाग करके इतने समय तक आराम करना। हम आराम कर सकें ऐसी स्थिति नही है, यह मानने वाले और कहने वाले गलत रास्ते पर हैं। आराम नई शक्ति को प्राप्त करने का साधन है। खान-पान, व्यायाम और प्राणायाम आदि उतना ही जरूरी है, धांधली का जीवन (अत्यन्त व्यस्तता का जीवन) कीमती जीवन के अनेक वर्षों को कम कर देता है।

३. आराम करने के लिए आराम कुर्सी, सोफा, सतरजी या दूब पर निश्चिन्त गिरना चाहिए।

४. थोड़ी देर शवासन में सोना चाहिए।

५. समग्र विचारो और चिन्ताओ को छोड़कर मन को हल्का बनाना चाहिये।

६. मन को तनावग्रस्त से तनावग्रस्त रखे उतना काम का बोझ सिर पर कभी नही रखना चाहिए और उसी कारण से उस दिन अस्थिर या अति साहसिक कार्य मे प्रवेश नही करना चाहिए।

७ आराम के समय में कुछ पढना आवश्यक लगे तो हल्का साहित्य नही पढना चाहिए। उसके लिए अच्छे साप्ताहिक और मासिक पत्र पत्रिकाओ को पसन्द करके रखना चाहिए अथवा कथा, वार्ता और उपदेशात्मक अन्य साहित्य का संग्रह पास में रखना चाहिये।

११. पन्द्रह दिन में एक उपवास करने का नियम रखना चाहिये। यह उपवास एकदम निराहार होना चाहिए, अगर वैसे न बन सके तो उसमे अल्प फलाहार लेना चाहिए पर पेट भरकर नही खाना चाहिए। उपवास के समय मे प्रार्थना, भक्ति और स्वाध्याय आदि की तरफ विशेष लक्ष्य रखना जरूरी है।

१२. तप, जप और ध्यान ये मानसिक शुद्धि के लिए उत्तम प्रकार के अनुष्ठान है।

१३ प्राज्ञ पुरुषो का अनुभव ऐसा है कि—

सतताध्ययन वाद: परतन्त्रावलोकनम्।
सद्विद्याचार्यसेवा च बुद्धि-मेधा-करो गण ॥

निरन्तर अध्ययन-अभ्यास, शास्त्र चर्चा, अन्य शास्त्रों का अवलोकन, सद् विद्या को धारणा और गुरुजनो की सेवा यह बुद्धि तथा मेधा शक्ति को बढाने वाला गुण समूह है।

१४ यह चर्या तुम्हारे मार्ग-दर्शन के रूप मे बतलाई है। इसका अक्षरश: पालन न हो तो उसमे से जितना बन सके उतने विषयो पर आचरण करना, पर साथ मे इतना याद रखना कि सत्त्व-शुद्धि के अभाव मे उच्च प्रकार की मानसिक शक्तियाँ उपलब्ध होना अशक्य है।

इनमे से जिन जिन बातो पर अमल करो उनको एक सूची बना लेना और किस किस विषय मे आचरण नही कर पाते हो, उनकी भी एक सूची बना रखना। फिर शान्त चित्त से विचार करना कि उन विषयो मे तुम किस कारण से प्रवेश नही कर पाते

हो, संभव है कि इस विचारणा के बाद शेष रही बातो को भी व्यवहार में उतारने के लिए तुम तत्पर हो जाओ और इस प्रकार क्रमशः प्रगति कर सको।

तुम्हारी निरन्तर प्रगति हो। इस शुभकामना के साथ विश्राम करता हूँ।

मगलाकांक्षी
धो०



पत्र नवम

इन्द्रियों की कार्यक्षमता

प्रिय बन्धु !

मन के रग ढंग को सुधारना—मन की स्थिति को संस्कारित करना, यह स्मरण शक्ति के विकास का मूल पाया है। इस पाये को अनन्य रूप से मजबूत बनाने के लिये एकाग्रता अनिवार्य है, जिसकी सिद्धि का मुख्य आधार उचित चर्या पर टिका हुआ है। इसलिए तुम्हारा ध्यान सर्व प्रथम एकाग्रता और चर्या की तरफ आकृष्ट करता हूँ।

यह बात तुम निश्चित मानना कि 'नीव बिना की दीवार' यह जैसे एक असगत कल्पना है अथवा 'खेत बिना की खेती' यह जैसे एक निराधार उडान है, वैसे ही साधना बिना की सिद्धि, यह भी एक असगत और निराधार कल्पना है। इसलिए साधना के साथ भली प्रकार सपृक्त रहना और क्रमश उसमे आगे बढना, यही सक्षिप्त, सरल और हितावह मार्ग है। प्रथम मूल अक्षरों को सीखने पर ही जैसे शब्द, पद, वाक्य, परिच्छेद, प्रकरण और ग्रन्थो को लिखा जा सकता है अथवा ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ और ९ इन दश अको को सीखने पर जैसे गणित के अनेक हिसाब सीखे जा सकते हैं वैसे ही स्मरण शक्ति से सबद्ध कुछेक सिद्धान्त ठीक-ठीक समझ लेने पर और उनका उपयोग करने की आदत डालने पर 'अधिक' और 'अधिक सुन्दर' स्मरण रह सकता है।

इस पत्र मे तुम्हारा ध्यान इन्द्रियो की कार्यक्षमता की तरफ आकृष्ट करना चाहता हूँ क्योकि विषयो को ग्रहण करने मे मुख्य साधन इन्द्रियाँ है। सम्भवतः तुम्हारा प्रश्न होगा कि एकाग्रता से उत्पन्न मन का बल जब विषय को यथार्थ रीति से ग्रहण कर

सकता है, तब उसके साधनो पर विचार करने की क्या अपेक्षा है ? पर प्रिय बन्धु ! यह प्रश्न यथार्थ नही है। 'शक्ति' के साथ साधनों का विचार भी अवश्य करना पडता है। हाथ मे तलवार चलाने की ताकत होने पर भी यदि तलवार ही नकली हो तो उससे क्या इच्छित कार्य सम्पन्न हो सकता है ? धन के द्वारा दूध, घी, अनाज और सब्जी खरीदी जा सकती है। पर वे खरीदी हुई वस्तुएँ शुद्ध न हो तो ? इसलिए शक्ति के साथ साधन की योग्यता (शुद्धता) का विचार करना भी आवश्यक है।

अपनी इन्द्रियाँ एक प्रकार से यन्त्रो के तुल्य है। यन्त्रों को यदि साफ न रखा जाए अथवा उनका उपयोग करने के बदले एक तरफ रख दिया जाए तो उन पर जग चढ जाता है और वे निकम्मे बन जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ रूपी यन्त्र भी यदि स्वच्छ न हो तथा उपयोग मे नही लिए जाते हो तो बेकार या बेकार के समान बन जाते है। जो वस्तु जितना काम देने के योग्य हो, वह उससे अनेक गुणा कम काम दे तो उसे 'निकम्मी' के बराबर ही काम न देने वाली समझनी चाहिए।

आँख मे कोई फुन्सी हो गई हो, या कोई रजकण गिर गया हो अथवा कोई दूसरी प्रकार की क्षति आ गई हो तो उसके द्वारा तुम यथार्थ निरीक्षण की कैसे आशा रख सकते हो ? इसीलिए निरीक्षण की सही आदत स्मरण-शक्ति को वेग प्रदान करने के लिए अत्यावश्यक है।

कान मे मैल भरा हो, सूजन आया हुआ हो या कोई दूसरी प्रकार की गड़बड हो तो तुम उसके द्वारा सही श्रवण की आशा नही कर सकते, जब कि वह श्रवण क्रिया, भाषा, सगीत और स्वरों को याद रखने का प्रमुख साधन है।

नासिका मे श्लेष्म भरा हो, मल भरा हो या अन्य कोई प्रकार की खराबी हो गई हो तो क्या वह कार्य कर सकेगी ? जब कि मात्र गध के द्वारा हम सैकड़ो वस्तुओ को याद रख सकते है। जैसे कि पृथक-पृथक् जाति के इत्र, तेल, केसर, कस्तूरी, अम्बर,

अगर, तगर, चन्दन, कपूर, जायफल, इलायची, प्याज, लशुन और हीग आदि।

जिह्वा पर मैल की परतें जम गई हो अथवा जीभ फट गई हो तो उसके पास से स्वाद की क्या परीक्षा कराई जा सकती है? जबकि स्वाद मानसिक सन्तोष का परम कारण है।

स्पर्शनेन्द्रिय पर मल के स्तर चढ गये हों या उसके छिद्र भर गये हों तो वह स्पर्श को परीक्षा किस प्रकार करे? जब कि स्पर्श ज्ञान की आवश्यकता जीवन मे कदम-कदम पर पडती है। इसलिए इन्द्रियों को बराबर स्वच्छ रख कर उनमें उपेक्षा या रोगादिक के द्वारा कोई बिगाड न हो जाये इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये। पर साधक का अति प्राथमिक कर्त्तव्य है।

अब उसके उपयोग पर विचार करे। स्पर्शनेन्द्रिय मे स्पर्श ग्रहण करने को जो तरतमता का गुण है, उसका वहुत छोटा अंश ही अपने काम में लेते हैं इसलिए कि अपने वह वस्तु शीतल है या उष्ण है, सुहाली है या खरदरी अथवा चिकनी है या रुक्ष है, इतना ही जानकर उसे छोड देते हैं। पर वह वस्तु कितनी शीतल या कितनी उष्ण है, किसके समान शीतल-उष्ण है, कितनी स्निग्ध अथवा रुक्ष है? उसकी यथार्थ तुलना नही करते, परिणाम स्वरूप अपने स्पर्श के द्वारा जैसी होनी चाहिए, वैसी परीक्षा नही कर पाते। अन्धे मनुष्य स्पर्शनेन्दिय का विशेष उपयोग करते है। इस कारण उनकी यह इन्द्रिय कितना ग्रहण कर सकती है, इसकी कल्पना करो। वे बहुत सी वस्तुओ को तो चखकर ही पहचान लेते हैं तथा उभरे हुए अक्षरो पर हाथ फेरकर उनमे लिखी हुई पुस्तको को बाँच लेते है।

मेरा स्वय का वैयक्तिक अनुभव ऐसा है कि मनुष्य यदि स्पर्शनेन्द्रिय को बराबर बारीकी से काम मे ले तो चाहे जैसी वस्तु को स्पर्श के द्वारा पहचाना जा सकता है। इतना ही नही पर दो समान दीखने वाली वस्तुओ को भी उनके स्पर्श की तरतमता से पृथक्-पृथक् पहचान कर बता देता है। सन् १९४९ मे बडौदा,

डभोई और भावनगर आदि स्थानों में अवधान प्रयोग करते समय मैंने इस प्रकार के स्पर्श-प्रयोग प्रत्यक्ष करके बताये थे ।

रसनेन्द्रिय मे रस की तरतमता को परखने का जो गुण है, उसको भी अपने बहुत कम काम में लेते हैं । उसके द्वारा एक वस्तु को चखकर उसमें क्या-क्या वस्तुएँ कितने प्रमाण मे है—यह नहीं बता सकते । रसनेन्द्रिय का बराबर उपयोग करने वाले कितनेक वैद्य चूर्ण का स्वाद लेकर उसमे मिली बहुत सी वस्तुओ को बराबर बता सकते हैं ।

कोई वस्तु मात्र मीठी है, खट्टी है, खारी है, कडवी है या तीखी है, इतना जानना ही बस नही; पर उसमे दूसरे रस भी कौन से २ रहे हुए हैं और कितने प्रमाण मे है, उसकी तुलना बार-२ करनी चाहिए, जिससे रस की परीक्षा बराबर की जा सके ।

नासिका के विषय में भी वैसा ही समझना चाहिए । अपने में से कितने मनुष्य ऐसे हैं जो मात्र गध के द्वारा ही वस्तुओं को पूरी तरह परख सकते हैं ? जो लोग नासिका-शक्ति का पूरा पूरा उपयोग करते हैं, वे दूर दूर की वस्तुओं को मात्र गध से परख लेते है । कस्टम अधिकारी लोग इसका एक प्रकार का नमूना होते है । वे गध के आधार पर ही सैकडो मनुष्यो में से किसके पास चरस या गाजा होना चाहिए—खोज निकाल लेते है ।

अनेक वस्तुओ की गध की तुलना करते रहने पर नासिका बराबर सजग बन जाती है ।

यदि चक्षुओ का उपयोग सजगता से होता है तो वे दूर तक देख सकती है, बहुत अच्छी तरह से देख सकती है और बहुत जल्दी भी देख सकती है । खलासी (जहाज का नोकर) तथा पशुओ को पालकर आजीविका कमाने वाले लोगो की दृष्टि बहुत दूर तक पहुंचती है, क्योकि वे इस प्रकार के कार्य का अभ्यास करने वाले होते हैं । दूर के क्षितिज मे होने वाला छोटा सा फेर-फार भी उन्हे तूफान के आगमन की सूचना दे देता है ।

कवि, चित्रकार और शिल्पकार वस्तु को बहुत सूक्ष्मता से देख सकते हैं, क्योंकि उन्हे इस प्रकार से निरीक्षण करने की दृष्टि उपलब्ध होती है और शीघ्रता तो अभ्यास का ही परिणाम है।

एक वस्तु को बारीकी से देखना, उसे अवलोकन या निरीक्षण कहा जाता है। ऐसा निरीक्षण वस्तु को याद रखने के लिए खूब सहायक साबित होता है। एक वृक्ष को तुम सामान्य रीति से देखो और निरीक्षण पूर्वक देखो उसमे कितना अधिक अन्तर होता है ? प्रथम में तुम्हे उसका सामान्य अथवा अस्पष्ट ज्ञान होता है जो कि स्वल्प समय में ही विस्मृत होना सम्भव है; जबकि दूसरे प्रकार मे तुम्हे उसका विशेष अथवा विशद ज्ञान होता है, जिसे दीर्घ समय तक भूलने की सम्भावना नही। परन्तु हमे इस तरह की आदत डालने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। निम्नांकित कुछेक प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करो, जिससे सही परिस्थिति समझी जा सके—

१ कबूतर के सिर से लेकर पैरो तक का कौनसा रंग किस क्रम से आया है ?

२. भैंस और पाडे के सिर मे क्या फर्क होता हैं ?

३. तुम्हारे दोनो कान कितने लम्बे है ? वे दोनो एक समान है या लम्बे छोटे ? यदि लम्बे छोटे हैं तो कौनसा लम्बा है और कौनसा छोटा है ?

४. तुम जिस कुर्सी का उपयोग करते हो, उसके पाये किस प्रकार के हैं ? कितने लम्बे है ?

५. तुम्हारे कमरे मे कुल कितने चित्र लटकाए हुए हैं ?

६. तुमने जिसे हाथ पर बाध रखा है, उस कलाई घड़ी मे किस प्रकार के अ क लगाये गए है ?

७. चालू फुलस्केप कागज कितना लम्बा होता है ?

८. तोरई (तुरई) के कितनी धाराएं होती हैं ? उनमे कोई क्रम या नियम भी होता है ?

९. पीपल वृक्ष का पान लम्बा होता है या उसका अग्र भाग ?

वस्तु को बारीकी से देखने की आदत डालने के लिए निम्नोक्त मुद्दे ध्यान मे रखने चाहिए—

१. वस्तु का सामान्य दर्शन
२. ऊँचाई
३. लम्बाई
४. चौड़ाई
५. मुख्य अंग
६. हर एक अंग का घाट
७. सामान्य रंग
८. अंगोपांगों का रंग
९. किसकी बनी हुई है ?
१०. कहाँ रही हुई है ?
११. किस वस्तु के साथ मेल खाती है ?
१२. खास निशानी क्या है ?

कानो का यदि बराबर उपयोग हुआ हो तो वे अति दूर की आवाज सुन सकते हैं। बहुत स्पष्ट सुन सकते हैं, उनकी तरतमता को भी याद रख सकते हैं। एक अच्छा संगीतकार श्रवण मात्र से स्वर की कितनी श्रेणियों को याद कर लेता है। पदचाप की पहचान करने वाले लोग पैरो की आहट मात्र सुनकर बता देते हैं कि यह किसके कदमो की आवाज है। इसी प्रकार पानी को खोज करने वाले जमीन पर कान रख कर उसके भीतर से २५ फुट, ५० फुट या उससे भी अधिक गहरे रहे पानी के स्रोत को खोज निकालते हैं।

यदि एकाग्रता के आधार पर आवाज को पृथक् पृथक् पहचाना जा सकता है तो हम तीसरी मंजिल के नीचे हुई बात को बराबर सुन सकते हैं। श्रवण-शक्ति की सीमा होने पर भी अपन उसकी जितनी शक्ति मानते हैं; उसकी अपेक्षा अनेक गुणा अधिक है, यह बात कभी नही भूलनी चाहिए।

विविध स्वरो की बार-बार तुलना करने पर तथा एकाग्रता से श्रवण करने की आदत डालने से श्रवण-शक्ति को बहुत तेजस्वी बनाया जा सकता है।

विषय के यथार्थ-बोध के लिए पाँचों इन्द्रियों को सजग रखने की अत्यन्त अपेक्षा है। इतना होने पर भी आँख और कान से अधिक विषय गृहीत होते हैं, इसलिए इन दोनों को ज्यादा सुरक्षित सजग रखने की अपेक्षा है। इन दो इन्द्रियों में कुछेक लोग चक्षु से विषय को खूब अच्छी तरह से ग्रहण कर सकते हैं और कितनेक कान से भली प्रकार ग्रहण कर सकते है। इसलिए जिसको जो इन्द्रिय अधिक अनुकूल हो उसे उस इन्द्रिय की अधिक सुरक्षा करनी चाहिए।

विषय चक्षु से बहुत अच्छी तरह ग्रहण किया जा सकता है या श्रवण से? यह जानने के लिए निम्नोक्त प्रयोग करके जाँच लो।

दर्शन-परीक्षा

इसके लिए तीन पत्ते तैयार करो। उनमें क्रमशः पक्तियों मे मोटे अक्षरो मे शब्द लिखो वे क्रमश बताओ। उनमें से कोई शब्द बोलो नही। एक पत्ते का निरीक्षण डेढ मिनट तक किया जा सकता है? फिर उनमे से याद रहे शब्दो को कागज पर लिखो।

इस प्रकार तीन पत्ते लिखने चाहिये—

प्रथम पत्र—टेबल, गाय, हडा, टोपी, दर्जी, स्वर्ण, अमरूद, जलेबी।

द्वितीय पत्र—अलमारी, भैंस, चमचा, नारगी, लोहा, हजाम, बरफी, बाघ।

तृतीय पत्र—कलम, नदी, सुथार, वणिक, चर्खा, घट, चाकू, झाड़ू।

श्रवण परीक्षा

इसमे भी ऊपर की तरह तीन पत्ते तैयार करने चाहिए और हर एक को धीरे-धीरे वाचन करते हुए क्रमश शब्द सुनने चाहिए। प्रत्येक पत्र के लिए डेढ मिनट का समय लेना चाहिए। एक पत्ते के शब्द सुनने के बाद उन्हे एक अलग पत्र पर लिख लेना चाहिये।

प्रथम पत्र—मोर, महाजन, सिंह, शीशी, प्याला, डोरी, घडियाल, गीदड ।

द्वितीय पत्र—आम, खांड, कुर्ता, पिन, कपास, शशक, कौवा, सुपारी ।

तृतीय पत्र—लवग, लापसी, हनुमान, बादल, दरिया, लौकी, कद्दू, भेड, कातर ।

अब जितने शब्द बराबर क्रमश लिखे गये है, उन हरेक को दो अंक (नम्बर) दो, गलत शब्द को और गलत क्रम से लिखे गये शब्द को अंक मत दो । इस रीति से दर्शन-परीक्षा के ४८ अंक और श्रवण परीक्षा के ४८ अंक होगे ।

इनमे से जिनमे अधिक अक आये है उसी इन्द्रिय द्वारा विषय अच्छी तरह ग्रहण होता है । यह समझ लेना चाहिए ।

चर्या का सजगता से अनुसरण करते रहना तथा एकाग्रता का अभ्यास चालू रखना ।

मगलाकाक्षी
धी०

मनन

साधना और सिद्धि, शक्ति और साधन, इन्द्रियाँ यन्त्रो के समान है; उनकी स्वच्छता उनका उपयोग, तुलना के द्वारा अनेक तारतम्य के ज्ञान की साधना, दर्शन परीक्षा व श्रवण परीक्षा ।

पत्र दशम

इन्द्रिय-निग्रह

प्रिय बन्धु !

तुम्हारे विचार मेरे तक पहुँचे है। उनमे तुमने जो जिज्ञासाएँ की हैं, उनसे परिचित हुआ हूँ। उनके सम्बन्ध मे मेरे उत्तर निम्नोक्त है—

प्रश्न—एक तरफ अपने महर्षियो ने इन्द्रियो को जीतने के लिए कहा है और आप इन्द्रियो को जागृत रखने की बात कहते हैं, तो ये दोनो बातें एक ही है या दो।

उत्तर—हमारे महर्षियों ने इन्द्रियो को जीतने के लिए कहा है, वह बिल्कुल यथार्थ है। इसका तात्पर्य यह है कि इन्द्रियो के विषयों में मुग्ध नही बनना दूसरे शब्दो मे कहे तो कोमल स्पर्श की आसक्ति, मधुर स्वाद की आसक्ति, सुगन्ध की आसक्ति, सुन्दर रूप की आसक्ति और मधुर स्वर की आसक्ति को जीत लेना-यही इन्द्रियो पर विजय है। विषयो की लुब्धता कितने भयकर परिणाम लाती है, उसके लिये हाथी मत्स्य, भ्रमर, पतग और सर्प के उदाहरण दिये गये है—वे इस प्रकार है—

जगली लोग हाथी को पकडने के लिए कृत्रिम हथिनी को एक जगह खडी करते है और वहाँ तक पहुँचने के मार्ग मे एक बहुत बडा गड्ढा खोदकर उसे बाँस और पत्तो से ढक देते है। हाथी स्पर्श-सुख का अत्यन्त लोलुप बनकर हथिनी को देखते ही उसकी तरफ दौडता है। इस दौड़ मे उसे दूसरी कोई बात का भान नही रहता। परिणाम स्वरूप वह गड्ढे मे गिर जाता है और बन्धन मे पडा जीवन भर परवशता भोगता है।

मछली को पकड़ने वाले मजबूत डोरे के एक किनारे लोहे का काँटा बाँध कर उसमे एक मास का टुकडा फँसाकर उसे पानी मे डाल देते है, उसे देखते ही स्वाद लोभी मछलियाँ एकदम उस पर झपटती है और उसे खाने का प्रयत्न करती है। तब काटा उनके गालो मे चुभ जाता है, जो अन्त मे मौत का कारण बनता है।

भ्रमर को सुवास की बड़ी आसक्ति होती है। वह कमल की सुगन्ध मे मस्त बन जाता है। इस मस्ती मे उसे भान भी नही रहता कि अभी सन्ध्या हो जायेगी तथा कमल की पखुड़ियाँ बन्द हो जायेगी और मैं भी उसमे बन्द हो जाऊँगा। वास्तव मे सन्ध्या होते ही वह उसमे बन्द हो जाता है। अब कमल को छेद कर बाहर निकलने की अपेक्षा वह यों विचार करने लगा कि—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभात,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पकजश्री।

रात्रि तो अभी बीत जाएगी और सुन्दर-सुखद प्रभात उगेगा। उस समय तेज से चमकते सूर्य का उदय होगा। तब कमल पूरा का पूरा खिल उठेगा। बस! उसी समय मैं उड़कर बाहर निकल जाऊँगा। इन विचारो मे वह समस्त रात्रि पूरी कर देता है। फिर भी उसको इस विचारमाला का अन्त नही आता।

इत्थ विचारयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त हन्त नलिनी गज उज्जहार।

परन्तु वह जब इन विचारो में मग्न होता है तभी हाथी वहाँ पानी पीने के लिए पहुँच जाता है। वह थोडी देर इधर-उधर मस्ती करता है और फिर सुन्दर सुहावने कमलों को सूड से चुन चुन कर मुँह मे रखने लगता है। उस समय बेचारा भ्रमर भी हाथी के पेट में पहुँच कर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है—यह है विषय लुब्धता का परिणाम।

पतंग (फतिंगा) रूप का दीवाना है। रूप को देखा कि वह बिना कोई विचार किए सीधा उसे भोगने के लिए दौड़ता है। दीपक की ज्योति उसके मन में रूप की पराकाष्ठा है। इसी लिए वेग से उड़कर उसमें झंपा लेता है और जलकर राख बन जाता है; परन्तु महान् आश्चर्य तो यह है कि एक पतंग को दीपक की ज्योति में जलता देखकर भी दूसरा पतंग आकर उसी प्रकार झंपा लेता है और इस प्रकार ये रूप दीवाने जौहर-व्रत स्वीकार करते हैं।



□

पत्र ग्यारहवाँ

महारानी कल्पना कुमारी

प्रिय बन्धु !

स्मरण-शक्ति के विकास मे कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान होता है, यह विचार तुम्हे प्रथम दृष्टि मे कदाचित् विचित्र लगेगा, परन्तु जब तुम इसकी वास्तविक शक्ति से परिचित होओ तब तुम्हे महसूस होगा कि—मैं आज तक इस महान् शक्ति के यथार्थ उपयोग से वास्तव मे वचित ही रह गया।

कल्पना क्या काम करती है, इसका विवेचन मैं कल्पना के माध्यम से ही प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसे जानने के बाद तुम अपने अभिप्राय को निर्णय पर पहुँचाना।

मनोमन्दिर मे उद्भूत एक भव्य उत्सव की यह कहानी है—

मनोमन्दिर के 'अन्त.करण' नामक विशाल खण्ड मे कितने ही सुन्दर आसन जमे हुए थे। उन प्रत्येक पर आगन्तुक अतिथियो के नामांकित पत्र रखे हुए थे। समय होते ही सब आकर बैठने लगे उनमे सर्वप्रथम क्षुधा देवी आई, पीछे तृषा देवी, निद्रा देवी, लज्जा देवी और तृष्णा देवी पधारी। उन सबने अपने-अपने आसन ग्रहण किए।

दूसरी तरफ अनगराय, मोहराय, क्रोधराय, भय भूपाल, हर्षदेव, शोकदेव, मानदेव और सशयदेव आदि का आगमन हुआ। वे भी अपने-अपने आसनो पर विराजमान हुए। उसके बाद श्रीमती स्मृतिदेवी पधारी, उनका ठाठबाठ अलग ही था। उनके साथ जिज्ञासादेवी, ईहादेवी, तुलनादेवी, बुद्धिरानी और वाणीदेवी भी आयी। उन सबने अपने-अपने आसन सभाले।

इस तरफ रायबहादुर उत्साह भी पूरे ठाटबाट से अपने मित्र प्रयास, साहस, उद्यम, धैर्य और पराक्रम के साथ आये। इन्होने भी अपने योग्य आसन ग्रहण कर लिए।

अब सभागृह ठसाठस भर गया था इसलिए सब आगन्तुक उत्सव प्रारम्भ होने की प्रतीक्षा करने लगे। इसी समय वाणीदेवी ने खडे होकर कहा—आप सबका सत्कार करते हुए मुझे अतीव प्रसन्नता हो रही है। आज का दिन धन्य है। आज की घडी धन्य है कि हमारे यहा इतने महान मेहमान पधारे है, परन्तु मुख्य अतिथि अब तक पधारे नही है, इसलिए उनको प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके आते ही उत्सव का कार्य प्रारम्भ हो जाएगा।

ये शब्द सुनते ही सब मेहमान गहरे विचार मे पड गए और अन्दर ही अन्दर खोजने लगे कि कौन बाकी रहा है? जब उन्होने जाना कि कोई खास व्यक्ति बाकी नही रहा है, तब सबके समक्ष खडे होकर सशयदेव ने कहा—माननीय मेहमानो! मैं आप सबके समक्ष प्रस्ताव रखता हूँ कि आज के कार्य का प्रारम्भ होना चाहिए क्योकि मुझे लगता है अब कोई खास आवश्यक अतिथि बाकी नही रहा है।

इस अकल्पित प्रस्ताव को सुनकर बुद्धि देवी खडी हुई। उन्होने कहा—सद्गृहस्थो और सन्नारियो! इस मन्दिर की सर्व शोभा जिसकी आभारी है, वह महारानी कल्पना कुमारी अभी तक नही आयी है। प्रतिपल उनकी ही प्रतीक्षा है। मैं सोचती हूँ अब थोड़ी ही देर मे उनका आगमन होगा।

क्या इस मन्दिर की समग्र सजावट महारानी कल्पना कुमारी की आभारी है? महाराज उत्साह के समूह मे गडगडाहट हुई। प्रयास, साहस, उद्यम, धैर्य और पराक्रम आदि को लगा कि अपमान हो रहा है। इनकी भावनाओ का पतन देखकर महाराज उत्साह ने खडे होकर कहा—सज्जनो! एव सन्नारियो! बुद्धिदेवी का कथन सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। इस भव्य भवन के निर्माण मे मेरे मित्र प्रयास, साहस, उद्यम, धैर्य, पराक्रम आदि ने महान् योगदान किया है। ये मन्दिर की मजबूत दीवारे विशाल द्वार और

उसकी कलात्मकता उनकी शिल्प-शक्ति की ही आभारी है। जबकि महारानी कल्पना कुमारी ने तो रग सजावट के सिवाय दूसरा कुछ भी कार्य नही किया। इसलिए इस मन्दिर की शोभा का समस्त श्रेय उन्हे देना बिल्कुल भी उचित नही। इसमें तो इन बुजुर्ग व्यक्तियों का एक प्रकार से अपमान हो है।

महाराज उत्साह का यह वक्तव्य चचलता देवी के आर-पार निकल गया। वे अपनी भावना को प्रकट करने के लिए खड़ी होना ही चाहती थी कि उसके पास मे बैठी एकाग्रता ने उसको समझा कर बिठा दिया।

श्रीमती स्मृति देवी वातावरण को लख गयी इसलिए खड़ी होकर मुस्कान बिखेरती हुई कहने लगी—माननीय सद्गृहस्थो और सन्नारियो! आप सब हमारे महान अतिथि है। इस मन्दिर की सजावट में आप लोगो का किसी न किसी प्रकार से हिस्सा है, इसे मैं स्वीकार करती हूँ। पर महारानी कल्पना ने जो कार्य किया है, वह हम सबमें कोई भी न कर सका। हम सब के हाजिर होते हुए भी यह मन्दिर सूनसान था। उसमें कचरे के ढेर इकट्ठे हो गये थे। प्रकाश के झरोखे बन्द हो गये थे और सघन तिमिर व्याप्त हो गया था।

मकान की दीवारें मजबूर हों, उसका द्वार सुदृढ हो, उसकी कमाने सुन्दर इतने मात्र से कोई उत्सव की योजना नही हो सकती।

कुछ दिन पूर्व महारानी कल्पना कुमारी यहाँ आई थी। वे मनोमन्दिर की दशा देखकर व्यग्र हो उठी। उन्होने मुझसे कहाकि—आप सब के हाजिर होते हुए मनोमन्दिर की ऐसी हालत कैसे?

मैंने कहा—महारानी सब अपने-अपने धन्धे मे लगे हुए हैं। क्षुधादेवी, तृष्णादेवी तथा लज्जादेवी को अपने काम के सिवाय दूसरा कोई शौक ही नही है और शौक हो तो भी कोई कार्य मे कुशलता नही है। तृष्णादेवी को जब देखो तब ही कुछ न कुछ नया प्राप्त करने की उलझन मे पड़ी रहती है। इसलिए उसे दूसरा कुछ करने की फुर्सत नही है। एकाग्रता जहाँ बैठी थी, वहाँ से उठती

नही और चचलता के कदम कही ठहरते ही नही । वाणी देवी अपने काम मे चतुर है पर उसे सबके साथ बात करना ही ज्यादा अच्छा लगता है ।

इन सब मे बुद्धि देवी बडी अनुभवी एव निष्णात है, पर वे वृद्ध हो गई हैं । बुढापे के कारण उनकी तबियत स्वस्थ नही रहती ।

इधर महाशय अनगराय और मोहराय शरीर से दर्शनीय हैं पर अन्धे है, क्रोधराय की भी यही दशा है । भय भूपाल को कोई भी बात कही जाए तो वह दूर भागता है और हर्षदेव क्रीडा-स्थल से कभी बाहर नही निकलते, जब देखो खेल ही खेल । इधर शोकदेव को हर्षदेव की क्रीडा बिल्कुल भी पसन्द नही, इसलिए वह उसमे दखल देता ही रहता है और इस कारण बार-बार दोनो मे द्वन्द्व युद्ध होता रहता है आखिर मैं बीच मे पडकर उन्हे शान्त करती हूँ तब ही वे विश्राम लेते हैं ।

यह मानदेव प्रचण्ड है, पर इसके पीठ का मेरुदण्ड झुकता ही नही और संशयदेव के स्वभाव को तो आप जानते ही है कि कोई भी नई बात आई कि व्यग्र हुए । जब उस नई बात को तोड डालते हैं तब ही सन्तोष का अनुभव करते हैं ।

महाराज उत्साह स्वय बहुत सुन्दर हैं, पर उनका ससर्ग बहुत खराब है । उनका साथी प्रमाद उन्हे बार-बार उत्पथ मे ढकेल देता है और उनके मित्र प्रयास, साहस, उद्यम, धैर्य एवं पराक्रम तो उनकी ही चाल मे चलने वाले है । इनमे अपनी स्वतन्त्र कार्य शक्ति नही है । अगर महाराज उत्साह चले तो प्रयास भी आगे बढे, यदि प्रयास बढे तो साहस भी चलें और साहस चले तो उद्यम, धैर्य तथा पराक्रम भी बढ चले, परन्तु ये सब मनमोजी सदृश स्वभाव वाले है । जब तक महाराज उत्साह के वर्तन-व्यवहार (रीतभात) मे मौलिक सुधार नही होगा तब तक उनके भरोसे नही रहा जा सकता । इसलिए ही कुछ समय से आपकी प्रतीक्षा कर रही थी । अब आप पहुँच गई है । इस मन्दिर को उचित प्रकार से सज्जित कर उत्सव के योग बनाएँगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है ।

सज्जनो और सन्नारियो ! इस घटना के बाद उन्होने इस मन्दिर को अलकृत करने का कार्य प्रारम्भ किया कि आज यह इतना सुशोभित और आह्लादकारी बन सका है । यद्यपि इसमे अनेक दूसरो का भी योगदान है, पर मुख्य कार्य तो उन्होने ही किया है, इसलिए सम्मान की प्रथम अधिकारिणी तो वे ही है । बहुत बार ऐसा हो जाता है कि हम अपने घर के मनुष्यो या चिरपरिचित व्यक्तियो की क्षमता को नही पहचानते, पर जब वे ही व्यक्ति दूर जाकर अपनी अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन कर ससार मे प्रशसा पाते है, तब ही हम उनकी कदर करना सीखते है, यह एक बहुत ही खेदजनक बात है । इसलिए मैं प्रस्ताव रखती हूँ कि जब महारानी कल्पना कुमारी यहाँ पधारे तब बिना कोई दूसरी चर्चा किये उनका उत्साहपूर्वक सुन्दर स्वागत करना है ।

श्रीमती स्मृति देवी का यह वक्तव्य सुनकर सब शान्त हो गये, पर सशय देव से नही रहा गया । उसने खड़े होकर कहा कि—श्रीमती स्मृतिदेवी ने हमे जो कुछ कहा है, उसे हमने शान्तिपूर्वक सुना है और उससे हमारे मन मे महारानी कल्पना कुमारी के लिए बहुत सम्मान के भाव पैदा हुआ है, पर उन्होने इस महल को अलकृत-सज्जित करने के सिवाय अन्य कार्य भी किये हैं । यदि उनके पराक्रम का निदर्शन प्रस्तुत किया जाए तो मैं मानता हूँ कि यहाँ विराजित सब सज्जनो और सन्नारियो को आनन्द होगा ।

यह सुनकर श्रीमती स्मृतिदेवी ने कहा—यह बात मेरी अपेक्षा बुद्धिदेवी ही तुम्हे अच्छी तरह से समझा सकेगी । मै उन्हे विनती करती हूँ कि वे इस विषय पर उचित प्रकाश डाले ।

यह श्रवण कर बुद्धिदेवी खड़ी हुई और आकर्षक अभिनय करती हुई बोली—महान् अतिथियो ! महारानी कल्पना कुमारी यथार्थ मे अद्भुत प्रभावशाली है । यदि उनका समग्र पराक्रम यहाँ प्रस्तुत किया जाए तो उत्सव उत्सव के ठिकाने रह जाए, इसलिए संक्षेप मे ही मे अपने विचार रख रही हू ।

"वाल्मीकि को सामान्य मनुष्यो मे से महाकवि बनाने वाली यह महारानी ही है । महर्षि व्यास, कवि कालिदास, कवि भवभूति,

कवि माघ और श्रीसिद्धसेन दिवाकर इनके प्रभाव से ही चिरजीव वने हैं। मनु, पाराशर, अत्रि, भारद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र और अगस्त्य आदि अनेक दूसरे ऋषि, महर्षियो द्वारा प्राप्त की हुई दिव्यता इन्ही के सहवास का फल है। चरक और सुश्रुत, वाग्भट धन्वतरी, नागार्जुन और पादलिप्तसूरि आदि रसायनशास्त्री तथा महावीराचार्य और भास्कराचार्य, आर्यभट्ट तथा वराहमिहिर, महेन्द्रसूरि आदि गणित-ज्योतिष शास्त्रियो ने अपनी कार्य सिद्धि के लिए उनका ही आश्रय लिया है। महाराज अशोक, चन्द्रगुप्त, हर्ष, और अकबर, किस कारण दूसरो की अपेक्षा अधिक चमके और वर्तमान काल पर दृष्टिपात करे तो श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को किसने विश्वविख्यात वनाया? महात्मा गाधी को किसने सत्याग्रह का सिद्धान्त दिया? जगदीशचन्द्र वसु, प्रफुल्लचन्द्र राय और रामन् आदि को किसने वैज्ञानिको की प्रथम पक्ति मे बिठाया?

जरा दूर दृष्टि निक्षेप करें हो वहाँ भी इन महारानी का अजब प्रभाव फैला हुआ है। अरिस्टोटल और प्लेटो, काण्ट और ह्यूम, शापेनहावर और नित्शे, किसके आधार पर आज तक प्रख्यात है? शेक्सपीयर और शैली, ब्राउनिग व वर्डस्वर्थ, इमर्सन और इगरसोल तथा एच जी वेल्स और बर्नार्डशा ने किसके आधार पर लाखो मनुष्यो के हृदय मे स्थान पाया? सीजर, नेपोलियन, कैसर और लेनिन को ससार आज क्यो याद करता है? गेलीलियो आइजक न्यूटन वाटस, एडिसन, मैडम क्यूरी, आइस्टीन आदि को किसने दिव्य चक्षु प्रदान किये? और जगत के धनकुबेर फोर्ड, कारनेगी, राक्फेलर, इस्टमैनकोडक आदि को भी इस महारानी ने ही धन के ढेर पर बिठाया है। इसलिए महारानी कल्पना कुमारी का उचित सम्मान करना अपना कर्त्तव्य है। मैं स्वय उन्हे खूब सम्मान देती हू और उन्ही के सहयोग से अपनी गाड़ी चलाती हूं।

महारानी कल्पना कुमारी की इतनी प्रशस्ति सुनकर ईर्ष्यादेवी से रहा नही गया वे एकदम उबल पड़ी—"और हमने तो कुछ किया ही नही। यही न? अरे महरबानो! मनुष्य कितना ही प्रमादी और कितना ही अबुध (नासमझ) हो पर मैं जाकर ऐसा

जादू करती हूँ कि उसकी समस्त शक्तियाँ जाग उठती है और वह इस तरह कार्य सलग्न हो जाता है कि पूछो मत ।"

इस समय हास्यदेव अपनी लाक्षणिक छटा से बोल उठे—"और इसी से बिचारे जल जल कर खाक हो जाते हैं, और अन्त मे मान तथा माया दोनो ही खो देते हैं। हा ! हा !! हा !!!"

समय पर महारानी कल्पना कुमारी का भव्य प्रवेश हुआ और समग्र मन्दिर उनके तेज से जगमगा उठा कहने की आवश्यकता नही कि उनके आगमन के साथ ही उत्सव का मगल कार्य प्रारम्भ हुआ। जो प्रतिक्षरण वृद्धिगत होता हुआ महोत्सव के रूप मे परिवर्तित हो गया। मनोमन्दिर मे आलोकित इस उत्सव की कहानी यही पूर्ण होती है, उसके साथ ही मेरा पत्र भी पूर्ण हो रहा है। मैं आशा करता हूँ कि तुम इस पत्र के परमार्थ को अवश्य पा सकोगे।

मगलाकाक्षी
धी०

मनन

मन की सर्व शक्तियो मे कल्पना का अद्वितीय स्थान। उसके बिना नया प्रकाश उदीप्त नही होता।



पत्र बारहवाँ

कल्पना का स्वरूप

प्रिय बन्धु,

कल्पना कितनी मनोरजक होती है, उसका कुछ नमूना तुम पिछले पत्र में पा चुके हो। अब इस पत्र मे उसके स्वरूप के विषय मे आवश्यक जानकारी दे रहा हूँ।

एक वस्तु इन्द्रिय प्रत्यक्ष न होने पर उसका जो एक आभास होता है, उसे कल्पना कहते हैं। उदाहरण के तौर पर हमारी दृष्टि के समक्ष हाथी न होने पर भी मन मे हाथी का चित्र उभरे तो वह हाथी की कल्पना है। इसी प्रकार आकाश मे एक भी बादल न होने पर भी मन मे घनघोर घटा का और प्रचण्ड मेघ गर्जना का विचार उठे तो वह बादल और मेघ गर्जना की कल्पना कहलाएगी। इसी तरह एक वस्तु साक्षात् पास मे न होते हुए भी पास मे है, न चखते हुये भी चाख रहे हैं, न सूँघते हुए भी सूँघ रहे हैं। जिस विषय का विचार उठता है, वह स्पर्श, रस, गन्ध की कल्पना कहलाती है। इस प्रकार की कल्पना करने की शक्ति कम-अधिक मात्रा मे प्रत्येक मनुष्य मे होती है।

अपने मन मे जो कल्पना उठती है, वह पूर्वकाल मे अनुभूत विषयो के आधार पर ही उठती है। इसीलिए जिसका अनुभव नही हुआ है, उसकी कल्पना भी नही उठ सकती। उदाहरण के तौर पर जो जन्माध होता है, वह रग या प्रकाश की कल्पना नही कर सकता क्योकि उसका रग या प्रकाश का अनुभव नही होता है अथवा जो जन्म से बधिर होते हैं उन्हे मन्द तीव्र आदि किसी भी प्रकार के स्वर की कल्पना नही उठती, क्योकि उन्होने स्वर श्रेणियो का कभी अनुभव ही नही किया है।

कल्पना अनुभव के आधार पर ही होती है। पर उसका अर्थ यह नही है कि जो-जो विषय हमने जिस जिस प्रकार से अनुभूत किये है, उन उन विषयो की कल्पना उस प्रकार से ही हो।

उदाहरण के तौर पर हमने पिंजरे में बन्द सिंह को देखा है फिर भी उसे जंगल मे घूमते और छलांग भरते हुए भी कल्पित कर सकते है। मनुष्यों को घूमते-फिरते तथा दौडते देखा है तो उन्हे दरिया तैरते अथवा आकाश मे उडते हुए भी कल्पित किया जा सकता हैं। गाय को घास खाते देखा है तो उसे बोलती हुई या बात करते हुए भी कल्पना में लाया जा सकता है। इस प्रकार से उठती हुई कल्पना मूल अनुभव से पृथक् दीखते हुए भी वह अनुभव की सीमा से बाहर नही होती। उसमे अनुभवो का ही एक प्रकार का मिश्रण होता है। सिंह को पिंजरे मे बन्द देखने पर भी उसे जगल मे घूमते हुए, छलाग भरते हुए भी कल्पित किया जा सकता है, क्योकि सिंह, जगल, घूमना, छलांग भरना—ये वस्तुएँ अपने अनुभव मे आ चुकी हैं। मनुष्यो को हमने घूमते फिरते देखा है पर दरिये को तैरते हुए या आकाश मे उडते हुए भी कल्पना की जा सकती है क्योकि मनुष्य, दरिया, तैरना, आकाश मे उडना—ये अनुभव मे आ चुके है। उसी प्रकार गाय, बोलना, बात करना यह सब अपने अपने अनुभव मे आ चुका है।

इस तरह इन तीनों प्रसंगो मे अनुभव उपस्थित थे, उनका एक प्रकार का मिश्रण हो गया। तुम कहोगे कि यह बात तो ठीक, पर अपने मे से किसी ने कभी राक्षस या ईश्वर नही देखा है, फिर उनकी कल्पना कैसे कर लेते हैं? तो उसका उत्तर भी ऊपर के अनुसार है, जिन तत्त्वो से राक्षस या ईश्वर की कल्पना की जाती है। वे समस्त तत्त्व एक या दूसरे समय मे अनुभूत कर चुके हैं और यह उन्ही का मिश्रण है। राक्षस की देह पर्वत के समान मोटी है, तो देह तथा पर्वत अपने अनुभव मे आ चुके हैं। राक्षस की आँखें धगधगते लोहे के गोले के समान है, लाल सुर्ख है, तो आँखें, धग-धगता लोहे का लाल गोला अपने अनुभव मे आई हुई वस्तुएँ हैं। उसे एक घण्टा मे पचास हजार मील की गति से चलने वाला मानते हैं, तो

घण्टा, पचास हजार और मील, ये अपने अनुभव मे पृथक्-पृथक् रूप से आई हुई वस्तुएँ हैं। घण्टा का अनुभव हमे अमुक समय मे अमुक प्रकार से हो चुका है, तो पचास हजार का अनुभव दूसरे समय मे दूसरी प्रकार से और मील का अनुभव तीसरे समय मे तीसरी प्रकार से हुआ होता है। तात्पर्य है कि अनुभव के भण्डार मे ये तीनो वस्तुएँ आई हुई है, जिन्हे साथ जोडकर कल्पना अपना रूप धारण करती है।

जो कल्पना वस्तु के मूल स्वरूप से बराबर मिलती है, उसे सत्कल्पना या समान कल्पना कहते है। जैसे कि—कल्पना मे हाथी, घोड़ा, ऊँट, मनुष्य, आम, नीम्बू, गुलाब, केवड़ा आदि का आना। इससे उल्टा जो कल्पना वस्तु के मूल स्वरूप को एकदम मोटा या एकदम छोटा बताने वाली अथवा विचित्र बताने वाली हो उसे असत् या असमान कल्पना कहते है। जैसे कि—पर्वत जैसा हाथी, चूहे जैसा घोडा, आकाश जैसा ऊँट, आठ सौ मञ्जिल का मकान, पन्द्रह आँख वाला मनुष्य, करोड मन का आम, लाख मन का नीम्बू, खेत के समान बड़ा गुलाब, ताड जैसा केवडा आदि आदि। वन्ध्या पुत्र, रेत का तेल, आकाश के फूल—ये भी एक प्रकार की असत् कल्पनाएँ ही हैं।

कल्पना का मन की वृत्ति पर अथवा भाव पर अचूक असर होता है। एक मनुष्य भिखारी हो, उसे कहा जाए कि तू एक दिन राजा बन जायेगा। तो वह राज्य पद की कल्पना से ही खुश हो उठेगा। एक मनुष्य को ऐसी कल्पना उठे कि मेरा समस्त धन अमुक दिन लुट जाने वाला है, तो वह तुरन्त दुःखी बन जायेगा। इसी प्रकार एक राजा के मन मे यह कल्पना आए कि अमुक मनुष्य मेरे देश पर चढ आयेगा या मेरे धर्म का नाश करेगा तो उसे तत्काल क्रोध आ जाएगा अथवा ऐसी कल्पना आए कि मेरे जैसा कोई शूरवीर नही है, तो उसमे अभिमान की वृत्ति जागृत हो जाएगी। इसी प्रकार पृथक्-पृथक कल्पना से हँसना, रोना, आश्चर्य और उत्तेजना का अनुभव होता है।

जो कल्पना किसी प्रकार का प्रबल भाव उत्पन्न करती है, भावोद्रेक करती है, वह स्मरण शक्ति की खूब मदद करती है। जैसे

कि—अट्टहास, करुण विलाप, अजब शूरता, भयंकर नीचता, असाधारण उदारता, अनुपम धैर्य, अति विचित्रता, वेजोड बेवकूफता आदि। लेखक, कवि, पत्रकार, कलाकार, राजद्वारी पुरुष और सन्त ये सभी कल्पना की विशेषता को लक्ष्य मे रखकर ही अपनी-अपनी पद्धति से काम करते है। जिससे वे मानव समाज पर महान् प्रभाव डालते है।

मानस शास्त्रियों ने कल्पना के निम्नोक्त विभाग किये हैं—

१. उद्‌बोधक कल्पना—

जो भूतकाल की संज्ञाओ, प्रतीतियों, सस्कारों और अनुभवों को जागृत करती है। इसका सम्बन्ध स्पष्ट स्मरण-शक्ति के साथ है।

२. योजनात्मक कल्पना—

जो किसी भी वस्तु के निर्माण की योजना प्रस्तुत करती है। छोटे और बडे नाट्य प्रयोग आदि इसी प्रकार की कल्पना के परिणाम हैं। उसमे मानव जीवन की छवि अंकित करने के लिए वेष, भाषा तथा रीति रिवाज की कल्पना कई प्रकार से की जाती है।

३. सर्जनात्मक कल्पना—

जो भूतकाल के अनुभवों को किसी नव्य प्रकार से प्रस्तुत करती है। जैसे कि—विविध प्रकार के काव्य, चित्र, शिल्प आदि।

४. हेत्वनुसारिणी कल्पना—

जो किसी भी हेतु या ध्येय को पूर्ण करने के लिए एक व्यवस्था के रूप मे प्रस्तुत होती है। जैसे कि—मकानों की रूपरेखा, नक्शे आदि।

५. अहेत्वनुसारिणी कल्पना—

जो किसी भी हेतु या बिना ध्येय मात्र मनोरजन के लिए प्रस्तुत होती है। बालको के खिलौने की कल्पना इसी प्रकार की होती है।

कल्पना का विकास किस प्रकार से हो सकता है ? तथा उसका उपयोग स्मरण-शक्ति के विकास में किस प्रकार हो सकता है ? इसका विवेचन अब बाद मे करूँगा ।

मंगलाकांक्षी

धी•

मनन

कल्पना की व्याख्या, अनुभव ही आधार, सिंह, मनुष्य, गाय का उदाहरण, राक्षस और ईश्वर, सत् और असत् कल्पना, वृत्तियो पर प्रबल प्रभाव, कल्पना के पाँच प्रकार ।

क्रियाओ की तरह ही प्रकृति की घटनाओं की भी कल्पना करो। जैसे कि—प्रात काल हो रहा है, मध्याह्न तप रहा है, सायकाल हो रहा है, रात्रि पड़ रही है, आधी रात हो गई है, नदी मे पानी चढ रहा है, सरोवर मे लहरें उठ रही हैं, सागर का गर्जन चल रहा है, हवा फुंफकार रही है आदि-आदि।

किसी असाधारण घटना की कल्पना करने मे भी दक्षता चाहिए। जैसे कि—मोटर, रेल या विमान मे अचानक प्रचंड आग, जल-प्रलय, दुष्काल, रोग-सचार आदि-आदि।

कल्पना का विकास अनुभव की विशालता पर निर्भर है। इसलिए अनुभव को बन सके उतना विशाल बनाने की अपेक्षा है। निबन्ध-लेखन, काव्य रचना, निरीक्षण करने की आदत और चित्र-कला, उसमे खूब ही शहायक है।

मैं मानता हूँ कि कल्पना के विकास के लिए इतने सुझाव काफी है। अब उसकी व्यावहारिक उपयोगिता बता रहा हूँ—

१. जो व्यक्ति क्रिकेट के खेल मे लगे एकाध सुन्दर फटके का सूक्ष्मता से निरीक्षण करता है और उसे सैकडो बार मन मे देखता है, वह उसे बराबर याद रख सकता है। उससे वह स्वय भी उसी उत्तम रीति से फटका मार सकता है।

२ जो व्यक्ति किसी महान् वक्ता का भाषण बहुत ही रस पूर्वक सुनता है, और उस समय होने वाले तमाम हाव भाव को बडी सूक्ष्मता से देखता है, बार-बार अपनी कल्पना मे उन हावभावो को लाता है। वह उन्ही हावभावो के साथ भाषण कर सकता है।

३ टाइप मे खूब शीघ्रता के इच्छुक व्यक्ति को सबसे पहले की-बोर्ड का मन मे अभ्यास करके, कल्पना के द्वारा वैसा करना चाहिए।

ऐसा करने से स्वल्प समय मे ही टाइप करने मे अपूर्व शीघ्रता लाई जा सकती है।

४ शार्ट हैन्ड मे भी यही रीति उपयोगी है।

५ लिपि-सुधार का इच्छुक किसी सुन्दर लिपि को कल्पना द्वारा बार-बार दर्शन करके अपनी लिपि को सर्वश्रेष्ठ बना सकता है।

६. संयोजन में बहुत भूले करने वाला, अच्छे शब्दो का सूक्ष्मता से अध्ययन कर, कल्पना मे उन्हे प्रत्यक्ष करता रहे तो भूल सुधारने मे समर्थ हो सकता है।

७. जो-जो कार्य करने हो, उनका चित्र कल्पना के द्वारा मन मे अ कित करने पर उन कामों की स्मृति बराबर बनी रहती है। उदाहरण के तौर पर (१) एक मनुष्य को बाजार मे जाकर अमुक-अमुक वस्तुएँ लानी है। (२) लिखा हुआ पत्र डाक मे डालना है और (३) वापिस आते समय भाषण देना है। अब वह पहले से कल्पना के द्वारा मन मे चित्र बनाये कि "मै बाजार मे जा रहा हू, वहाँ पहुँच कर वस्तुएँ खरीद रहा हूँ, उनमे क, ख, ग, घ आदि अमुक वस्तुएँ खरीदता हूँ। फिर वापस आते रास्ते में डाक पेटी मे पत्र डाल रहा हूँ, उसके बाद सभा-स्थल जाकर अमुक प्रकार से भाषण दे रहा हू तो उनमे एक भी वस्तु को वह भूलेगा नही।

वस्तुओ को स्मृति मे रखने के लिए इस शक्ति का खास उपयोग किस प्रकार से हो सकता है, यह आगे समझाऊँगा।

मंगलाकाक्षी
धी०

मनन

मन से निरीक्षण करने की आदत, अभ्यास करने की पद्धति, दृश्य पदार्थ, परिचित पदार्थ, प्रारम्भ मे सामान्य विकास भी विशेष अभ्यास से सिद्ध, अदृश्य पदार्थों अथवा भावों की कल्पना किस प्रकार से करना? क्रिया, घटना, निर्माण की कल्पना, क्रिकेट, भाषण, टाइपिंग, शार्ट हैण्ड, लिपि और संयोजन को सुधारने मे उसका उपयोग।

□

पत्र तेरहवाँ

कल्पना का विकास और उपयोग

प्रिय बन्धु !

महान् जल प्रपात से उत्पन्न हुई विद्युत् शक्ति को यंत्रों द्वारा पकड़ने पर जैसे वह अनेक प्रकार के कार्य करती है—वैसे ही कल्पना भी व्यवस्थित होने पर अनेक प्रकार के कार्य कर सकती है।

इसलिए सर्व प्रथम मन से निरीक्षण करने की आदत डालना आवश्यक है। तुम पूछोगे कि देखने का कार्य तो आँख से होता है, मन से कैसे देखा जाए? तो यहाँ देखने का अर्थ कल्पना के द्वारा चित्र को खडा करना है। इसलिए पहले पहल एक आसन पर स्थिरता से बैठो, आँखें बन्द करो। मन से एकाग्र बनो, और किसी वस्तु की कल्पना करो।

दृश्य पदार्थों की कल्पना सहजता से की जा सकती है जैसे कि—पशु, पक्षी, जलचर, चीटियाँ, वनस्पति, मनुष्य, वस्तुएँ, पानी आदि। इसलिए दृश्य पदार्थों को ही पहला स्थान दो। उनमे भी बहुत परिचित वस्तुओ की कल्पना जल्दी आ सकती है। जैसे कि—

गाय, भैंस, घोड़ा, गधा, हाथी, ऊँट, (पशु)

कबूतर, कौआ, मोर, चिड़िया, तोता, मैना (पक्षी)

मेढक, मछली, मगर (जलचर)

चीटी, मकोड़ा, बिच्छू, दीमक, (कीट)

आम, इमली, सीग (वृक्ष विशेष)

नीम, बबूल, महुआ (वृक्ष)

बाजरी, ज्वार, गेहूँ, चावल, चना, मूग, मोठ, उडद, (धान्य)

गुलाब, कमल, केवडा, चंपा, मोगरा, सूरजमुखी (फूल)

लडका, लड़की, युवक, युवती, वृद्ध, सेठ-सेठानी, राजा-रानी, नौकर, चपरासी (मनुष्य)

कुर्ता, छत्ता, जूते, अण्डा, थाली, चमचा, कलम (वस्तुएँ)

खेत, मैदान, गड्ढा, टेकरी, पहाड (जमीन)

झरना, नदी, तालाब, सरोवर, दरिया (पानी)

आकाशी पदार्थों में सूर्य-चन्द्र की कल्पना जल्दी हो सकती है, तथा अंधेरी और चाँदनी रात की कल्पना भी शीघ्र हो सकती है। इसलिए उन्हे प्रमुखता देनी चाहिए।

प्रारम्भ मे ये वस्तुएँ कदाचित् बहुत अस्पष्ट दिखाई देंगी, पर अभ्यास से स्पष्टता होती चली जायेगी। ऐसे करते हुए तुम थोडे समय मे ही कल्पना के द्वारा इन वस्तुओ को बराबर देखने लगोगे।

शुरुआत मे कल्पना के द्वारा दृष्ट वस्तुओ का एक कागज पर वर्णन लिखो। उसकी मूल वस्तुओ के साथ तुलना करो। इसलिए कि उसमे रही त्रुटियाँ या कमियाँ सुधरती जाएँ। इस प्रकार के अभ्यास से वस्तुओ को देखने की कला मे भारी परिवर्तन हो जायेगा।

अदृश्य पदार्थों के भाव की कल्पना हम स्वतन्त्र प्रकार से नही कर सकते। जैसे कि—सत्य, दया, सहन-शीलता, विनय, शक्ति सौदर्य, मन, आत्मा आदि; परन्तु इन भावो की कल्पना भाव-वाहको के माध्यम से की जा सकती है। जैसा कि—हरिश्चन्द्र के माध्यम से सत्य, महावीर के माध्यम से दया, आर्य स्त्री की कल्पना से सहनशीलता, विद्यार्थी की कल्पना से विनय, भीम की कल्पना के माध्यम से शक्ति, युवती की कल्पना के माध्यम से सौदर्य, मनुष्य की कल्पना से मन, सजीव पदार्थों की कल्पना से आत्मा।

वस्तुओ की तरह क्रियाओ की भी कल्पना करो। जैसे कि—बालक रोता है, लडका कूदता है, एक मनुष्य दौडता है, एक मनुष्य रोकड लिखता है, एक मनुष्य कारखाने मे काम कर रहा है, एक मनुष्य कपडे धो रहा है, एक मनुष्य पूजा करता है, आदि आदि। हरेक प्रकार की क्रिया की कल्पना की जा सकती है। उनमे जिनका परिचय बहुत ज्यादा होता है उनकी कल्पना सरल होती है।

क्रियाओ की तरह ही प्रकृति की घटनाओं की भी कल्पना करो। जैसे कि—प्रात. काल हो रहा है, मध्याह्न तप रहा है, सायकाल हो रहा है, रात्रि पड़ रही है, आधी रात हो गई है, नदी मे पानी चढ रहा है, सरोवर मे लहरें उठ रही है, सागर का गर्जन चल रहा है, हवा फुंफकार रही है आदि-आदि।

किसी असाधारण घटना की कल्पना करने मे भी दक्षता चाहिए। जैसे कि—मोटर, रेल या विमान मे अचानक प्रचंड आग, जल-प्रलय, दुष्काल, रोग-संचार आदि-आदि।

कल्पना का विकास अनुभव की विशालता पर निर्भर है। इसलिए अनुभव को बन सके उतना विशाल बनाने की अपेक्षा है। निबन्ध-लेखन, काव्य रचना, निरीक्षण करने की आदत और चित्रकला, उसमे खूब ही शहायक है।

मैं मानता हूँ कि कल्पना के विकास के लिए इतने सुझाव काफी है। अब उसकी व्यावहारिक उपयोगिता बता रहा हूँ—

१ जो व्यक्ति क्रिकेट के खेल मे लगे एकाध सुन्दर फटके का सूक्ष्मता से निरीक्षण करता है और उसे सैकडो बार मन मे देखता है, वह उसे बराबर याद रख सकता है। उससे वह स्वय भी उसी उत्तम रीति से फटका मार सकता है।

२ जो व्यक्ति किसी महान् वक्ता का भाषण बहुत ही रस पूर्वक सुनता है, और उस समय होने वाले तमाम हाव भाव को बडी सूक्ष्मता से देखता है, बार-बार अपनी कल्पना मे उन हावभावो को लाता है। वह उन्ही हावभावो के साथ भाषण कर सकता है।

३ टाइप मे खूब शीघ्रता के इच्छुक व्यक्ति को सबसे पहले की-बोर्ड का मन मे अभ्यास करके, कल्पना के द्वारा वैसा करना चाहिए।

ऐसा करने से स्वल्प समय मे हो टाइप करने मे अपूर्व शीघ्रता लाई जा सकती है।

४ शार्ट हैन्ड मे भी यही रीति उपयोगी है।

५ लिपि-सुधार का इच्छुक किसी सुन्दर लिपि को कल्पना द्वारा बार-बार दर्शन करके अपनी लिपि को सर्वश्रेष्ठ बना सकता है।

६. संयोजन में बहुत भूलें करने वाला, अच्छे शब्दो का सूक्ष्मता से अध्ययन कर, कल्पना में उन्हे प्रत्यक्ष करता रहे तो भूल सुधारने मे समर्थ हो सकता है।

७. जो-जो कार्य करने हो, उनका चित्र कल्पना के द्वारा मन में अंकित करने पर उन कामों की स्मृति बराबर बनी रहती है। उदाहरण के तौर पर (१) एक मनुष्य को बाजार मे जाकर अमुक-अमुक वस्तुएँ लानी है। (२) लिखा हुआ पत्र डाक मे डालना है और (३) वापिस आते समय भाषण देना है। अब वह पहले से कल्पना के द्वारा मन मे चित्र बनाये कि "मै बाजार मे जा रहा हू, वहाँ पहुँच कर वस्तुएँ खरीद रहा हूँ, उनमे क, ख, ग, घ आदि अमुक वस्तुएँ खरीदता हूँ। फिर वापस आते रास्ते मे डाक पेटी मे पत्र डाल रहा हूँ, उसके बाद सभा-स्थल जाकर अमुक प्रकार से भाषण दे रहा हू तो उनमे एक भी वस्तु को वह भूलेगा नही।

वस्तुओ को स्मृति मे रखने के लिए इस शक्ति का खास उपयोग किस प्रकार से हो सकता है, यह आगे समझाऊँगा।

मंगलाकाक्षी
धी०

मनन

मन से निरीक्षण करने की आदत, अभ्यास करने की पद्धति, दृश्य पदार्थ, परिचित पदार्थ, प्रारम्भ मे सामान्य विकास भी विशेष अभ्यास से सिद्ध, अदृश्य पदार्थों अथवा भावों की कल्पना किस प्रकार से करना ? क्रिया, घटना, निर्माण की कल्पना, क्रिकेट, भाषण, टाइपिंग, शार्ट हैण्ड, लिपि और संयोजन को सुधारने मे उसका उपयोग।

□

पत्र चौदहवाँ

साहचर्य

प्रिय बन्धु !

अब तुम एक विषय पर ठीक-ठीक एकाग्र हो सकते हो और कल्पना के विकास के द्वारा बस्तुओ को मन में बरावर खड़ी कर सकते हो। इसलिए तुम्हे पहले की अपेक्षा अच्छा याद रहता है; परन्तु अव भी तुम्हारे लिए कई ऐसे सिद्धान्त जानने के है, कि जो स्मरण शक्ति की सहायता करने मे अति उपयोगी हैं। उनमे एक सिद्धान्त साहचर्य का है।

यह हमारे नित्य अनुभव की बात है कि दो-तीन मित्र वात पर डटे हुए हो तो तत्त्व ज्ञान से इतिहास पर, इतिहास से भूगोल पर, भूगोल से जन-स्वभाव पर, जनस्वभाव से खुराक पर, खुराक से रसोई, पर रसोई से रसोइये पर, रसोइये से महिलाओ की आदत पर आ पहुँचते है। अथवा दो समान सहेलियाँ वार्ता-निमग्न हो तो शाक भाजी से दाल-भात पर, दाल भात से अनाज पर, अनाज से राशनिंग पर, राशनिंग से सरकारी नीति पर, और सरकारी नीति पर से पाकिस्तान की नीति पर उतर पड़ती हैं, इसका अर्थ यह है कि मनुष्य को एक बात याद आने पर उससे मेल खाती दूसरी बात भी याद आ जाती है और दूसरी बात याद आने पर उससे लगती तीसरी बात भी याद आ जाती है। इस प्रकार यह परम्परा क्रमश: लम्बाती ही चली जाती है।

यह भी तुमने देखा होगा कि कोई वात याद न आ रही हो, पर अगर उनकी कोई एक कड़ी मिल जाए तो फिर क्रमश. समग्र वृत्तान्त याद आ जाता है।

शकुन्तला ने दुष्यन्त के समक्ष मुद्रिका की बात इसलिए उपस्थित की थी कि उसके स्मरण से दुष्यन्त को पूर्व स्नेह भाव की स्मृति हो।

हमारे कुछ कविताएं कंठस्थ की हुई होती हैं और समय गुजरते भूल जाते है; परन्तु अगर उसका प्रथम शब्द याद आए तो सम्पूर्ण कविता बराबर याद आ जाती है, इसका कारण क्या है? इसका कारण यही है कि हमारे मन मे प्रविष्ट हुआ कोई भी अनुभव या विचार, अनुभव या विचार के साथ संकलित होता है। तुम मनुष्य के विषय मे विचार करने लगोगे कि उसके रूप रग, वेष; स्वभाव, स्थान, जाति आदि विषयो का स्मरण आएगा ही। तुम घोडे पर विचार करने लगोगे कि उसका देखाव, शृंगार, उराकी शीघ्रता, उसका स्वभाव आदि मन के समक्ष उपस्थित हो जायेगे। इस रीति से किसी संत पुरुष का विचार करो कि उसकी सौम्यता, उसका उपदेश, उसका जीवन बिना याद आये नही रहेगा।

इस तरह एक विचार या अनुभव के साथ दूसरे विचार या अनुभव का ताजा होना, उनसे साहचर्य का सिद्धान्त कहलाता है।

साहचर्य जितना समृद्ध होता है, स्मरण उतना ही अधिक सरल होता है, यह बात तुम्हे सदा याद रखनी है। इसलिए एक वस्तु को याद रखने के लिए उसकी बन सके उतनी विशेषताओ को, याद रखो। यदि तुम्हे रीछ को याद रखना है तो उसका विचार इस प्रकार करो कि—

रीछ रग से काला होता है।
वह भयानक प्राणी है।
देह से राक्षस समान होता है।
शरीर पर रूखेबाल होते है।
वह वृक्ष से सटा हुआ खडा है।
वह मुँह फाड रहा है, आदि-आदि।

इस प्रकार से यदि तुमने रीछ पर विचार किया है तो याद करते समय उनमे से कोई न कोई बात तुम्हारे स्मृति पटल पर उतर ही आयेगी और उससे रीछ याद आ जायेगा।

मनुष्य मे, पशु में, पक्षी में, हरेक वस्तु मे कोई न कोई विशेष लक्षण होता है, इसका उपयोग यदि साहचर्य के सिद्धान्त के साथ किया जाए तो उसका नाम ही क्या उससे सम्बद्ध अनेक बातें भी याद रह जाती हैं। जैसे कि तुम परिभ्रमण के लिए निकले हो, उस समय तुम्हे तीन व्यक्ति सामने मिले हैं। उनमें एक का नाम खुशालदास, दूसरे का नाम नारायण दास और तीसरे का नाम चुन्नीलाल है। अब तुम्हे उन तीनो मनुष्यो के नाम याद रखने है; तो क्या करोगे ? उस समय साहचर्य के सिद्धान्त को उपयोग मे लो। जैसे कि खुशालदास का मुख जरा मुस्कराता हुआ है तो

हास्य—खुशाली—खुशालदास
हास्य—खुशाली—खुशालदास
हास्य—खुशाली—खुशालदास

इस तरह तीन बार मन मे बोल लो, यह नाम तुम्हे जरूर याद रह जायेगा।

अब नारायण दास का नाक जरा लम्बा है, तो -

सुन्दर नाक—गरुड—गरुडपति नारायण—नारायण दास
सुन्दर नाक—गरुड—गरुडपति नारायण—नारायण दास
सुन्दर नाक—गरुड—गरुडपति नारायण—नारायणदास।

इस प्रकार तीन बार मन मे बोल लो और यह नाम भी तुम्हे याद रह जायेगा।

तीसरे व्यक्ति चुन्नीलाल के दाँत जरा चमकते है, तो—
चमकता दाँत—चुन्नी—चुन्नीलाल
चमकता दाँत—चुन्नी—चुन्नीलाल
चमकता दाँत—चुन्नी—चुन्नीलाल

यो तीन बार मन मे बोलने पर यह नाम भी तुम्हे अच्छी तरह याद रह जायेगा। इसके बाद जब भी उन तीनो मनुष्यो मे से कोई भी तुम्हे सामने मिलेगा तब उसे देखते ही उसके नाम से पुकार सकोगे।

अब कल्पना करो कि तुम एक मित्र से मिलने उसके घर गये हो। उसके तीन पुत्रियाँ है। सुलोचना, रश्मिका और भारती। तुम्हे उन तीनो के नाम याद रखने हैं तो तुम उनका लाक्षणिकता जान

लो और उनके साथ उस नाम को जोड दो, जैसे कि—

सुलोचना जरा रूपवाली है, तो—
रूप-लोचन-लोचना—सुलोचना
रश्मिका गोल मुँह वाली है, तो—
गोल मुख-चन्द्र-चन्द्रिका-रश्मि—रश्मिका
भारती तूफानी है, तो—
तूफान-सागर-भरती—भारती

अब कल्पना करो कि तुम यात्रा कर रहे हो उसमे तीन प्रवासियो के साथ भेंट होती है। उनमे एक का नाम अनगप्पा, दूसरे का नाम फणीन्द्रनाथ और तीसरे का नाम जफरुल्ला खाँ है तो वहाँ भी तुम इस सिद्धान्त को उपयोग मे ले सकते हो।

अनगप्पा दक्षिण प्रान्त का है, काला है, तो व्यंग मे उसे अनग (कामदेव) कहकर उसे गप मारते हुए कल्पा जा सकता है और इस प्रकार श्याम—अनग—अनगप्पा—अनगप्पा का नाम याद रखा जा सकता है।

फणीन्द्रनाथ बगाली है, अच्छा गाने वाला है, तो सगीत, मुरली-फणी-फणीन्द्र-फणीन्द्रनाथ इस तरह यह नाम भी याद रखा जा सकता है।

जफरुल्ला खान क्रोधी आदमी है, तो उसकी पहचान जब्बर मान लो और निम्नोक्त सकलना करो :—

जब्बर उल्का खान, जफ्फर उल्का खान, जफर-उल्लाखान।

इस प्रकार ज्ञात और अज्ञात नाम, पशु-पक्षियो के नाम और घटनाएँ याद रखी जा सकती है, परन्तु यह साहचर्य कोई विशिष्ट प्रकार का होना चाहिए तभी मन मे स्फुरित है। इसलिए उसके प्रकार कितने है, इसे जानने की आवश्यकता है।

साहचर्य के विशिष्ट प्रकार छह है—

(१) समानता (२) विरुद्धता (३) तादात्म्य
(४) निकटता (५) कार्य भाव (६) कारण भाव

(१) समानता—कितनी ही वस्तुएँ आकार-समानता के द्वारा याद रह जाती है। जैसे कि—नारगी और गेंद, ढोल और पीपा, डिब्बा और पेटी।

कुछ वस्तुएँ अपने गुण-समत्व के कारण याद रह जाती हैं; जैसे कि—मिसरी और गुड, दूध और दही, प्रताप और शिवाजी तथा नेहरूजी और पटेल; और भी अनेक प्रकार से समानता को घटित किया जा सकता है।

(२) विरुद्धता—कुछ वस्तुएँ एक दूसरी से बिलकुल विरुद्धता धारण करने के कारण भी याद रह जाती है। जैसे कि—रात और दिवस, अग्नि और पानी, चूहा और बिल्ली, सर्प और नकुल, वेश्या और सती, चोर और साहूकार, राम और रावण, कृष्ण और कस, गांधीजी और गोडसे। गुणो के विषय मे भी ऐसे ही होता है जैसे कि पुण्य और पाप, धवल और काला, कडवा और मीठा, चतुर और नासमझ, भला और बुरा आदि।

(३) तादात्म्य—कुछ वस्तुएँ एक दूसरे मे ओत-प्रोत होने के कारण ही याद आ जाती है। जैसे—दूध और पानी, हृदय और भावना, मन और विचार, सागर और विशालता, महावीर और अहिंसा, गाधीजी और सत्य।

(४) निकटता—कुछ वस्तुएँ एक दूसरी के साथ पैदा होने के कारण या साथ रहने के कारण याद रह जाती हैं। जैसे कि—राधा और कृष्ण, राम और सीता, शकर और पार्वती, महावीर और गौतम*, भरत और बाहुबलि❋, नौका और नाविक, खड़ी और कलम, खीर और पूडी तथा वणिक-ब्राह्मण, पति-पत्नी, भाई-बहन, हरड-बहेड़ा, खरल-दस्ता आदि।

(५) कार्य भाव—कुछ वस्तुएँ एक वस्तु का कार्य या परिणाम रूप होने के कारण याद रह जाती है। जैसे कि—बर्फ और पानी, स्वर्ण और आभरण (जेवर) अहिंसा और धर्म।

(६) कारण भाव—कुछ वस्तुएँ एक वस्तु की कारण रूप होने की वजह से याद रह जाती है। जैसे कि—बीमारी और अजीर्ण, बीमारी और चूहे, वृक्ष और बीज, मुर्गी और अण्डा, भोजन

---

* भगवान महावीर स्वामी और उनके मुख्य शिष्य इन्द्रभूति गौतम।

❋ आदि चक्रवर्ती भरत और उनके भाई बाहुबलि।

और भूख, नुकसान और सट्टा। साहचर्य के ये छह प्रकार अलग २ शब्दो के साथ किस प्रकार सयोजित करने चाहिए इसके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। उनमें योग्य और अयोग्य का विवेक कैसे करना, यह भी बता रहा हूँ।

(१) घोड़ा—गदहा [विरुद्धता] गुण मे विरुद्ध है।

घोडा—गाय [समानता] दोनो खुरवाले चतुष्पद पशु हैं।

घोडा—शीघ्रता [तादात्म्य] घोड़े को देखकर शीघ्रता स्मृति मे आती है।

घोडा—घास [निकटता] घोडे के पास घास पड़ा रहता है, पर यह बात निरन्तर नही, घोडे के पास कितनी ही बार घास पडा हुआ होता है और कई बार नहीं भी। घोडे को देखते ही घास का स्मरण सरलता से होना मुश्किल है, जब कि असवार निकटता का द्योतक है।

(२) सिह—वाघ [समानता] दोनो हिंसक पशु है।

सिह—बकरी [विरुद्धता] एक बलवान है दूसरा निर्बल है।

सिह—पराक्रम [तादात्म्य]

सिह—सिहनी [निकटता]

सिह—जगल [निकटता]

(३) छोकरी—छोकरा [निकटता]

छोकरी—वोकरी [विरुद्धता] यह ठीक नही है। उनमे बोली की समानता होती है, इसलिए समानता मे आती है।

छोकरी—आभूषण [तादात्म्य], छोकरियो को आभूषणो का बहुत शौक़ होता है।

यह उचित नही, इसका समावेश निकटता मे होना चाहिए।

(४) टेबुल-कुर्सी [समानता] दोनो व्यवहार मे काम आती है

ठीक है, परन्तु जहाँ टेबुल रखी जाये वहाँ कुर्सी रखनी ही पडती है, इसलिए यहाँ निकटता की बात ज्यादा उपयुक्त है।

टेबुल—दवात [निकटता]

टेबुल—क्लर्क [निकटता]

टेबुल—खाट [विरुद्धता] टेबुल सपाट होती है और खाट (चारपाई) कुछ अन्य प्रकार की होती है। पर यह विरुद्धता की बात ठीक नहीं बैठती क्यो कि यह एकदम विरुद्ध गुण नही है कि जिससे उसे विरुद्धता की कक्षा मे डाला जा सके।

(५) गधा—घोडा [विरुद्धता] एक प्राणी मूर्ख है, दूसरा प्राणी होशियार है।

गधा—मूर्ख मनुष्य [समानता] गुण में दोनो समान है।

गधा—सहनशीलता [तादात्म्य]

गधा—गोणी (टाट की दुहरी बोरी) [निकटता]
ठीक है, पर कुम्हार ज्यादा उपयुक्त है।

(६) ग्राम—शहर [विरुद्धता]

दोनों बसने के स्थान हैं। इसलिए एक प्रकार की समानता है। रीति रिवाज की दृष्टि से विरुद्धता की कल्पना की जा सकती है। पर निकटता का सम्बन्ध सबसे अधिक उपयुक्त है। शहर के पास गाव अवश्य बसे हुए होते है।

ग्राम—ढेढवाडा* [समानता]

यह उचित नही है। इसमे समानता नही पर कार्य कारण भाव है। ग्राम कारण है और ढेढवाड़ा कार्य है। ग्राम होता है वहाँ ढेंढवाडा भी होता है, इसलिए उसे कार्य भाव मे रखना उचित है।

ग्राम—सादगी [तादात्म्य]

(७) नदी—सरोवर [निकटता] नदी-सरोवर सूख गये है तो भी धरती का स्वामी मेघ नही आया।

नदी—झरणा [समानता] दोनों एक प्रकार के पानी के प्रवाह हैं।

ठीक है, परन्तु कारण भाव यहाँ भी अधिक उपयुक्त जँचता है।

नदी—पवित्रता [तादात्म्य]

---

* ढेंढो को बसने का स्थान।

नदी-नाला [विरुद्धता] एक स्वच्छ और दूसरा गंदा।

(८) कपाल—तिलक [निकटता]

कपाल—भाग्य [तादात्म्य] कपाल को देखते ही भाग्य का ख्याल आता है।

कपाल—मुँह [समानता]

योग्य नहीं। निकटता उचित है।

कपाल-कपोल [समानता] शब्द की समानता है।

(९) बक (बगला)—ठग [समानता] दोनों ठग है।
बगला—श्वेतता [तादात्म्य]
बगला—मछली [निकटता]

बगला—साधु [विरुद्धता] एक कपटी, दूसरा प्रामाणिक।

(१०) बर्फी—पेडा [समानता निकटता]
बर्फी—जहर [विरुद्धता]
बर्फी—मिठास [तादात्म्य]
बर्फी—मावा [कारण भाव]
बर्फी—भोजन [कार्यभाव] बर्फी का भोजन बनता है।

मैं मानता हूँ कि साहचर्य को समझने के लिए अभी इतना विवेचन पर्याप्त है।

मंगलाकांक्षी
धी०

मनन

बात के बदलते विषय, कविता का प्रथम शब्द-साहचर्य, रीछ का उदाहरण, खुशालदास, नारायणदास और चुन्नीलाल आदि नये नाम। साहचर्य के छह प्रकार—समानता, विरुद्धता, तादात्म्य, निकटता, कार्यभाव और कारण भाव।

□

पत्र पन्द्रहवां

संकलन

प्रिय बन्धु !

स्मरण-शक्ति के विकास में स्वल्प प्रयत्न से बहुत अधिक याद कैसे रहे, यही सवाल मुख्य है और तुम देख चुके हो कि मन को एकाग्र करने से, इन्द्रियाँ अधिक कार्यक्षम होने से, कल्पना का विकास होने से और साहचर्य के सिद्धान्त पर उचित अमल करने पर कितना सरलतापूर्वक याद रह सकता है। अब तुम्हारे इन साधनो मे एक का और समावेश करो—यह है संकलन पद्धति।

यह तुम्हे कहा जाए कि निम्नोक्त दस शब्द याद रखो तो तुम कौन-सी रीति से याद रखोगे ?

अवलेह, शक्ति, काम, लक्ष्मी, सुख, सिक्ख, अमृतसर, सुवर्ण मन्दिर, सरोवर, कमल।

इन शब्दो को तुम इसी प्रकार बाँचते रहोगे तो याद रखना कठिन होगा। इसकी अपेक्षा यदि इनको किसी भी प्रकार से संकलित करोगे, किसी भी वस्तु के साथ जोड दोगे, तो ये अत्यन्त सरलता से याद रह जाएँगे। जैसे कि—

१-२ अवलेह से क्या होता है ? शक्ति आती है। 'शक्ति'।

२-३ शक्ति आने से क्या होता है ? अधिक काम हो सकता है। 'काम'

३-४ काम करने से क्या मिलता है ? लक्ष्मी, 'लक्ष्मी'।

४-५ लक्ष्मी से क्या मिलता है ? सुख, 'सुख'।

५-६ सुख से मेलवाला शब्द क्या है ? सिक्ख, 'सिक्ख'।

६-७ सिक्ख का मुख्य स्थान कहाँ है ? अमृतसर, 'अमृतसर'।

७-८ अमृतसर किससे प्रख्यात है ? सुवर्ण मन्दिर से, 'सुवर्ण-मन्दिर'।

८-९ सुवर्ण मन्दिर कहाँ स्थित है ? सरोवर मे, 'सरोवर' ।
९-१० सरोवर मे क्या खिलते है ? कमल, 'कमल' ।

ये शब्द यदि तुम धीरे-धीरे ध्यानपूर्वक दो-तीन बार पढ लोगे तो याद रह जाएगे । अजमा कर देख लो ।

अब ये दस शब्द एक साथ बोल जाओ । जरूर याद आ जाएँगे । अगर कोई शब्द याद न आए तो उसका सम्बन्ध फिर से ताजा करलो ।

इससे आगे वढो और नीचे को २० शब्दो की इसी प्रकार संकलना करो ।

भ्रमर, बगीचा, काश्मीर, श्रीनगर, झेलम, शिकारा, सैर आनन्द, पेटलाद, पटेल, भैस, दूध, डेरी, मक्खन, घी, आयुष्य, ब्रह्मचर्य, हनुमान, राम, जगल ।

१०-११ कमल के आसपास कौन चक्कर लगाता है ? भ्रमर, 'भ्रमर' ।
११-१२ भ्रमर दूसरे कौन से स्थान मे मिलता है ? बगीचे मे, 'बगीचा' ।
१२-१३ बगीचो के लिए सबसे अधिक प्रख्यात प्रान्त कौन-सा है ? काश्मीर, 'काश्मीर' ।
१३-१४ काश्मीर का मुख्य शहर कौन-सा है ? श्रीनगर, 'श्रीनगर' ।
१४-१५ श्रीनगर के बीचो-बीच कौन-सी नदी बहती है ? झेलम, 'झेलम' ।
१५-१६ झेलम मे कौन-सी डोगिया चलती है ? शिकारा, 'शिकारा' ।
१६-१७ शिकारो का मुख्य उपयोग कौन-सा है ? सैर, 'सैर' ।
१७-१८ सैर किसलिए की जाती है ? आनन्द के लिए, 'आनन्द' ।
१८-१९ आनन्द के पास कौन-सा गाव है ? पेटलाद, 'पेटलाद*' ।
१९-२० पेटलाद मे किनकी बस्ती अधिक है ? पटेलों की, 'पटेल' ।
२०-२१ पटेलो के घर मे क्या होता है ? भैस, 'भैस' ।
२१-२२ भैस क्या देती है ? दूध, 'दूध' ।
२२-२३ दूध अधिक कहाँ मिलता है ? डेरी मे, 'डेरी' ।
२३-२४ डेरी का मुख्य कार्य क्या होता है ? मक्खन बनाना, 'मक्खन' ?

* ये गुजरात के शहर है ।

२४-२५ मक्खन का क्या है ? घी, 'घी' ।
२५-२६ घी का दूसरा नाम क्या है ? आयुष्य, 'आयुष्य' ।
२६-२७ आयुष्य किससे बढता है ? ब्रह्मचर्य से, 'ब्रह्मचर्य' ।
२७-२८ ब्रह्मचर्य के लिए कौन प्रख्यात है ? हनुमान, 'हनुमान' ।
२८-२९ हनुमान किसके भक्त थे ? राम के, 'राम' ।
२९-३० राम ने प्रतिज्ञापालन के लिए क्या किया ? जंगल मे भटके, 'जगल' ।

अब दूसरे बीस शब्द लो ।

गिरि, काष्ठ कुल्हाडी, लोहा, निष्ठुर, हिम्मतलाल, बढ़माण वीछीया (एक गांव) कोटवाल, मामलतदार, हवलदार, चौकी, वृक्ष, चाकू, तलवार, धनुष, जमीदार, सौराष्ट्र, सज्जनता और विद्या ।

इन शब्दो की सकलना निम्न प्रकार से करो ।

३०-३१ जंगल प्रख्यात कहाँ का होता है ? गिरि• का ।
३१-३२ गिरि मे विशेष रूप से क्या मिलता है ? 'काष्ठ ।
३२-३३ काष्ठ को कौन काटता है ? 'कुल्हाडी' ।
३३-३४ कुल्हाडी किसकी बनती है ? 'लोहे को' ।
३४-३५ लोहे के समान किसका हृदय होता है ? 'निष्ठुर' का ।
३५-३६ निष्ठुर कौन है ? हठीला 'हिम्मतलाल' ।
३६-३७ हिम्मतलाल कहाँ रहता है ? 'बढमाण' मे ।
३७-३८ बढमाण वाले की लडकी का विवाह कहाँ किया है ? वीछीया मे ।
३८-३९ वीछीया मे चतुर कौन है ? 'कोटवाल' ।
३९-४० कोटवाल के ऊपर कौन होता है ? 'मामलतदार' ।
४०-४१ मामलतदार के यहाँ रोज कार्य करने कौन जाता है ? 'हवलदार' ।
४१-४२ हवलदार कहाँ रहता है ? 'चौकी' मे ।
४२-४३ चौकी के पास क्या उगा हुआ है ? 'वृक्ष' ।
४३-४४ वृक्ष की कोमल टहनियाँ किससे काटी जाती है ? 'चाकू' से ।
४४-४५ चाकू से अधिक बड़ा हथियार क्या होता है ? 'तलवार' ।
४५-४६ तलवार की अपेक्षा प्राचीन हथियार कौन-सा है ? 'धनुष' ।

• सौराष्ट्र का सुप्रसिद्ध जगल हैं ।

४६-४७ धनुष किसके यहाँ पड़ा है ? 'जमीदार' के यहाँ ।
४७-४८ ये जमीदार कहाँ के है ? 'सौराष्ट्र' के ।
४८-४६ सौराष्ट्र मे अधिकता से क्या मिलती है ? 'सज्जनता' ।
४६-५० सज्जनता किससे आती है ? 'विद्या' से ।

अब पहले शब्द से क्रमशः विचार करो, इस क्रम से एक शब्द याद आता चला जायेगा और इस प्रकार पूरे के पूरे पचास याद आ जाएँगे । कुछ दिनों के अभ्यास से ही तुम इस रीति से ५०० जितने शब्द याद रख सकोगे ।

तुम्हें संभवतः यह महसूस होगा कि यह बात तो जल्दी संबध बन सके, उन शब्दों की हुई । पर मुश्किल शब्दो का या जिन शब्दों का एक दूसरे के बीच सम्बन्ध न जोड़ा जा सके उन शब्दो का क्या हो ? परन्तु यह विचार भूल भरा है । कल्पना बराबर उत्तेजित हो तो चाहे जैसे शब्द जोडे जा सकते हैं ।

अ—कौआ, डाक, हिमालय, अमेरिका, दालभात, गीताजी ।

इन शब्दों को नीचे के क्रम से जोडा जा सकता है ।

१-२ कौआ डाक की पेटी पर बैठा है ।
२-३ डाक हिमालय के आश्रम की है ।
३-४ हिमालय मे अमेरिका की एक पर्वतारोहक मण्डली खोज के लिए आई है ।
४-५ अमेरिका वालों की खुराक पृथक् प्रकार की होने पर भी यहाँ आने के बाद दालभात खाने लगे है ।
५-६ दालभात की खुराक खाते गीताजी पढने की इच्छा हुई ।

इन सम्बन्धो की कल्पना करते समय उस प्रकार के चित्र मन मे खडे करने से न चूके । चित्रो के निर्माण मे सभव और असभव दोनो प्रकार की कल्पनाएँ उपयोगी हो सकती है ।

आ—कबूतर, आईसक्रीम, महासभा, रीछ, ग्राम, विद्यापीठ

६-७ गीताजी की छोटी प्रति कबूतर गर्दन मे बाँधकर लडाई मे ले जा रहा है ।
७-८ सिपाही लोग कबूतर को आईस्क्रीम खिलाते हैं ।
८-९ आईस्क्रीम का प्रबन्ध महासभा की ओर से हुआ है ।

९-१० महासभा में रींछ का चिह्न धारण करने वाली एक गुप्त मण्डली है।

१०-११ रींछ का उपद्रव ग्राम मे अधिक होता है।

११-१२ ग्राम में एक विद्यापीठ खडी की गई है।

☞—सेवक लाल, दु:ख, कुटुम्बी, जलेबी, गधा, ब्राह्मण।

१२-१३ ग्राम की विद्यापीठ मे सेवकलाल बहुत सुन्दर काम करता है।

१३-१४ सेवकलाल ने दु:ख सहन करने मे कदम पीछे नही हटाया।

१४-१५ दु:ख देने में ग्राम के कुटुम्बी लोग मुख्य है।

१५-१६ कुटुम्बियो के सिर पर कर्ज होने पर भी रोज सुबह जलेबी खाते हैं।

१६-१७ एक कुटुम्बी जलेबी खाते हुए गधे पर बैठा है।

१७-१८ गधा ब्राह्मण को सामने देखकर हूँकता है।

इस प्रकार सकलना करने मे सामान्य ज्ञान, साहचर्य और कल्पना खूब मददगार होती है। इसलिए उन हरेक का महत्त्व अगले पत्रो मे बताया गया है।

पिछले पत्र पढते रहना तथा उनमे जो जो अभ्यास के योग्य हो, उसका अभ्यास करते रहना।

मगलाकांक्षी
धी०

मनन

संकलन की महत्ता, हरेक शब्द की किसी न किसी प्रकार से दूसरे शब्द के साथ सकलना की जा सकती है।



पत्र सोलहवां

रेखा और चिह्न

प्रिय बन्धु !

इस पत्र मे तुम्हारा ध्यान रेखा और चिह्नो की उपयोगिता की तरफ खींचना चाहता हूँ। क्योकि इनके योग्य उपयोग से भी याद रखने में बहुत सरलता होती है।

पिछले पत्र मे सकलन के वर्णन प्रसंग में जो वाक्य लिखे गये हैं, उनमे कितनेक शब्दो के नीचे रेखाएँ खीची गई हैं। जैसे कि—

भ्रमर विशेष रूप से कहाँ मिलता है ?

बगीचो मे।

यहाँ भ्रमर और बगीचा ये दो शब्द याद रखने पर पूर्ण वाक्य बराबर याद आ जाता है। सिर्फ उसे पढते समय बगीचे मे भ्रमर फिर रहा है, ऐसी कल्पना करना अपेक्षित है।

अब एक बड़ा वाक्य लेकर रेखाओ का परीक्षण करके देखो। यह वाक्य निम्नोक्त है—

ब्रह्मसूत्र पच्चीस बार बाँचो या सुनो, पचदशी का पच्चास बार पारायण करो, गीता को रट-रट कर कण्ठस्थ करो, महान् सत की सेवा मे रात-दिन उठ बैठ करो, पर तुम्हारे मन का कचरा तुम्हारे सिवाय कोई भी ठीक-ठीक नहीं देख सकेगा और तुम्हारे सिवाय उसे कोई भी निकाल नही सकेगा।

इस वाक्य मे निम्नोक्त प्रकार से रेखाएँ खीचोगे तो पूर्ण वाक्य खूब सरलता से याद रह जायेगा।

ब्रह्मसूत्र पच्चीस बार बाचो या सुनो, पचदशी का पच्चास बार पारायण करो, गीता को रट-रट कर कठस्थ करो, महान सन्त की सेवा मे रात-दिन उठ बैठ करो, पर तुम्हारे मन का कचरा

तुम्हारे सिवाय कोई भी ठीक-ठीक नही देख सकेगा और तुम्हारे सिवाय कोई भी निकाल नही सकेगा।

इस वाक्य मे पहले एक रेखा वाले शब्दो पर ध्यान दो, जैसे कि—ब्रह्मसूत्र, पंचदशी, गीता, सन्त की सेवा, मन का कचरा, देख नही सकेगा। निकाल नही सकेगा। इन्हें दो तीन बार शान्ति से पढ़ लो, फिर दो रेखा वाले शब्दों पर ध्यान दो, जैसे कि—सुनो, पारायण करो, कण्ठस्थ करो, उन्हे भी दो तीन बार एकाग्रता-पूर्वक पढ लो।

अब उस पूरे वाक्य को निम्नोक्त प्रकार से ध्यान पूर्वक बांचो और हरेक भाग को मन में तीन बार बोलो।

ब्रह्मसूत्र—पच्चीस बार बांचो अथवा सुनो,
पंचदशी—का पचास बार परायण करो,
गीता को रह-रह कर कंठस्थ करो।
महान सन्त की सेवा मे रात दिन उठ बैठ करो।
पर तुम्हारे मन का कचरा तुम्हारे सिवा कोई भी ठीक-ठीक
नहीं देख सकेगा।

और तुम्हारे सिवाय कोई भी इसे निकाल नही सकेगा।

इस प्रकार से पढाये गये वाक्य का अर्थ पूरा समझ में आ जाता है, इस तरह उसकी भाव-सकलना हो जाती है। इसलिए वाक्य को याद करने की इच्छा करते ही वह वाक्य क्रमश: स्मृति पटल पर उतर आता है, प्रयोग करके देखो।

दूसरे एक वाक्य के द्वारा इस रेखा पद्धति की उपयोगिता पर विचार करो।

"सिन्ध प्रान्त के लारकाना जिले मे आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व मोहनजोदडो नाम की भव्य और समृद्ध नगरी सिन्धु के तट पर थी जिसके मकान ईट के थे और राजमार्ग चौड वैसे ही पद्धतिबद्ध थे।

[अपने देश का माध्यमिक इतिहास पृ. २६ थोडे परिवर्तन के साथ]

इस वाक्य में नीचे के मुताबिक रेखाओ का उपयोग करो—

सिन्ध प्रान्त के लारकाना जिले मे, आज से पांच हजार वर्ष पूर्व मोहनजोदडो नाम की भव्य और समृद्ध नगरी सिन्धु नदी के तट पर थी। जिसके मकान ईंट के बने हुए थे और राजमार्ग चौडे और वैसे ही पद्धतिबद्ध थे।

सिन्ध, लारकाना, पाँच हजार वर्ष, मोहनजोदडो, सिन्धु-तट, मकान, राजमार्ग इन शब्दों को तीन बार मन मे धीमे से बोलो। फिर उन पर नीचे-लिखे प्रकार से विचार करो।

इस वाक्य में मोहनजोदड़ो नाम की नगरी का वर्णन है।

प्रान्त सिन्ध
जिला लारखाना
समय पाँच हजार वर्ष

वर्णन उसके मकानो का और राजमार्गों का। अब धीरे-धीरे निम्नोक्त ढग से उस वाक्य को मन में तीन बार बांचो।

सिन्ध प्रान्त के,
लारखाना जिले मे,
आज से पाच हजार वर्ष पूर्व,
मोहनजोदडो नाम की एक भव्य और समृद्ध नगरी,
सिन्धु नदी के तट पर थी।
जिसके मकान ईंट के बने हुए थे और
राजमार्ग चौडे तथा पद्धतिबद्ध थे।

जहाँ वाक्य विभाग लम्बे हो वहाँ विशेष विचारणा करनी चाहिये। जैसे कि—मोहनजोदडो कैसी नगरी थी? भव्य और समृद्ध। कैसी? भव्य और समृद्ध। राजमार्ग कैसे थे? चौड़े तथा पद्धतिबद्ध। कैसे? चौडे तथा पद्धतिबद्ध, चौडे तथा पद्धतिबद्ध।

अब इस वाक्य को धीरे-धीरे स्मृति-पट पर लाओ। तो इसके मूल क्रम मे बराबर आ जायेगा।

कविता को याद रखने मे भी रेखाएँ उपयोगी साबित होती है।

कवितापाठ मे कहाँ विराम लेना चाहिये, यह ठीक-ठीक समझ लेना अपेक्षित है। यदि विचार के मुख्य केन्द्रो पर विराम लिया जायेगा तो वह बराबर सफल होगी। जैसे कि—

मालिनी छन्द

अनिल दल बजावे कुंज मां पेसी वसी,
तरुवर वर शाखा - नृत्य नी धून चाले;
विहगगण मधुरा सूर थी गीत गाय,
खल खल नादे निर्झरो ताल आये।

ये पक्तियां इस पुस्तक के लेखक द्वारा लिखित 'अज़न्ता का यात्री' नामक खण्डकाव्य से उद्धृत हैं। इन पक्तियो के वाचन से यह बात अच्छी तरह समझी जा सकती है कि इनका मुख्य उद्देश्य प्रकृति का सगीत बताना है, इसलिए उसका वर्णन उनमे क्रमश: किया गया है। इसलिए रेखाएँ नीचे के क्रम से खीचनी चाहिये—

अनिलदल बजावे कुंज मा पेसी वशी,
तरुवर वर शाखा-नृत्य नी धून चाल,
विहगगण मधुरा सूर थी गीत गाय,
खल खल नादे निर्झरो ताल आये।
अनिल दल-वशी तरुवर-नृत्य विहगगण सगीत निर्झरो-ताल।
वशो, नृत्य, गीत और ताल।

वशी—अनिलदल बजावे कुंज मे प्रविष्ट वशी।

नृत्य—तरुवर वर शाखा नृत्य की धुन चले।

गीत—विहगगण मधुर स्वर से गीत गाये।

ताल—खल खल शब्द से निर्झर ताल देते है।

कविता को पहले अच्छी तरह समझ लेना चाहिए और फिर याद करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करने पर वह बिना रटे ही बराबर याद रह जाती है। छन्द की लय आती हो तो याद रखने मे काफी सरलता हो जाती है।

अब पहले इन पंक्तियों का अर्थ समझ लो। अनिल का दल अर्थात् पवन की सेना वृक्षो के कुंज मे प्रविष्ट होकर वशी बजा रही है। तरुवर अर्थात् वृक्ष, उसकी वर शाखा अर्थात् सुन्दर डालियाँ, उनका जो नृत्य है, वह धुन मचा रहा है। विहगगण अर्थात् पक्षी समूह मधुर स्वर मे गीत गा रहा है और निर्झर अर्थात् पानी के झरने, प्रकृति के ये वाद्य (नृत्य और गीत मे) खल खल की आवाज से ताल की पूर्ति कर रहा है।

अब ऊपर की पक्तियाँ पढते हुए नीचे के अनुसार कल्पना चित्र खडे करो, इससे वे बराबर याद रह जायेगी।

अनिल दल बजावे कुंज मां पेसी वंसी

[अनिल भाई वृक्षो के कुंज मे प्रविष्ट होकर वशी बजाते हैं]

तरुवर-वर शाखा नृत्य की धून चाले

[तरूलता नाम की सुन्दर लड़की नृत्य कर रही है।

विहगगण मधुरा सूर थो गीत गाय

[विवाह का प्रसग चल रहा है उसमे गीत गा रही है]

खल खल नादे निर्झरो ताल आये

(हजारीमल मृदंग बजाता हुआ ताल दे रहा है।)

अनिल भाई की वंशी, तरूलता का नृत्य, विवाह के गीत और हजारीमल का ताल, बस यह कल्पना-चित्र भावो के द्वारा बरावर संकलित होने पर विस्मृत नही होगा। तुम इन चार पक्तियो को सरलता से बोल सकोगे।

यह वर्णन मानसिक क्रिया को समझने के लिए किया है, इसलिए लम्बा लगता है पर मन को एक बार अभ्यास होने पर वह क्रिया इतनी शीघ्रता से होती है कि वह सब स्वाभाविक सा वन जाता है।

कविता को याद रखने मे इस पद्धति का अनुसरण करो।

यथार्थ घटना और अङ्को को याद रखने मे भी रेखाओ का उपयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है जैसे कि—भारत मे लोहा कहाँ-कहाँ निकलता है? तो भारत का नक्शा देख कर उसके जिस

जिस भाग मे लोहा निकलता है, उनके नीचे रेखा खीच दो। इसी प्रकार दूसरी धातु, उपज, उद्योग आदि समझने चाहिए। मार्गों को याद रखने के लिए भी नक्शे मे एक दूसरे स्थल को जोड़ती हुई रेखायें खीचने से उनकी दिशायें सरलता से याद रह जाती है।

अङ्को का मुख्य कार्य परिणाम बताना है। इसलिए मात्र अङ्क लिखने की अपेक्षा यदि उनके साथ रेखाओं का उपयोग किया जावे तो उनकी स्मृति मन मे दृढता से अङ्कित हो सकती है जैसे कि—

उपज सन् १९४८ की ४० प्रतिशत

उपज सन् १९४९ की ७० प्रतिशत

उपज सन् १९५० की ५० प्रतिशत

अब आज यथार्थ देखने के लिए रेखाओ का उपयोग करो और देखो कि वह कितनी शीघ्रता से याद रहता है—

	१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००
१९४८	—	—	—	—						
१९४९	—	—	—	—	—	—	—			
१९५०	—	—	—	—	—					

रेखाओ का उपयोग तुरन्त ही तुलनात्मक विचार देता है। सन् १९४९ की उपज सबसे अधिक थी। सन् १९५० की उससे दो खाना कम थी और सन् १९४८ की उससे भी एक खाना कम थी। इसलिए मात्र १९४८ की ४० प्रतिशत उपज याद रखने से तीन साल की उपज बराबर याद रह सकती है। केवल अङ्को से मन मे चित्र खडा नही होता, जब कि रेखाये एक प्रकार का चित्र खड़ा कर देती हैं। इस कारण वे सरलता में वृद्धि करती है।

जहाँ वस्तुओ के विविध परिमाण को अथवा तरतम भावो को याद रखना हो, वहाँ अलग-अलग रग की पेंसिलो का उपयोग कर सकते हैं जैसे कि उत्कृष्ट भाव के लिए लाल, मध्यम भाव के लिए बादामी, सामान्य भाव के लिए हरा, मन मे भी रगीन रेखायें

खीची जा सकती है जो कल्पना के माध्यम से आकृति और रग को मन मे बराबर ला सकते है उनके लिए यह सरल है।

रेखाओ के लिए अलग-अलग प्रकार के चिह्नो का उपयोग भी याद रखने मे अच्छी मदद करता है। उदाहरण के तौर पर— १ २ ३ ३ २ १ २ ४ ६ ६ ४ २ ३ ६ ९, इन अङ्को को ऐसे के ऐसे याद रखना हो तो बहुत कठिन लगता है पर उनमे यदि निम्नोक्त चिह्न किये जाएँ तो सरलता होती है, जैसे कि—१२३, ३२१, २४६, ६४२, ३६९।

भाषा मे भी अल्पविराम, अर्धविराम, पूर्ण विराम, प्रश्नार्थ चिह्न, आश्चर्य विराम-चिह्न और अवतरण-चिह्न आदि उनका अर्थ समझने में सहायता करते है। इसलिए याद रखना सरल हो जाता है; परन्तु अपने शिक्षण क्रम मे उनका उपयोग कैसे करना चाहिए उस सम्बन्ध मे पूर्ण ज्ञान नही मिलता, इसलिएँ उनकी होनी चाहिए वैसी महत्ता अपने दिल मे नही बैठी। महान् प्रसिद्ध लेखक भी इन चिह्नों के विषय मे होने चाहिए उतने व्यवस्थित नही होते है। इसी कारण पाठको को उनके लेखन का भाव जितना होना चाहिए उतना हृदयगम नही हो पाता।

प्रिय बन्धु ! यह पत्र प्रमाण में कुछ लम्बा हो गया है, पर तुम इस विषय के रसिक हो, इसलिए तुम्हे लम्बा नही लगेगा, ऐसा मानता हूँ। विशेष बाद मे।

मगलाकाक्षी
धी०

मनन

वाक्यो को याद रखने मे रेखाओ का उपयोग, कविता, घटना और अंको को याद रखने मे उनका उपयोग, गणित, भाषा आदि मे व्यवहृत चिह्नो का स्मरण शक्ति की दृष्टि से महत्त्व।

□

पत्र सतरहवां

वर्गीकरण

प्रिय बन्धु !

सिद्धान्तो का उपयोग करने से याद रखना कितना सरल हो जाता है, उसके कुछेक अनुभव तुम प्राप्त कर चुके हो । इस प्रकार सिद्धान्तो का उपयोग करना,एक प्रकार की कला है और इसी कारण इस विषय को स्मरण-कला के रूप मे प्रकट किया गया है । इस पत्र मे इस कला का एक विशेष पहलू प्रकट करना चाहता हूँ, वह है वर्गीकरण का सिद्धान्त ।

अनेक वस्तुओ के समूह मे से समान गुण वाली वस्तुओ को पृथक्-पृथक् छाटना वर्गीकरण कहलाता है । जैसे कि—एक छावडी मे निम्नोक्त खिलौने भरे हुए है—तोता, गाय, दाड़िम, चिडिया, आम, हडा, हाथी, अमरूद, घोडा, मोर, थाली और कटोरा ।

हम उन्हे निम्नोक्त प्रकार से पृथक् करे तो वह उनका वर्गीकरण कहलाता है ।

(१)	(२)	(३)	(४)
तोता	गाय	दाडिम	हडा
चिडिया	हाथी	आम	थाली
मोर	घोडा	अमरूद	कटोरा

इसमे खिलौनो के चार वर्ग किए है उनमे प्रथम वर्ग पक्षियो का है, दूसरा वर्ग पशुओ का है, तीसरा वर्ग फलो का है और चौथा वर्ग वर्तनो का है । अब जो नाम ऊपर लिखे गये है, वैसे ही याद रखने हो तो वहुत परिश्रम करना पडता है । जब कि उनका वर्गीकरण करने पर एक वस्तु के याद आते ही दूसरी भी याद आ जाती है । सरलता से सब याद रह जाती है ।

मन में कल्पना करो कि निम्नोक्त अठारह वस्तुएँ एक कागज पर लिखी हुई है—थाली, नारगी, कागज, हडा, लौटा, मौसम्बी, टेबुल, कटोरा, अमरूद, खडी, चिकू, चाकू, आम, कुर्सी, चम्मच, दाडिम, कलम, प्याला ये वस्तुएँ तुम्हे याद रखनी है, तो उनका वर्गीकरण नीचे के मुताबिक करना चाहिए—

(१)	(२)	(३)
थाली	नारगी	कागज
हडा	मौसम्बी	टेबुल
लौटा	अमरूद	खडी
कटोरा	चिकू	चाकू
चम्मच	आम	कुर्सी
प्याला	दाडिम	कलम

इस वर्गीकरण को भी अभी एक बार फिर अधिक व्यवस्थित करो, तो वह नीचे के मुताबिक हो सकता है—

थाली	नारगी	कुर्सी
कटोरा	मौसम्बी	टेबुल
लोटा	दाडिम	खड़ी
प्याला	अमरूद	कलम
चम्मच	आम	कागज
हडा	चिकु	चाकू

इस प्रकार वर्गीकरण होने से अठारह नाम अब तुम सरलता से याद कर सकते हो। उसमे प्रथम इतनी ही बात याद रखने की है कि बरतन, फल, आफिस का सामान। सामान्य मनुष्य को भी ये याद रह सकती है। जब बरतनो के नाम याद करोगे तब स्वाभाविक रीति से ही थाली, कटोरा याद आ जायेगा, उनके साथ ही लोटा, प्याला भी याद आ जाएगा और थोडे से विचार मात्र से चम्मच और हडा भी स्मृति पट पर उतर आएँगे। ये समस्त वस्तुएँ निकटता का साहचर्य रखती हैं। इसलिए एक बार इनका कल्पना-चित्र मन मे खीचा कि वे समग्र वस्तुएँ स्वाभाविक ही याद आ जाती

है। उसी प्रकार फलों का उनमें नारगी—मौसम्वी मे आकार की समानता है और निकटता भी है। बन सके जहाँ तक नारगी-मौसंबी आदि वस्तुएँ साथ ही बेची जाती है। इसलिए ये सरलता से याद आ जाती है। दाडिम और अमरूद के बीच निकटता का साहचर्य है। आम और चिकू के बीच आकार की समानता है और फलों का विचार करते ही ये फल सामान्यतया याद आ जाते है। वैसे ही आफिस के सामान का। आफिस का सामान कहते ही कुर्सी-टेबुल याद आ जाएगी। उनके साथ खडी-कलम भी याद आ जाएगी और वे याद आये कि कागज तथा चाकू भी याद आ जाएँगे। इस प्रकार वस्तुओ का वर्गीकरण करने से खूब सरलता-पूर्वक याद रह सकता है।

अब अनेक विषयो के ज्ञान का समिलन करना होता है, उन्हे व्यवस्थित प्रकार से सगृहीत रखना होता है, तब उनका वर्गीकरण करके याद रखने पर अच्छी तरह से याद रह सकता है जैसे कि—

(१) भाषा—गुजराती, मराठी, हिन्दी, संस्कृत और अ ग्रेजी।

(२) इतिहास—गुजरात का इतिहास, भारत का इतिहास, ब्रिटेन का इतिहास।

(३) भूगोल—प्राकृतिक भूगोल, व्यापारी भूगोल, प्राथमिक भूगोल।

(४) गणित—अंक गणित, बीज गणित, त्रिकोणमिति।

(५) प्रकीर्ण—सगीत, व्यायाम, विज्ञान।

किसी भी विषय को ग्रहण करते समय यदि उनका सबध वर्ग के साथ बराबर जोडा हुआ हो तो वे सरलता से याद आ जाते हैं। जैसे कि २० पशुओ को याद करना है, तो मन में एक के वाद एक निम्नोक्त नाम कौधेंगे—गाय, भैस, बकरी, भेड, हाथी, घोड़ा, खच्चर, ऊँट, सियाल, खरगोश (शश), बाघ, सिंह, रीछ, चित्ता, हिरण, रोझ, सूअर, बन्दर, कुत्ता, और बिल्ली परन्तु उस समय टेबुल, दीपक, चमच आदि याद नही आएँगे कारण कि उनका सबध पशु वर्ग के साथ जुडा हुआ नही है। उसी प्रकार यदि हमे यह कहा जाए कि खुरवाले पशुओ के नाम बोलो तो हम निम्नोक्त पशुओ के नाम गिनाएँगे—गाय, भैस, बकरी, भेड, घोडा, खच्चर, हिरण, रोझ आदि। पर उस समय सिंह, बाघ,

चित्ता, बन्दर, कुत्ता आदि नाम नही गिनाएँगे, क्योंकि हमने उनका खुरवाले पशु वर्ग के साथ सबन्ध नहीं जोड रखा है।

एक ही समान हिस्सेवाली या उतार-चढाव वाली वस्तुओ मे क्रमशः सबध किये हुए विषयो मे भी एक प्रकार का वर्ग ही है। इस कारण एक का स्मरण होते ही अवशिष्ट सभी विषयो का स्मरण अपने आप हो जाता है। जैसे कि—

(१) सात वार—रवि, सोम, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि।

इस वार समुदाय मे से कोई भी याद आए फिर बाकी के समस्त वार क्रमशः याद आ जाएँगे। जैसे कि सन् १९५० के फरवरी महीने की प्रथम तारीख को कौन सा वार था? यह याद करने का प्रयत्न करते है; पर याद नही आ रहा है। उस स्थिति मे यह स्मरण होता है। कि सन् १९५० की २६ जनवरी भारत का सार्वभौम प्रभुसता का गणतन्त्र दिवस है, और उस दिन गुरुवार था और शीघ्र ही निम्नोक्त विचार धारा चलती है—

२६	जनवरी	को	गुरुवार
२७	,,	,,	शुक्रवार
२८	,,	,,	शनिवार
२९	,,	,,	रविवार
३०	,,	,,	सोमवार
३१	,,	,,	मगलवार
१	फरवरी	को	बुधवार

इस प्रमाण से हमे दृढ निश्चय हो जाता है कि प्रथम फरवरो को बुधवार था।

(२) तिथियां—१ से १५ (पूनम तक)
१ से १५ (अमावस्या तक)

(३) महीने—कार्तिक से आश्विन

(४) ऋतुएँ—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर।
इनमे हरेक ऋतु दो-दो महीनो की होती है।

(५) घडी—दिन के तीस समान भाग।

(६) पल—घडी के साठ समान भाग ।
(७ विपल—पल के साठ समान भाग ।
(८) घण्टा—दिन के चौबीस समान भाग ।
(६) मिनट—घण्टा के साठ समान भाग ।
(१०) सैकिण्ड—मिनट के साठ समान भाग ।

चढता क्रम अथवा उत्तरोत्तर मोटे विषय—

१ एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नव, दश आदि सख्या ।

२ एक, तीन, पाँच, सात, नव, ग्यारह आदि विषम संख्या ।

३ दो, चार, छह आठ, दश, बारह आदि सम सख्या ।

४. एक, दो, चार, आठ, सोलह, बत्तीस, चौसठ आदि द्विगणित होती हुई सख्या ।

५ एक, तीन, नव, सत्तावीस, इक्यासी, दो सौ तियाँलिस आदि त्रिगुणित सख्या ।

६. एक, चार, सोलह, चौसठ, दो सौ छप्पन आदि चौगुनी होती हुई सख्या ।

७. एक, दस, सौ, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड, दस करोड, अरब, दस अरब आदि दस गुनी होती हुई सख्या ।

८. मनुष्य, कुटुम्ब, ज्ञाति, समाज, राष्ट्र और विश्व (रचना) ।

९. हवालदार, मुखिया, कोटवाल, पटवारी, मामलतदार, जिलाधीश, प्रान्ताधिकारी, राजा (अधिकार)

१०. कोठरी, मंजिल, मकान की मञ्जिल, सकडी गली, मोहल्ला, ग्राम, इलाका, जिला, प्रान्त, देश, खण्ड, दुनियाँ (स्थल विभाग)

उतरता क्रम अथवा क्रमशः उतरते विषय—उपर्युक्त हरेक विषय उल्टे क्रम से लेने पर उनका क्रम उल्टा गिना जाता है । जैसे कि—

१. दस, नव, आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एक ।
२. नव, सात, पाँच, तीन, एक ।
३. बारह, दस, आठ, छह, चार, दो, एक ।
४. चौसठ, बत्तीस, सोलह, आठ, चार, दो, एक ।
५ इक्यासी, सत्तावीस, नव, तीन, एक ।

६ दो सौ छप्पन, चौसठ, सोलह, चार, एक ।

७ लाख, दस हजार, सौ, दस, एक ।

८. विश्व, देश, समाज, ज्ञाति, कुटुम्ब, व्यक्ति ।

९. राजा, प्रान्ताधिकारी, जिलाधीश, मामलतदार, पटवारी, कोटवाल, मुखिया, हवालदार ।

१०. दुनिया, खण्ड, देश, प्रान्त, जिला, इलाका, ग्राम, मोहल्ला, सकडी गली, मकान की मञ्जिल, मञ्जिल, कोठरी ।

संख्या मे विभक्त की हुई सख्या भी उतरते क्रम मे ही आए । जैसे कि—

११. दुगुना, पूर्ण, आधा, चतुर्थ भाग, दो आना, एक आना ।

१२. $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{८}$, $\frac{१}{१६}$ आदि

$\frac{१}{१०}$ $\frac{१}{१००}$ $\frac{१}{१०००}$ $\frac{१}{१००००}$ आदि

अब इस वर्गीकरण से याद करना कितना सरल हो जाता है, उसे देखो ।

बम्बई शहर मे ६५ लाख मनुष्यो की बस्ती है । इनमे यदि हरेक व्यक्ति को मात्र क्रमाक ही दिया जाए तो वह सख्या एक से लेकर ६५ लाख तक पहुँच जायेगी । इसलिए किसी व्यक्ति का क्रम पाँच आये तो कोई का २५ आये, किसी का २५६ आये तो किसी का २०९२ आये, किसी का ३२१८७ आये तो किसी का ७९५३६२ आये और किसी का १६५८४९२ आए । अब यदि हमारे पास इस प्रकार की ही व्यवस्था हो तो क्या किसी भी व्यक्ति का पत्र उसको पहुँचाया जा सकता है ? इस स्थिति मे तो हमे हरेक व्यक्ति को क्रमश खोजना पडे, इसलिए १६५८४९२ क्रमाक वाले व्यक्ति तक पहुँचते, दिवस, महीने, वर्ष, कई दशक भी निकल जायें और फिर मनुष्य जाति विहरणशील है अत: किसी क्रम से भी नही खोजा जा सकता और कदाचित् खोजा भी जाय तो कितना समय लग जाए ? अगर उसी व्यक्ति को वर्गीकरण के आधार पर खोजा जाए तो एक या दो घडी मे ही खोज हो सकती है । जैसे कि—व्यक्ति १६ ५८,४९२, न ६५ चोथी मंजिल, स्वामी नारायण भवन, तीसरा मोहवाडा, भूलेश्वर, बम्बई ।

इस वर्गीकरण से यह समझा जाता है कि—

(१) बम्बई मे अन्य किसी मोहल्ले की खोज किये बिना सिर्फ भूलेश्वर की ही खोज करनी।

(२) भूलेश्वर में भी तीसरे भोइवाडा मे ही जाना।

(३) तीसरे भोइवाडे मे भी दूसरे किसी मकान मे न जाकर, स्वामी नारायण भवन में ही जाना।

(४) स्वामी नारायण भवन मे भी अन्य किसी मजिलो में न भटक कर सीधा चौथी मजिल में चढना।

(५) चौथी मंजिल मे भी जहाँ ६५ न. लिखे है वहाँ पहुँचना।

(६) यहां ही उस व्यक्ति का पता लगेगा।

इस प्रकार उतरते क्रम का अनुकरण करने से निर्धारित मनुष्य को खोज निकालने में बहुत ही सरलता हो गई अथवा यह कहा जा सकता है कि जो कार्य लगभग अशक्य जैसा था वह शक्य बन सका।

एक दूसरे उदाहरण से भी यह बात समझलो।

एक पुस्तकालय मे १०००० पुस्तकें है। अब इन पुस्तकों के यदि सिर्फ क्रमांक लगे हों, तो कोई भी पुस्तक को खोजते कितना समय लगे? उदाहरण के तौर पर तुम्हें उनमे से छत्रपति शिवाजी का जीवन चरित्र देखना हो तो सूचि-पुस्तिका के पृष्ठो पर पृष्ठ उलटने पड़ें। इनमें किसी भी प्रकार की कोई दूसरी व्यवस्था न हो, तो समस्त नाम क्रमशः बाँचने पडे और वे पुस्तकें भी यदि सीधे खाने में लिखी हा तो नाक में दम ही आ जाए, पर इस पुस्तकालय में यदि पुस्तकों का वर्गीकरण किया हुआ हो और उसमे भी विभाग किए हुए हों तथा उनकी भी अनुक्रमणिका या अकारादि अनुक्रम बनाया हुआ हो तो वह पुस्तक तुम एक ही मिनट मे खोज सकते हो। उसके लिए तुम्हे सूचि-पुस्तिका का प्रथम पत्र देखकर इतना ही जान लेना है कि जीवन-चरित्रो की सूचि कौन से पन्ने मे है? उसके बाद उस पन्ने को उलट कर उसमे इतना ही देखना है कि ऐतिहासिक जीवन चरित्र कौन से पन्ने मे है? उसके बाद ऐतिहासिक पुरुषो के जीवन चरित्र की अकारादि अनुक्रमणिका देखनी है बस इतने मे तुरन्त छत्रपति शिवाजी की पुस्तक हाथ लग जाएगी।

जिन ऑफिसो मे प्रतिदिन सैकडों पत्र आते है, वे क्या करते हैं ? पत्रो के विभाग करते हैं, उनमे भी विषय-विभाग करते है और उनकी फाइले रखते हैं कि जिनमे अकारादि अनुक्रम होता है। इससे ही तीन महीने पहले आया हुआ पत्र खोजा जा सकता है और बारह महीने पहले आया पत्र भी पाया जा सकता है। यदि ऐसी व्यवस्था न हो तो कोई कागज हाथ ही न लगे और उसके अभाव मे व्यापार-कार्य भी अशक्य हो जाए।

हमारे मन की व्यवस्था भी इसी प्रकार की है। उसमे स्पर्श, रस, गन्ध, रूप, शब्द आदि के लाखो-करोडो सस्कार भरे हुए है। फिर भी विचार करते ही उनमे से अमुक ही विचार थोडी देर मे बरावर निकल आता है। आज से पच्चीस वर्ष पूर्व घटी एक घटना या चालीस वर्ष पहले बना बनाव भी बरावर याद आ जाता है। उनमे यह वर्गीकरण ही आधारभूत है, जिसका कि सामान्य मनुष्यो को ख्याल नही आता है, परन्तु जो अपने विचारो का पृथक्करण थोड़े बहुत अ श मे कर सकते हैं, वे इस विषय को बरावर समझ सकेंगे।

मैं मानता हू कि इतने विवेचन से वर्गीकरण का तात्पर्य तुम बरावर समझ गये हो।

मंगलाकांक्षी
धी०

मनन

स्मरण-कला, वर्ग-वर्गीकरण, उदाहरण, समान विभाग, चढता क्रम, उतरता क्रम, व्यवस्था और त्वरा के लिए उनकी अति उपयोगिता।



पत्र अठारहवाँ

क्रम की उपयोगिता

प्रिय बन्धु !

व्यतीत हुए समय के प्रमाण में तुम्हारी प्रगति सन्तोषकारक है। तुम्हारा उत्साह और कार्य करने की लगन को देखकर सचमुच मे ही मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं चाहता हूँ कि इस विषय मे दूसरे साधक भी तुम्हारा अनुकरण करे।

इस पत्र मे तुम्हारा ध्यान वर्गीकरण की पूर्ति रूप क्रम की महत्ता के प्रति खीचना चाहता हूँ।

(१) निम्नोक्त अंक क्रम मे है—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९।

ये अंक व्युत्क्रम मे निम्नोक्त है—

२, ३, १, ४, ६, ५, ८, ७, ९।

३, २, १, ६, ४, ५, ७, ९, ८।

४, १, २, ३, ६, ७, ८, ५, ९।

९, ७, ५, ८, ४, १, ३, २, ६ आदि।

(२) नीचे की सख्या भी एक प्रकार से क्रम मे है—

५, ६, ७, ८, ९।

७३, ७५, ७७, ७९।

२५६, ३५६, ४५६, ५५६, ६५६, ७५६।

१२२४, १३२४, १४२४, १५२४, १६२४, १७२४।

ये सख्यायें जब व्युत्क्रम मे आती है यो बनती है—

७ ६, ५, ८, ९।

७५ ७७, ७३, ७९।

४५६, ६५६, २५६, ७५६, ५५६, ३५६।

१४२४, १६२४, १२२४, १७२४, १५२४, १३२४।

(३) निम्नलिखित शब्द क्रम मे है—
अहमदाबाद, आबू, ईडर, ईगतपुरी, उमरेठ, ऊना, एरणपुरा, ऐलाक्ष, ओगणाज, औचित्यपुर, अम्बाला।

वे ही शब्द व्युत्क्रम मे नीचे की तरह अनेक प्रकार के होने सभव है।

आबू, उमरेठ, अहमदाबाद, ईगतपुरी, एरणपुरा आदि।
एरणपुरा, आबू, अहमदाबाद, अम्बाला, ऐलाक्ष आदि।
उमरेठ, ईडर, एरणपुरा, ओगणाज, आबू आदि।

(४) नीचे के शब्द भी क्रम मे है।
कसर, काजल, किराया, कीट, कुलीन, केला, कोयला।
मगन, मामा, मीठा, मुख्य, मैसूर, मोहन।
लक्ष्मी, लाड, लिफ़ाफा, लुकारी, लेखन, लोटा।

ये शब्द व्युत्क्रम मे नीचे के मुताबिक अनेक प्रकार के बन जाते है।

काजल, मीठा, लक्ष्मी, मगन, कुलीन, मोहन, लोटा, लेखन, मामा, कोयला, मैसूर, लिफाफा, कसर, लाड, केला, किराया आदि।

अब देखो कि क्रम मे याद रखना कितना सरल है और व्युत्क्रम में याद रखना कितना कठिन है। अक सख्या लम्बी हो; पर क्रम मे हो तो वह याद रह सकती है। जबकि छोटी होती है पर व्युत्क्रम मे होती है तो उसे याद रखना बहुत मुश्किल होता है। शब्द अधिक हो पर क्रम मे हो तो सरलता से याद रह सकते है। जबकि व्युत्क्रम मे थोडे होते है तब भी बड़ी मुश्किल होती है। इस लिए जिन वस्तुओ को याद रखने की जरूरत हो उन्हे क्रम मे ही सीखना चाहिए जैसे कि—

वार, महीना, वज़न का माप, अन्तर का माप, वार को याद रखने के लिए निम्नोक्त पद्धति अपनानी चाहिये—

रविवार, सोमवार, मगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार, शनिवार और रविवार। यहाँ रविवार सबसे मोटा है, इसलिए रविवार से प्रारम्भ करना उचित लगता है, परन्तु कुछेक ऐसा समझते है कि सोमवार से कार्य की शुरूआत होनी चाहिए इसलिए

उसे पहला गिनना चाहिए और अन्त मे छुट्टी लेनी चाहिए। इसलिए रविवार को अन्तिम रखा जाता है। इसमे जो क्रम जिसे अनुकूल हो उसे स्वीकार करें। इसमे कोई अड़चन नही परन्तु व्युत्क्रम नही होना चाहिए।

महीनों को नीचे के ढंग से याद रखना चाहिए—

कार्तिक, मृगसिर, पोष, माह, फागुन, चैत्र, वैशाख, जेठ, आषाढ, श्रावण, भादव और आश्विन। जो वर्ष का प्रारभ चैत्र से करते है, वे महीनो को निम्न प्रकार से याद रखते है।

चैत्र, वैसाख, जेठ, आषाढ, श्रावण, भाद्रव, आश्विन, कार्तिक, मृगसिर, पोष, माह और फागुन।

प्राचीन समय मे कुछेक भागो मे वर्ष की शुरूआत श्रावण महीने से होती थी। वहाँ श्रावण, भादव, आश्विन, कार्तिक··· ···· आषाढ। इस क्रम से महीने याद रखे जाते थे। हर प्रकार में कोई एक क्रम ग्रहण किया जाता है और उसमे ही व्यवहार चलता है। अंग्रेजी महीनो की शुरूआत जनवरी से होती है, तो वे जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रेल, मई, जून, जुलाई, अगस्त, सेप्टेम्बर, अक्टूबर, नवम्बर और दिसम्बर इस क्रम से नाम याद रख सकते हैं। इसी प्रकार हरेक देश के या समय के प्रचलित महीनो को समझना चाहिए।

वजन को याद रखने के लिए भी उसे किसी अच्छे क्रम मे जचा लेना चाहिए।

अङ्क, सख्या, शब्द और माप जैसे क्रम से सीखे हुए हो तो ही बराबर याद रहते है और व्यवहार मे उपयोगी साबित होते है, वैसे अन्य वस्तुएँ भी किसी प्रकार के क्रम से ग्रहण की हुई हो तो ही बराबर याद रहती हैं। उदाहरण के तौर पर अवयवो के नाम क्रम से सीखे होगे उसे वे बराबर याद रहेगे और जिसने चाहे जैसे ढग से सीखे होगे, तो वह उनमे से किसी न किसी अवयव का नाम जरूर भूल जायेगा।

क्रम से सीखे नाम निम्नलिखित बोले जायेगे—मस्तक, कपाल, आँख, नाक, कान, मुख, गला, कन्धा, हाथ, छाती, पेट, जघा, घुटना, पाष्णि अथवा पाष्णि, घुटना, जघा, पेट, छाती, हाथ,

कन्धा, गला, मुख, कान, नाक, आँख, कपाल और मस्तक, इन अवयवों को याद करते समय उसकी नजर के समक्ष शरीर आ जाएगा और उसे देखते ही अवयवों का समस्त क्रम याद आ जाएगा। जबकि व्युत्क्रम में सीखे हुए नाम निम्नोक्त प्रकार से बोले जायेंगे—

पेट, मस्तक, हाथ, कान, मुँह, पग, मस्तक, गला, कन्धा।

इस प्रकार मे आवश्यक अवयवो के छूटने की और किसी वस्तु के दुहराई जाने की पूरी-पूरी संभावना रहती है। ऊपर की गिनती मे मस्तक दो बार गिना गया है, जबकि कपाल आँख, नाक, छाती आदि अगो की गिनती ही नही कराई। यह सिद्धान्त सर्वत्र लागू होता है।

एक मित्र के घर में बारह मनुष्य है और उन सब के नाम याद रखने हैं तो क्या करोगे ? यदि उनमे दादा हो तो पहले दादा का नाम फिर माता, पिता का नाम, फिर उसकी पत्नी का नाम, बाद में लडकों के नाम, फिर लडकियो के नाम याद रखने चाहिएँ उसके साथ ही यदि सगे-सम्बन्धी हो तो उनके नाम सबसे अन्त मे रखने चाहिए। इस प्रकार का क्रम बनाने से नाम बराबर याद रहेगे, पर यदि उन्हें व्युत्क्रम से याद रखोगे तो परिणाम अवयवो की गिनती के समान आयेगा।

यदि तुम्हें इतिहास का ज्ञान व्यवस्थित करना हो, तो सर्व प्रथम बीस प्रमुख व्यक्तियो के नाम कालक्रम से याद रखने चाहिये। वह क्रम प्राचीन काल से अर्वाचीन हो, या अर्वाचीन काल से प्राचीन काल हो। अपने यहाँ प्राचीन काल से अर्वाचीन की तरफ आना विशेष पसन्द किया जाता है क्योकि यही हमारी उत्क्रान्ति का मार्ग है, यही बताया जा रहा है—

प्राचीन काल से अर्वाचीन

(१) राम	(प्राचीन)
(२) कृष्ण	(प्राचीन)
(३) महावीर और बौद्ध	(ईस्वी सन् पूर्व ५९९)
(४) चन्द्रगुप्त	(ईस्वी सन् पूर्व ३०० वर्ष के आस पास)
(५) अशोक	(ई. से. पूर्व २५० के आस पास)

(६) हर्षवर्धन	(" " ६०० ")
(७) शकराचार्य	(ई सन् ८०० ")
(८) मुहम्मद गजनवी	(ई, १000 वर्ष के आस पास)
(९) पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन	(ई स १२०० ')
(१०) अलाउद्दीन	(" १३०० "
(११) गुरु नानक	(" १४०० ")
(१२) बाबर	(सोलहवी सदी)
(१३) हुमायु	(")
(१४) अकबर-प्रताप	(")
(१५) जहांगीर	(सतरहवी सदी)
(१६) शाहजहा	(")
(१७) औरगजेब-शिवाजी	(")
(१८) नाना फडनवीस	(अठारहवी सदी)
(१९) लार्ड कर्जन	(उगणवीसवी सदी के अन्त मे)
(२०) महात्मा गाधी	(बीसवी सदी)

अथवा अर्वाचीन से प्राचीन क्रम से तो महात्मा गाधी, लार्ड कर्जन, नाना फडनवीस से राम !

इस क्रम को ग्रहण करने पर बीच के समय में हुए व्यक्ति और घटनाएँ भी बराबर याद रह जायेगे जबकि मुगल, फिर अग्रेज, फिर मराठा, फिर प्राचीन पुरुष इस व्युत्क्रम को ग्रहण करने पर इतिहास का ज्ञान पद्धति पूर्वक नही हो सकता।

उपर्युक्त क्रम को यदि सक्षिप्त करना हो तो निम्नोक्त प्रकार से किया जा सकता है जैसे कि –

(१) राम	(प्राचीन)
(२) कृष्ण	(प्राचीन)
(३) महावीर और बुद्ध	(ई स पूर्व ५९९)
(४) अशोक	(ई स पूर्व २५०)
(५) हर्षवर्धन	(ई स ६००)
(६) पृथ्वीराज	(ई स १३००)
(७) अलाउद्दीन	(ई सन् १३००)
(८) अकबर	(सोलहवी सदी)
(९) औरगजेब	(सतरहवी सदी)

(१०) लार्ड कर्जन (उगणवीस सदी के अन्त मे)
(११) महात्मा गाधी (बीसवी सदी)

कहने का आशय यह है कि कालक्रम, स्थलक्रम, गुणक्रम, आदि कोई भी क्रम का अनुसरण करने पर ग्राह्य विषय व्यवस्थित रूप से ग्रहण हो जाता है और जरूरत पडने पर वह क्रमश· याद आ सकता है।

पिछले पत्रो का वाचन चालू रखना। एकाग्रता तथा कल्पना के विकास को अभी वृद्धिगत करते रहोगे तो शीघ्र ही समग्र विकास हो सकेगा।

मगलाकाक्षी
धी०

मनन

क्रम और व्युत्क्रम, अ क, शब्द, वार, महीना, वजन और अन्तर माप के दृष्टा, अवयं कुटुम्ब के नाम, ऐतिहासिक व्यक्तियो की स्मृति।

पत्र उगणीसवाँ

व्युत्क्रम की साधना

प्रिय वन्धु !

क्रम की उपयोगिता सम्बन्धी कुछेक विवेचन मैंने पिछले पत्र मे किया था। उसमे क्रम के महत्व को समझाने का प्रयत्न किया था, परन्तु शब्द और अङ्क ही अधिकतर व्युत्क्रम मे सद्दञ्च होते हैं और उन्हे उसी प्रकार याद रखना जरूरी होता है।

जैसे कि—'राम सीता दोनो जगल मे गये।'

इसमे रा के बाद म, म के बाद सी, सी के बाद ता, इस तरह सभी अक्षर व्युत्क्रम में आये हुए है। इसी प्रकार 'हिमालय पहाड जगत् के सभी पर्वतों मे सबसे बड़ा है।' इस वाक्य मे २३ अक्षर व्युत्क्रम मे आ ये हुए हैं।

सख्याओ मे भी वैसे ही है, जैसे कि—८, ४१, ७५, ६२३ (आठ करोड, इकतालीस लाख, पचहत्तर हजार नव सौ तेइस)।

यह सख्या एक राज्य की उपज बताती है। इसलिए इसमे से कोई भी अंक इधर-उधर किया जा सके ऐसा नही है। इसलिए क्रम से उन्हे याद रखना जरूरी है। अब तुम देख सकते हो कि बारह अक्षर या तैबीस अक्षरों को याद करने को अपेक्षा यह काम कठिन है, क्योकि ये शब्द सरलता से याद रह जाते है, पर अक सरलता से याद नही रह सकते। ऐसा होने का कारण यह है कि शब्द भावो का अनुसन्धान करते है, अर्थात् किसी प्रकार का विचार या किसी प्रकार का चित्र प्रस्तुत करते है, जबकि अंक मात्र विशेषण रूप होने से वैसा चित्र प्रस्तुत नही कर सकते। परन्तु पीछे जो सिद्धान्त बताया गया था, उसका यदि हम उपयोग करे तो हमारा कार्य सरल बन जाए। जैसे कि—

"आठ चोरों ने एक ग्राम पर आक्रमण किया, उस समय सात मनुष्यो ने उनका सामना किया, पाँच व्यक्ति भाग गये और नव नष्ट हो गये। शेष मे वे दो घोड़ो पर सोने, चादी की तीन बोरियाँ जितना माल उठा ले गये।

यह वाक्य एक बार बाँचने या सुनने पर ही याद रह जाएगा, कारण कि उसमे एक बनाव रहा हुआ है। अब उसमे व्यवहृत शब्दो के आधार पर तुम सख्या बोलो, तो बराबर बोल सकोगे, जैसे कि—

आठ चोर	[८ चोर शब्द से चार ४ तुरन्त याद आये
एक गाँव	१
सात मनुष्यो ने सामना किया	७
पाँच मनुष्य भाग गये	५
नव नष्ट हो गये	९
दो घोडे	२
तीन बोरियाँ	३

इस प्रकार ८४१, ७५९२३ की संख्या याद आई जिसमे पिछले चिह्न देते ८,४१, ७५, ९२३ की सख्या बराबर बन जाती है।

दूसरी एक यह सख्या लो। जैसे कि—१५, ३८, ४२, १७, ५०३ (पन्द्रह अरब, अडतीस करोड़, बियालीस लाख, सतरह हजार, पाँच सौ तीन।)

इस सख्या को यदि तुम कोई भी भाव या क्रिया के साथ सम्बन्धित कर दो तो याद रह जाएगी जैसे कि—एक पच तीन ग्रामों का न्याय करने बैठा, उसमे उसने ८४ पुरुषो और २१ महिलाओ की गवाही ली इस कार्य मे उसे कुल सात दिन और पाँच घण्टे लगे। इतना होने पर भी अन्त मे परिणाम शून्य आया क्योकि उसमे जो तीन वास्तविक अपराधी थे, वे तो हाजिर नही हुए थे;

यह बात तीन बार बाँचने से याद रह जाती है। उसके आधार पर पूरी सख्या क्रमशः याद आ जाती है। जैसे कि—

एक	१
पाँच	५
तीन ग्राम	३
चौरासी पुरुष	८
	४
इक्कीस महिलाएँ	२
	१
सात दिन	७
पांच घण्टा	५
परिणाम शून्य	०
तीन अपराधी	३

इस प्रकार १५३८४२१७५०३ उसमे चिह्न देने पर १५, ३८, ४२, १७, ५०३ की संख्या बराबर बन जाती है।

अब तीसरी संख्या लो—

५ २ १ ६ ४ ४ १६१७०३१४६५

इस संख्या को निम्न प्रकार से याद रखा जा सकता है—पांच पुरुष और दो महिलाएँ साथ मे यात्रा कर रहे थे। स्त्रियाँ सोलह शृंगार सजी हुई थी। उन्हे चार चोर सामने मिले। जिनमें एक नया था और एक सत्तर वर्ष का बूढा था। उन्होने हमला किया तब तीन आदमी सामने हुए। एक स्त्री ने भी बहादुरी से सामना किया। उसका परिणाम यह हुआ कि चारो डाकू छक्का पजा कर गये।

अब इस बात को याद करो कि सब अंक बराबर याद आ जायेंगे।

पांच पुरुष, दो स्त्रियाँ, सोलह शृंगार		५, २, १६
चार चोर		४, ४
एक नव		१६
एक सत्तर वर्ष का		१७०
तीन पुरुष	सामना किया	३
एक स्त्री		१
चार डाकू		४
छक्का पजा		६, ५

इस तरह

५२ १६ ४४ १६ १७० ३१४ ६५ बनी। इस प्रकार सोलह अको की सख्या तुम सुगमता से याद कर सकते हो।

अब तुम्हारे कुछेक मित्रो के टेलिफोन नबर लो। वे भी व्युत्क्रम मे ही ग्रथित होते हैं।

१.	रमणलाल जानी	२८६४२
२.	मणिलाल सुतरिया	४५१३६
३.	सी० फडके	३००८८
४	अरदेशर कडाका	६५४२१

यहा हरेक व्यक्ति का नबर बराबर याद रहे, वैसा करना है। उसमे नाम तो तुम्हे याद है ही, और टेलीफोन के नबरो मे पांच ही अक हैं, यह बात भी निश्चित है। इसलिए आगे की क्रिया निम्नोक्त करो—

(१) रमणलाल जानी

रमणलाल जानी ने आठ छतरियां फाड़ी, उसका बिल बियालिस रुपये आये।

रमणलाल के प्रारंभ का अक्षर अक मे २ जैसा है।
आठ का अर्थ है, ८
छतरियों का " ६
बियालीस का " ४२

दो, आठ और बियालीस का बराबर ख्याल रहेगा तो छतरी मे से छह लेना या छत्तीस, यह भ्रम नही रहेगा। टेलीफोन के अक पाच ही है। इसलिए उसमे एक अक तो छह ही है। तुम रमणलाल की बार-बार छतरी फाडने की कल्पना करो और हाथ मे ४२ रु का बिल है, उसे पढकर आश्चर्य चकित हो रहा है, इस प्रकार का उसका चित्र खीचो, तो जब भी रमणलाल जानी याद आयेगा, तब उपर्युक्त बात याद आ जाएगी, और उससे २८६४२ नबर बराबर याद आएंगे।

(२) मणिलाल सुतरिया

मणिलाल कानो से थोडा बहरा है। चार पाच बार कहे तब सुनता है। उससे एक बार तो छत्तीस बार कहना पड़ा था।

यह कल्पना आश्चर्यजनक और विचित्र है, इसलिए बराबर याद रह जाएगा। चार-पांच बार के ४५ और १ बार छत्तीस दफे कहना पडा। एक बार उसका १ और छत्तीस दफे के ३६, इस तरह ४५१३६ नंबर हुए।

(३) सी. फडके

तीन अक्षर का नाम और टेलीफोन का नंबर भी तीन से शुरू होता है। आँख पर काला चश्मा और दोनो हाथों मे आठ-आने। इस कल्पना से यह नबर याद रखना सुगम है। मि. फडके के याद आते ही तीन (३) याद आयेंगे। काला चश्मा दो शून्यों की याद दिला देंगे और हाथो मे आठ-आठ आनो से दो आठ की सख्या याद आएगी। यह सब मनमे इतनी शीघ्रता से संबद्ध होगा कि तुम्हे भी ख्याल नही रहेगा कि किस प्रकार यह सब घट गया और कैसे याद आ गया।

(४) अरदेशर कड़ाका

पैसठ वर्षीय अरदेशर काका पहले चार बार भोजन करते, फिर दो बार और अब एक बार खाना खाने लगे हैं। समक्ष खडा आदमी पूछता है—क्यो बाबा बुढापा अधिक उतर आया क्या? पैसठ वर्ष के ६५, चार बार के ४, दो बार के २, एक बार का १। पिछले तीन अ क तो आधे-आधे होते चले गये है, इसलिए सरलता से याद आ सकते है। सिर्फ उस प्रकार से एक बार विचार लेना अपेक्षित है।

अंको को याद करने के लिए एक दूसरा उपाय भी है। वह अंको को अक्षरो मे परिवर्तित करने का है। अंक सब मिलकर १० है। वे इस प्रकार है—१, २, ३, ४, ५, ६, ७ ८, ९, ०, । इन्हे ऐसे अक्षरो मे वदलना चाहिये कि जो सामान्य प्रकार से भाषा मे खूब व्यवहृत होते हो तो उनके शब्द बन सकते हैं और इस तरह वे पद्धति पूर्वक याद रह सकते है। मानो कि हमने उनके लिए निम्नलिखित अक्षर तय किये है—

१ — न
२ — र
३ — ग

४	—	ज
५	—	प
६	—	म
७	—	व
८	—	श, ष, स
९	—	ह
०	—	द

ये प्रतिनिधित्व करने वाले अक्षर भी तुम्हे रटने नहीं पडेंगे। उसके लिए सिर्फ निम्नोक्त एक पंक्ति ही याद रखनी होगी।

'नारी गज प्रेम वश हिदे'

इसका अर्थ समझ लो जिससे कि यह अच्छी तरह से याद रह सके—

"नारी और गज प्रेम से वश होते हैं—हिन्द देश मे" यह अर्थ समझने के बाद, एक, दो या तीन बार इस पंक्ति को मन मे बोल लो जिससे वह सुस्थिर याद रह सके।

पंक्ति का अर्थ नीचे के मुताबिक विचारो—

१	ना	—	न
२	री	—	र
३	ग	—	ग
४	ज	—	ज
५	प्रे	—	प
६	म	—	म
७	व	—	व
८	श	—	श, ष, स
९	हि	—	ह
०	दे	—	द

इस पद्धति मे ऊपर के अक्षरो से अर्थ वाले शब्द बनाने की खास दक्षता होनी चाहिए जैसे कि—

११	न न	नाना, नानी
१८	न श	नशा, निशा, नाश

२३	र ग	रग, रग, रोग
६५	म प	माप
७८	व श	वेश, वश, वास
१२३	न र ग	नारगी

जप मत्र—इस पद्धति मे तीन अक्षरों से कोई शब्द बड़ा नही बनाना चाहिए। इसलिए तीन अक्षरों का ही अर्थ समझना चाहिए।

७९१	व ह न	वाहन
२०२	र द र	रांदेर (सूरत के पास का एक गाव)
६८३	म स ग	मौसी गीत गाती है (ऊपर कहे मुताबिक प्रथम के तीन अक्षर ही लेने)
९९२	ह र र	हे हार ! हाहारे हाय हाय रे ! (य स्वर की तरह किसी का भी प्रतिनिधित्व नही करता है, क्यो कि वह अर्ध स्वर है।)
८१३	स न ग	सोना गेरु
४७९	ज व स	जवासो
००२	द द र	दादारे ! दादर, दादरो, दीदीरे !

इन उदाहरणो को लक्ष्य मे रखकर तुम ध्यान पूर्वक प्रयत्न करोगे, तो व्युत्क्रम को साध सकोगे और सरल बना सकोगे।

मगलाकाक्षी
धी०

□

पत्र बीसवाँ

अंक चित्र (१ से ३० तक)

प्रिय बन्धु !

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने इस दिशा में प्रयास किया है—यह जानकर आनन्द हुआ। इस पत्र मे मै तुम्हे अंक-चित्रों के विषय मे कहना चाहता हूँ। तुम एक बार ३० चित्र मन मे बना लो, तो फिर चाहे जैसे व्युत्क्रम मे लिखी सख्याये भी याद रख सकोगे। बाद में सख्या ३० अंक की ६० अंक की या ९० अंक की हो तो कोई अडचन नही। इसलिये पहले १, २, ३, ४, ५ आदि की ३० तक की सख्या के चित्र बनाओ। ये चित्र "नारी गज प्रेम वश हिदे" के सिद्धान्त पर ही बनाओ। इस सिद्धान्त के आधार पर चित्र बनाने से वे स्वभाविक रीति से ही याद रह जायेंगे।

इस चित्र रचना मे अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं तथा य शब्द रचना मे सहायता प्राप्ति के लिए ही प्रयुक्त किये जायँ, इसलिए उनकी अंक मे कोई भी कीमत न समझी जाए। 'ह' और 'ल' साथ होने से ल' को ९ के स्थान मे उपयोग करना चाहिये। अब जो चित्र बनाएँ वे ऐसे होने चाहिये कि कल्पना मे बराबर आ सके।

क्रम नियम से बने नाम, कल्पना मे रखने के चित्र

१	अन्न	धान्य का ढेर
२	आरी	बडी करोत
३.	आग	आग की लपटें
४.	अज (बकरा)	बकरा
५	अप (पानी)	पानी का प्रवाह
६	आम	आम का वृक्ष

७. यव (एक प्रकार का धान्य)	यवों का ढेर
८. सूआ (तोता)	पिंजरे मे तोता
९. उल्लू	सूने घर मे बैठा उल्लू
१०. नन्दी (शकर का वाहन)	बलद
११. नाना (माता के पिता)	नाना
१२. नारी	स्त्री
१३. नग (पर्वत)	पर्वत
१४. नौजा (एक मेवा)	काच के प्याले मे नौजा
१५. नप्पु	नप्पु नाम का नौकर
१६. नीम (एक वृक्ष)	नीम
१७ नाव	समुद्र मे नाव
१८. नशा	नशे मे झूमता आदमी
१९. नल	पानी का नल
२० रद्दी	पस्ती
२१. रन	जगल
२२. रुरु (कस्तूरी मृग)	मृग
२३. रग	रगीन गेंद
२४. रोजा	मुसलमानो का व्रत पर्व
२५. प	सुन्दर मोर
२६ राम	राम की मूर्ति
२७. रवि	सूर्य
२८ रस्सी	डोर
२९ राह	रास्ता
३०. गदा (एक प्रकार का हथियार)	गदा

इन चित्रो को धारण के लिए पहले तुम अपने मन मे एक बड़े चौरस चित्र की कल्पना करो। उसकी हरेक पक्ति मे पाँच खानो की कल्पना करो। ऐसी छह पक्तियो मे ३० खाने (प्रकोष्ठ) बनेंगे। वे इस प्रकार—

१	२	३	४	५
६	७	८	९	१०
११	१२	१३	१४	१५
१६	१७	१८	१९	२०
२१	२२	२३	२४	२५
२६	२७	२८	२९	३०

लम्बी पक्ति की अपेक्षा इस प्रकार के सयोजन से वस्तुओ की स्मृति अधिक सरलता व सुस्पष्टता से सभव है ।

अब इन खानो मे तुम क्रमश निम्नलिखित वस्तुओ की कल्पना करो—

१ धान्य का ढेर	२ बडी करोत	३ आग की लपटें	४ बकरा	५ पानी का प्रवाह
६ आम का वृक्ष	७ यवो का ढेर	८ पिंजरे मे तोता	९ उल्लू	१० बलद
११ नाना	१२ स्त्री	१३ पर्वत	१४ प्याले मे नोजा	१५ नप्पु नौकर
१६ नीम	१७ नाव	१८ नशा	१९ पानी का नल	२० रद्दी
२१ रन जगल	२२ रुरु मृग	२३ रगीन गेंद	२४ रोजा	२५ रूप
२६ राम	२७ रवि	२८ रस्सी	२९ रास्ता	३० गदा

इस यत्र मे क्रम की जगह तुम्हे वस्तुएँ ही समझ लेनी चाहिए । अब सख्या को धारण करने के लिए अक तथा व्यजनों के बीच निम्नलिखित सकेत सयोजित करने चाहिए ।

१ — न, ण, क, ख

२	—	र, ट, ठ, ड, ढ,
३	—	ग, घ
४	—	च, छ, ज, झ,
५	—	प, फ,
६	—	व, भ, म
७	—	व, त, थ
८	—	श, ष, स
९	—	ह, ल
१०	—	ढ, ध

कुछ—'अ' आदि स्वर तथा य को छोडकर अ को के इतने प्रतिनिधि लेने का कारण यह है कि शब्द बनाने मे सरलता रहती है। इसमे समस्त व्यजन बांट लिए गए है, सिवाय ङ और ञ के। ये व्यजन बहुत उपयोग मे नही आते है,इसलिए इन्हे नही लिया गया।

अब जो सख्या याद रखनी हो, उसके तीन तीन के खण्ड (टुकडे) बना कर उनकी शब्द रचना करो और उन्हे प्रत्येक क्रमाक चित्र के साथ जोडो, जिससे कि वे बराबर याद रह सके ।

उदाहरण के तौर पर निम्न सख्या धारण करनी है।

१२०३६०४९२७४१६५२१२८४२६३९१२५२१०८ (३० अंक)

तो पहले इस सख्या के तीन तीन के टुकडे करो। दस टुकड़े होगे जैसे कि—

१२० ३६० ४९२ ७४१ ६५२

१२८ ४२६ ३९१ २४२ १०८

इन दस टुकडो के शब्द बनाते जाओ और उनका सबन्ध क्रमांक वाले खाने के साथ जोड़ते जाओ जैसे कि—

१२० = न र द = नारद नारद तो कुतुहल प्रिय होने से धान्य के ढेर पर नाच रहे है, ऐसा चित्र खडा करो।

३६० = ग म ध = गोमेध कोई करोत से गाय का मेध (हत्या) कर रहा है और दयालु लोक उसका विरोध कर रहे है, ऐसा चित्र मन मे खड़ा करो।

५९२ = फ ल र = फुलेरा । फुलेरा जक्शन पर आग की लपटे उठ रही हैं ।

७४१ = व ज न = बकरे पर खूब वजन भरा हुआ है । बकरे पर वजन से भरी हुई थैली रखी हुई है ।

६५२ = ब फ र = बफारा इतना अधिक दिया गया कि उससे पानी के रेले चल पडे । पानी का रेला यह बफारा का परिणाम है ।

यहां तुम कुछ मिनट ठहर कर नीचे के मुताबिक विचार कर लो ।

धान्य का ढेर—नारद, करोत—गोमेध, आग फुलेरा, बकरा—वजन, पानी—बफारा इन शब्दों को फिर एक बार मन मे स्थिर करो । बाद मे आगे बढो ।

१२८ न र स—नीरस = आम की ऋतु बीत गई इसलिए आम बेकार हो गये है ।

४२६ च र म—यवो के छाबडे मे चरम (कीडे) पड गये हैं ।

३६१ ग ल न = गलना = पिंजरा गलने से पानी छानने के कपडे से ढका हुआ है ।

२५२ र प ट = उल्लू अपने घोसले मे रपट कर गिर पडा है ।

१०८ न द श—नदीश शकर भगवान नदी (बैल) पर बैठे है ।

यहाँ फिर पाँचो चित्रो पर निम्नोक्त विचार करो ।

आम—नीरस, यव—चरम, पिंजरा—गलना, उल्लू—रपट, नदी—नदीश । इन्हे मन मे बराबर स्थिर करो । तुम्हारे मन मे क्रमाक तो निश्चित है ही । इसलिये उनका विचार करते ही समस्त शब्द क्रमश याद आ जायेगे ।

१. अन्न का ढेर—नारद नाचते है—नारद—नरद—१२०
२ करोत—उससे गोमेध हो रहा है—गोमेध—ग म घ ३६०
३ आग की लपटें फुलेरा पर—फुलेरा—फ ल र—५९२
४. बकरा वजन से दब रहा है वजन—७४१
५. पानी—बफारो—ब फ र—६५२
६. आम—नीरस—नीरस—न र स—१२८
७. यवों का छाबडा—कीट—चरम—च र म—४२६

८. पिंजरा—गलना—गलना—ग ल न—३९१
९. उल्लू—रपटकर - रपट - र प ट—२५२
१०. नदी—नदीश—न द श—१०८

अब वह संख्या तुम क्रमशः बोल सकोगे।

१२०, ३६०, ५९२, ७४१, ६५२, १२८, ४२६, ३९१, २५२, १०८।

इनमे जो चाहो वह टुकडा तुम याद कर सकते हो जैसे कि—पाँचवाँ टुकडा तो पानी बफारा—६५२। नवम खड-उल्लू-रपट—२५२। दूसरा टुकडा तो करोत गोमेघ-गमध ३६०।

इस संख्या-समह से जो भी अङ्क बताने का हो, तुम एक दम शीघ्रता से बता सकोगे। जैसे कि २७ अङ्क तो नौव टुकडे का अन्तिम अङ्क। नौवा टुकडा रपट—र प ट—२५२। इसलिये २७ वाँ अंक २, १४ वाँ अङ्क तो पाँचवाँ टुकडा, दूसरा अङ्क। पाँचवाँ टुकड़ा बफारा उसका दूसरा—फ = ५।

अब एक ४५ अङ्कों कि संख्या लो। ४६२, ३८९, १७०, २४८ ९३५, ७६२, ३५९, ८७६, ००७, ५४३, २१०, ६९७. १२४, ८८९, १२५।

पहले इस संख्या के तीन तीन टुकडे करो और हरेक के नीचे क्रम लिखो। एक पंक्ति मे पाँच टुकडो से ज्यादा मत लिखो।

४६२	३८९	१७०	२४८	९३५
१	२	३	४	५
७६२	३५९	८७६	००७	५४३
६	७	८	९	१०
२१०	६९७	१२४	८८९	१२५,
११	१२	१३	१४	१५

पहला टुकड़ा—४६२ = ज व र—अन्न का ढेर बहुत जवर।

दूसरा " —३८९ गसल = गौशाला करोत लिये हुए कोई आदमी गौशाला की तरफ आ रहा है।

तीसरा " —१७० कवद = कोविद आग की लपटो से दूर खड़ा है।

चौथा टुकडा—२४८ रजश = राजश्री बकरे पर सवार है।

पांचवा टुकडा—६३५ हगप = हींगपेटी, हींगपेटी पानी के प्रवाह में पडी है।

अन्न का ढेर—जबर, करात-गौशाला, आग की लपटें-कोविद, बकरा—राजश्री, पानी हींगपेटी

छठा " —७६२ तमर-तिमिर आम का वृक्ष महरे तिमिर में है।

सातवां " —३५६ गफल-गाफिल यत्रों को बिखेर रहा है।

आठवां " —८७६ सतम-सितम, सूवे पर कोई सितम नहीं ढहाता

नौवां " —००७ दधव = दूध वाला उल्लू ने दूध वाले का अपशकुन कर दिया।

दसवां " —५४३ पचग = पचांग—पचाग पर बैल का चित्र है। इन चित्रों मे हरेक पाच चित्रो के बाद थोडी देर ठहर कर उन्हे व्यवस्थित करने से मत चूकना।

आम-तिमिर, यवों का छाबडा-गाफिल, सूआ-सितम, उल्लू-दूध वाला, नदी-पचांग। इस समय यह समग्र चित्र परिपूर्ण रूप से खडा करना चाहिये जिससे कि स्मृति परिपक्व बन सके।

अब आगे बढो

ग्यारहवां " —२१० र न द = रा नदी नाना के घर मे रा—लक्ष्मी की नदी बह रही है।

बारहवां " —६६७ म ह व = महावीर नारियां महावीर को वन्दन करती है।

तेरहवा " —१२४ क र ज = कर्जा तो पर्वत जितना हो गया है।

चौदहवा " —८८६ स स ल = सुशीला—नोजे खा रही है।

पन्द्रहवा " —१२५ न र प = नरपति राजा से नप्पु नौकर आशीर्वाद ले रहा है।

नाना—रा—नदी, नारी महावीर, पर्वत—कर्जा, नौजा—सुशीला, नौकर-नरपति।

इनमे जिन चित्रो की कल्पना बराबर नही हुई हो, उन्हें याद करने मे मुश्किल होगी; इसलिए कल्पना जोरदार करनी चाहिए जोरदार कल्पना तुरन्त ही ताजी हो जायेगी। अब क्रमशः टुकड़ो पर चिन्तन करो, ४५ अङ्क की सख्या बराबर याद आ जाएगी।

इस रीति से अ को पर शब्द तैयार करने का अभ्यास आगे बढ़ेगा और कल्पना चित्र बराबर बनते जाएँगे। उस आधार पर बहुत बडी ६० अ को की और ९० अ को की सख्या भी याद की जा सकेगी और उससे भी बडी सख्या याद रखनी हो तो अ क चित्र १०० तक तैयार करने चाहिए, जिससे ३०० अ क की रकम भी याद रखी जा सकेगी। सख्या की तरह शब्द भी अ क चित्रो के सहारे याद रखे जा सकते है, परन्तु उनका विशेष वर्णन अब बाद के पत्रो मे करूँगा। मैं मानता हूँ कि बृहत सख्या की धारणा के लिए यह पद्धति तुम्हे बहुत उत्तम लगेगी।

मगलाकांक्षी
धी०

सनन

'नारी गज प्रेम वश हिन्दे', तीस क्रमांक चित्र, उन्हे बनाने की रीति, हरेक खाने मे एक क्रमाक-चित्र की स्थापना। व्यजनो का अ क की दृष्टि से पूर्ण वर्गीकरण, उनके आधार पर शब्द निर्माण ३० अ क और ४५ अ क की रकम याद रखने के उदाहरण।



पत्र इक्कीसवाँ

विशेष अङ्क चित्र (३१-१००)

प्रिय बन्धु !

३१ से १०० तक के अंक चित्र एक साथ भेज रहा हूँ उन्हे बराबर समझ लेना।

३१	गीनी	(सोने का सिक्का)
३२	गोर	(एक जाति का ब्राह्मण)
३३	गगा	
३४	गज	(हाथी)
३५	गोप	(ग्वाला)
३६	ग्राम	
३७	गोवो	(एक खेतिहर का नाम)
३८	घास	
३९	गुहा	(गुफा)
४०	जर्दा	
४१	जन	
४२	जर	(आभूषण)
४३	जादू	(जादूगर)
४४	जज	
४५	जप	
४६	जाम	(प्याला)
४७	जव	(एक प्रकार का अन्न)
४८	जोशी	
४९	जल	(वर्षा का पानी)
५०	पाद	(पैर)
५१	पान	(पत्ता)

५२	पारा	
५३	फाग	
५४	पजा	(हाथ का)
५५	पप	(पानी निकालने का)
५६	प्रेमी	
५७	पावा	(महावीर का निर्वाण-स्थल)
५८	पासा	
५९	फल	(दूकान मे फल)
६०	मद्य	
६१	मान	(माप)
६२	मरु	(रेगिस्तान)
६३	मूंग	(वर्तन मे भरे हुए)
६४	मौजा	(पैरो मे पहनने के)
६५	माफी	(अपराधी के छुटकारे का चित्र)
६६	मामा	
६७	मावा	
६८	माष	(उडद)
६९	माली	
७०	वादी	(विवाद मे वैठा पडित)
७१	वीणा	
७२	वार	(प्रहार)
७३	वाद्य	
७४	वाजा	
७५	वापी	(वावडी)
७६	वीना	
७७	वाव	
७८	वश	
७९	वाल	
८०	साधु	
८१	सोना	
८२	शेर	
८३	साग	(वनस्पति)
८४	सेज	(पलग)

८५	सांप	
८६	सोम	(चन्द्र)
८७	सेव	
८८	शीशा	(एक धातु)
८९	शाल	(एक कपड़ा)
९०	हिन्द	
९१	हानि	(हानि से खिन्न मनुष्य)
९२	हार	(गले मे पहनने का गहना)
९३	लँघा	
९४	लाज	(घूँघट)
९५	लोप	(उल्लघन)
९६	लामा	(बौद्ध भिक्षु)
९७	हवा	
९८	लाश	
९९	हल	
१००	नदी घर	(समुद्र)

इन चित्रो को तुम्हे चार खण्ड मे विभक्त करना है। जैसे कि प्रथम खण्ड मे १ से २५ तक, दूसरे खण्ड मे २६ से ५०, तीसरे खण्ड में ५१ से ७५ और चौथे खण्ड मे ७६ से १०० तक और उन प्रत्येक खण्ड के पांच-पाच विभाग बनाकर कल्पना से सयुक्त करें। जिससे याद रखने मे बहुत सरलता होगी। योजना भी सरलता मे खूब सहायता करती है। नीचे के चित्रो से उनका भाव स्पष्ट होगा।

खण्ड पहला

१				
				२५

खण्ड दूसरा

२६				
				५०

खण्ड तीसरा

५१				
				७५

खण्ड चौथा

७६				
				१००

अब यदि ये १०० चित्र बराबर याद होगे तो इनके द्वारा चाहे जैसी व्युत्क्रम स्थित वस्तुओ को भी व्यवस्थित रूप से धारण कर सकोगे। जैसे कि तुमने १० वस्तुएँ देखी, १० के नाम सुने, १० सख्या के टुकड़े सुने और १० वस्तुओ का स्पर्श किया, तो १ से १० तक के चित्र दृष्ट वस्तुओ के लिए, ११ से २० तक के चित्र सुने नामो के लिए २१ से ३० तक चित्र सख्या के लिए, ३१ से ४० तक के चित्र स्पृष्ट वस्तुओ के लिए काम आ जाएँगे।

(१) मानो कि दृष्ट १० वस्तुएँ निम्नोक्त है—
टैबुल, चमच, पूतली, प्याला, खिलौना, थाली, फानूस, लाठी, पाट, खाट।

तो उन्हे नीचे के क्रम से जोडो।

१. धान्य का ढेर—टेबुल—धान्य के ढेर के पास से टैबुल उठा दी गई है।
२. करौत—चमच—दो चमचों की छापवाली करौत पडी है।
३. आग की लपटें—पूतली। आग की लपटो से पूतली पिघल गई है।
४. बकरा—प्याला—बकरा प्याले मे पानी पी रहा है।
५. पानी का प्रवाह—खिलौना—पानी के प्रवाह मे खिलौने तैर रहे है।
६ आम—थाली—थाली मे आम रखे हुये है।
७. यवो का छावडा—फानूस—यवो के छावडे पर फानूस रखा हुआ है।

८. सूआ—लाठी—सूआ लाठी पर सूवे का चित्र है।

९. उल्लू—पाट—उल्लू घोंसले से पाट पर आ बैठा है।

१०. नदी—खाट—नदी तूफानी बना और उसने खाट को उलट डाला।

(२) अब सुने हुए १० नाम—

अहमदाबाद, चमन लाल, चतुर भाई, गोकलदास, बगवाड़ा, इलोरा, आनन्द, मनुष्य, भेंस, रोभ।

इनका सम्बन्ध ११ से आगे जोडे, जैसे कि—

११ नाना—अहमदाबाद—मेरे नाना अहमदाबाद गये है और अहमदाबाद ही रहेगे, क्योकि उन्हें वहाँ बहुत आनन्द आता है।

१२. नारी—चमनलाल—इस नारी के पति का नाम चमनलाल है। नारी भी आनन्दी है और चमनलाल तो नाम के अनुरूप ही गुणवाला है।

१३ नग—चतुरभाई—पर्वत पर कौन चढ रहा है ? चतुर भाई! चतुर भाई पर्वत पर चढ़ रहे है। पर वहाँ उनकी चतुराई चलने की नही।

१४. नौजा—गोकुल दास—प्रचण्ड भीड़ मे गोकुलदास हरे नौजो का थैला लेकर चल रहा था।

१५ नप्पु—बगवाडा—नप्पु बगवाडे का है इसलिए काम भी बिगडने का है।

१६ नीम—इलोरा—इलोरा की यात्रा मे नीम के वृक्ष बहुत देखे।

१७ नाव—आनन्द—नाव की यात्रा मे खूब आनन्द आता है।

१८. नशा—मनुष्य—नशा करने वाले मनुष्य मनुष्यता से बहुत दूर हो जाते है।

१९ नल—भेंस—नल के नीचे भेंस पडी है, ऊपर पानी गिर रहा है।

२०. रद्दी—रोभ—जानवरों मे रोभ रद्दी होता है क्योकि उसमे समभ बहुत कम होती है।

(३) १० सख्या के खण्ड, उन्हें २१ से ३० तक जोडना चाहिए, उनके उदाहरण ऊपर के मुताबिक समभ लेने चाहिए।

(४) स्पृष्ट वस्तुओं मे किसका स्पर्श हुआ यह स्पर्श के समय में ही समझ लेना चाहिए। फिर तो वे भी १ से १० तक की वस्तुओ के समान एक प्रकार की वस्तुएँ ही है। इसलिए उसी रीति से ही चित्रों के साथ सयोजित करना चाहिए।

किसी भी प्रकार के व्युत्क्रम को सिद्ध करने में इन चित्रो का उपयोग हो सकता है। तुम स्वय इन साधनो का बुद्धिपूर्वक उपयोग करना।

मगलाकाक्षी
धी०

मनन

३१ से १०० तक अंक के चित्र, चित्रो का निर्माण, उनके द्वारा पृथक्-पृथक् विषयो को कैसे याद रखना उनकी समझ।

पत्र बाईसवाँ

भाव बन्धन

प्रिय बन्धु !

सामान्यतया यह बात फैलाई हुई है कि सख्याएँ तो कोई भी तरकीब से याद रह सकती है। पर सर्वतोभद्र यंत्र जैसा अटपटा सख्या-सयोजन याद कैसे रहे ? इसलिए उसी सम्बन्ध मे स्पष्टता करना चाहता हूं कि यदि बुद्धि को अजमाया जाय और स्मृति मे भाव जमाया जाय तो स्मृति इस कार्य मे पीछे कभी नहीं हटेगी। यह तथ्य एक-दो उदाहरणो से परखा जा सकता है।

पहले तो सर्वतोभद्र यन्त्र क्या है ? यह समझ लें। एक चोरस खाने के समान विभाग बनाएँ जा सके, जैसे कि—३ × ३ = ९, ४ × ४ = १६, ५ × ५ = २५, ६ × ६ = ३६, ७ × ७ = ४९, ८ × ८ = ६४ आदि और उस हर एक भाग मे ऐसी संख्या भरी जाए कि जिसका खडा/आडा और टेडा-मेडा जैसे भी जोड किया जाए योग समान ही आए, उसे सर्वतोभद्र यन्त्र कहा जाता है। अग्रेजी मे इसे "मेजिक स्क्वेयर" कहते है और सामान्य लोक उसे जन्तर (यन्त्र) के नाम से पहचानते है। उदाहरण के तौर पर नीचे दिये हुए यन्त्र १५, २७ और ४५ के नव खानो के सर्वतोभद्र यन्त्र है—

१५ (पन्द्रह) का

८	१	६	१५
३	५	७	१५
४	९	२	१५
१५	१५	१५	१५

२७ (सत्ताईस) का

१२	५	१०	२७
७	९	११	२७
८	१३	६	२७
२७	२७	२७	२७

४५ (पैंतालीस) का

१८	११	१६	४५
१३	१५	१७	४५
१४	१९	१२	४५
४५	४५	४५	४५

ऐसे यन्त्र सैकडो, हजारो बल्कि असंख्य बन सकते हैं, पर उनकी रचना किस सिद्धान्त पर होती है, यह प्रथम जान लेना आवश्यक है।

कोई भी कुशल निरीक्षक इन तीन यन्त्रों का निरीक्षण कर एक बात तुरन्त समझ सकेगा कि जितनी संख्या का यन्त्र है, उसका तीसरा भाग बराबर मध्यम मे निक्षिप्त है और उसके आस-पास (बगल) की संख्या मे दो कम और दो अधिक वाली संख्या है। जैसे कि—

[१५]	[२७]	[४५]
३ ५ ७	७ ९ ११	१३ १५ १७

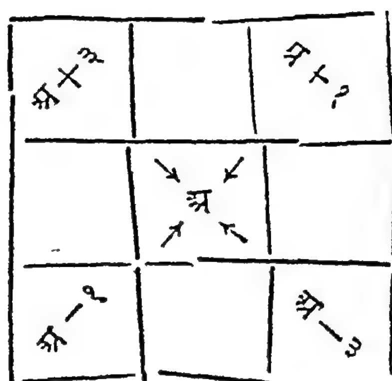
ऊपर से प्रथम और तीसरी पंक्ति में भी कोई युक्ति-पूर्ण संयोजन होना चाहिये। ऐसा अनुमान होता है और गहराई से तपास करते हुए उसमे भी ऐसा ही सयोजन ज्ञात होता है कि पहली संख्या मध्यम सख्या से तीन अधिक दूसरी संख्या चार कम और तीसरी संख्या एक ज्यादा होती है। जैसे कि—

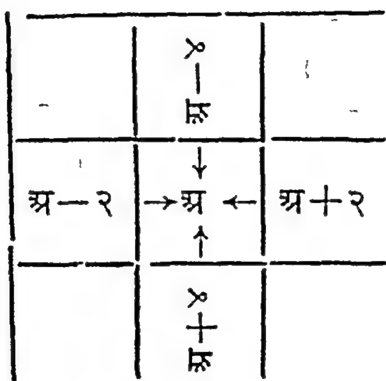
[१५]	[२७]	[४५]
८ १ ६	१२ ५ १०	१८ ११ १६
५	९	१५

तथा अन्तिम पंक्ति मे एक कम चार अधिक और तीन कम संख्या होती है।

१५	२७	४५
५	९	१५
४ ९ २	८ १३ ६	१४ १९ १२

इस सायोजन मे विभक्त संख्या को मध्यम रखकर बगल मे संख्या कम वेसी की हुई है जैसे कि—





इनका पूर्ण समीकरण निम्नोक्त बनता है—

अ+३　　अ−४　　अ+१

अ−२　　अ　　अ+२

अ−१　　अ+४　　अ−३

इस समीकरण के अभ्यास से यह निश्चित कर लेना चाहिये कि कम से कम कोई भी संख्या याद रहे तो अवशिष्ट संख्या अपने आप याद आ जाए। इसलिए उस दिशा मे प्रयत्न करना चाहिये। इसमें मुख्य होने से बिचली संख्या को तो याद रखना ही चाहिए। और फिर कोई भी एक तरफ की संख्या याद रहे तो बाकी की संख्या अपने आप याद आ जाए, जैसे कि—

अ+३　　अ—४　　अ+१

अ

तो

अ+३	अ+३	अ—४
अ	अ	अ
अ+३	अ—१	अ+४

बराबर

अ+३	अ—४	अ+१
	अ	
अ—१	अ+४	अ—३

और

अ+३　　इसलिए अ—२　　अ—१

तथा

अ—३　　इसलिए अ+२　　अ+१

इस प्रकार ऊपर की पंक्ति और बिचली संख्या याद रहने पर बाकी की समस्त संख्या याद आ जाती है, परन्तु ऊपर की संख्या मे से भी अभी बिचली संख्या घट सके ऐसा है, क्यो कि—

अ+३. अ+१ दोनो तरफ हो तो बिचली संख्या अ—४ होने की ही है, इसलिए यथार्थ मे तीन सख्या याद रखने की है। दो ऊपर के छोरो की और एक मध्य की। उसके साथ यह याद रखना भी जरूरी है कि कुल सख्या का एक भाग ही अ है और उसके साथ ही सब संख्याएँ घटाने की है। अब यह वस्तु किस प्रकार याद रखनी, उसके लिए बुद्धि दौडाने की आवश्यकता है। तुम इस दिशा मे प्रयत्न करके देखो।

मैंने स्वय इस समस्त समीकरण को याद रखने के लिए निम्नोक्त एक दोहा बनाया है—

पूर्ण चहै जो भद्रा तूँ हरिपद भज हरठाम
सुन हृदय समता धरी कर्ण गान तमाम

तुम कहोगे कि इसमे तो अध्यात्म की बात है। 'यदि पूर्ण कल्याण चाहते हो तो हर स्थान मे हरिचरण का भजन कर और हृदय मे समता धारण कर ससार मे चल रहे सर्व प्रकार के गान कानो से सुनलो। बात खरी है। पर उसके साथ उसमे ऊपर का समस्त समीकरण समाया हुआ है, वह इस प्रकार है—

पूर्ण अर्थात् नव और भद्र अर्थात् सर्वतोभद्र यत्र। यदि तुम्हे नव का सर्वतोभद्र यत्र बनाना हो, तो हर ठाम अर्थात् उसके हरेक खाने मे हरिपद की भजना कर हरि अर्थात् विष्णु और पद अर्थात् पैर। विष्णु के तीन पैर माने जाते है। इस कारण उनका एक पद कुल संख्या का $\frac{1}{3}$ भाग है। इसलिए तुम सब जगह पहले $\frac{1}{3}$ लिखो और हमने अ सज्ञा दी है, इसलिए हर खाने मे अ लिख डालो जैसे कि—

अ	अ	अ
अ	अ	अ
अ	अ	अ

अब हृदय मे समता स्थापित करनी है अर्थात् बिचली सख्या मे कुछ भी परिवर्तन नही करना और कर्ण अर्थात् कोनों के खानो × इस प्रकार गान अर्थात ३ और १ (ग=३, न=१) की स्थापना करनी है। बस, समस्त समीकरण का सार इसमे बराबर आ जाता है। यह दोहा सरलता से याद रह जाए ऐसा है। क्यो कि उसमे एक प्रकार का भाव सलग्नता से गुथा हुआ है। भाव प्रतिबन्धित किया हुआ है।

इस दोहे के आधार पर तुम चाहो जितनी बडी से बडी सख्या का यत्र भी बना सकते हो। जैसे कि १५६२४ का यत्र बनाना है, तो पहले इसके तीन भाग करो ५२०८ यह उसका तीसरा भाग है, अर्थात् अ ५२०८ कोने के खानो मे ३ और एक अकित करना है। अर्थात् पहले खाने मे—

अ+३ ५२११		अ+१ ५२०९
	५२०८	

इस प्रकार सख्या लिखी जायेगी। अब सामने घटती हुई सख्या एक के बाद एक लिखते जाओ जैसे कि

५२११		५२०९
	५२०८	
५२०७		५२०५

अब चार खाने खाली रहे, उनमे हरेक की दो-दो सख्यायें तुम्हारे पास है, उससे घटती सख्या को भी पूरी कर सकोगे। जैसे कि—

५२११	५२०४	५२०९
५२०६	५२०८	५२१०
५२०७	५२१२	५२०५

अब सोलह खानो के सर्वतोभद्र यत्र का निर्माण करो—

[३४]

९	१६	२	७
६	३	१३	१२
१५	१०	८	१
४	५	११	१४

[४८]

१६	२३	२	७
६	३	२०	१९
२२	१७	८	१
४	५	१८	२१

इस यत्र का निरीक्षण (तरीका) इस प्रकार बताया गया है कि इस यत्र के समुदाय मे किसी मे भी उसके योग की $\frac{1}{2}$ की अपेक्षा अधिक सख्या नही होती है। दूसरे इसमे हरेक पक्ति मे नव का चोक्क सी वर्गीकरण पृथक्-पृथक प्रकार से सयोजित है जैसे कि—

	२	७	=९
६	३		=९
	८	१	=९
४	५		=९

तीसरे चौतीस के यत्र मे प्रथम खाने की अपेक्षा दूसरे खाने मे ७ की संख्या अधिक है और अड़तालीस के यत्र मे भी प्रथम खाने की अपेक्षा दूसरे खाने मे ७ की संख्या ज्यादा है। चौतीस के सातवें खाने की अपेक्षा आठवे मे १ सख्या कम, नौवे की अपेक्षा दसवे मे पॉच कम और पन्द्रहवे की अपेक्षा सोलहवे खाने मे ३ अधिक है तो अडतालीस के यत्र मे भी वैसे ही वेसी-कम है अर्थात् उनमे एक परिपूर्ण नियम है यह निश्चित है। इस सख्या का सम्बन्ध विभक्त योगवाली सख्या के साथ है इसलिए उसे (आधा) ½ करके उसके साथ घटाएँ जैसे कि ३४ आधा १७ और ४८ आधा २४ =

½ = अ तो

अ—८	←अ—१		
		अ—४	अ –५
अ—२	←अ—७		
		अ—६	अ—३

दोनो यत्रो मे यह समीकरण समान ही होने से यह उनका मूल है—यह निश्चित है। यह वर्गीकरण भी नव के सिद्धान्त पर योजित है। अ को के योग मे ९ हुए है और आधी दो सख्या से भी सख्या ९ हुई। इसलिए आधी संख्या बन सकी। अब १ से ८ तक की दो सख्या का योग ९ लाना हो तो वह चार प्रकार से ही आ सकती है—१+८, २+७, ३+६, ४+५,= अथवा दूसरी प्रकार से करे तो ८+१, ७+२, ६+३, ५+४।

अब यह समग्र समीकरण कैसे याद रहे यह देखना। पहले इस यत्र मे दो प्रकार की सख्या है एक तो मूल संख्या की आधी और दूसरे मे मात्र अ क। इन्हे हम अनुक्रम से ह और स की सज्ञा देते है। इसलिए इस यत्र मे ह और स निम्नोक्त प्रकार से सयोजित है—

ह	ह	स	स
स	स	ह	ह
ह	ह	स	स
स	स	ह	ह

अर्थात् ह और स युगल रूप में ही आये हैं। जो एकान्तर सयोजित है। उस हरेक युगल का योग नव होता है। इसलिए उनमे से एक-एक संख्या याद हो तो दूसरी सख्या अपने आप याद आ जाती है। जैसे कि—

अ—८	तो	अ—१		
		अ—४	तो	अ—५
अ—२	तो	अ—७		
		अ—६	तो	अ—३

उसी प्रकार—

२	तो	७
६	तो	३
८	तो	१
४	तो	५

यह परिपूर्ण समीकरण निम्नोक्त दोहे मे समाया हुआ है।

हस युगल एकान्त मे करता पूरण प्रीत।
सरवर मोजा झूलता, रास जमावट रीत ॥

ह और स के युगल को एकान्त मे ले जाना है उनमे हरेक का योग पूर्ण अर्थात् नौ होना चाहिए। ह का योग कम होना चाहिए, कारण कि सख्या का योग अधिक बताता है। इसलिए सर अर्थात् ८२ मोजा अर्थात् ६४, रास अर्थात् २८ और जमा अर्थात् ४६ पक्ति वार स्थापित किये है, जिससे कोई गड़बड़ न हो। अब दोहे के मुताबिक समीकरण की रचना देखो—

ह	ह	स	स	
स	स	ह	ह	हँस युगल एकान्त मे
ह	ह	स	स	
स	स	ह	ह	

ह (स)	हस (२)	स		सरवर
स (मो)	स	ह (जा)	ह	मोजा
ह (रा)	ह	स (स)	स	रास
स (ज)	स	ह (मा)	ह	जमावट

इसका अर्थ

ह—८ ह	स—८ स
स—६ स	ह—४ ह
ह—२ ह	स—८ स
स—४ स	ह—६ ह

अब वे—

करता पूरण प्रीत

इसीलिए

ह—८	ह—१	२	७
६	३	ह—४	ह—५
ह—२	ह—७	८	१
४	५	ह—६	ह—३

एक छोटा सा दोहा कितना भाव, कितनी समझ, याद रखने मे सहायक है, वह इससे समझा जा सकता है।

इसी रीति से अलग-अलग सौ संख्या का सार भी भाव-बन्धन से याद रखा जा सकता है।

उसके लिए पच घात का मूल निकालने का दृष्टान्त समझने योग्य है।

निम्नोक्त संख्या पचधात है—

१६१०५१
४१७२३०१
९०२२४१९९

ऊपर लिखित हरेक सख्या एक एक सख्या को ही पांच वार गुणन करने पर निष्पन्न हुई है। क्या सख्या होनी चाहिए अर्थात् इसका मूल क्या है ?

१६१०५१ का मूल ११ है, इसलिए कि वह ११ × ११ × ११ × ११ × ११ का परिणाम है।

४१७२३०१ का मूल २१ है, इसलिए कि वह २१ × २१ × २१ × २१ × २१ का परिणाम है।

९०२२४१९९ का मूल ३९ है. इसलिए कि वह ३९ × ३९ × ३९ × ३९ × ३९ का परिणाम है।

इस प्रकार १०० तक की सख्या का मूल मात्र सख्या सुनकर बताया जा सकता है। तो वह कैसे बन सके ? उसके लिए पहले तो १ से १०० तक का गुणाकार करके देखे कि उसमे क्या सिद्धान्त छिपा हुआ है ? वे सख्याएँ निम्नलिखित है।

१ × १ × १ × १ × १	= १
२ × २ × २ × २ × २	= ३२
३ × ३ × ३ × ३ × ३	= २४३
४ × ४ × ४ × ४ × ४	= १०२४
५ × ५ × ५ × ५ × ५	= ३१२५
६ × ६ × ६ × ६ × ६	= ७७७६
७ × ७ × ७ × ७ × ७	= १६८०७
८ × ८ × ८ × ८ × ८	= ३२७६९
९ × ९ × ९ × ९ × ९	= ५९०४९
१० × १० × १० × १० × १०	= १०००००

इतने गुणाकारो का निरीक्षण यह व्यक्त करता है कि जो अक गुणाकार के मूल मे आता है वही अङ्क इसका मूल होता है, परन्तु ११-२१ ३१-१२ २२-३२ आदि मे अन्त का अक १-२ होने पर भी पूर्व का अक पृथक-पृथक् होता है, इसलिए पूर्व के अको का निर्णय करने के लिए कोई दूसरा तरीका खोजना चाहिए। उसके लिए निम्नोक्त सख्या देखो—

११X११X११X११X११	= १६१०५१	(छह अक)
१२X१२X१२X१२X१२	= २४८८३२	,,
१३X१३X१३X१३X१३	= ३९६६४३	,,
१४X१४X१४X१४X१४	= ५१७८२४	,,
१५X१५X१५X१५X१५	= ७५९३७५	,,
१६X१६X१६X१६X१६	= १०४८५७६	(सात अक)
१७X१७X१७X१७X१७	= १२२०९५७	,,
१८X१८X१८X१८X१८	= १८८९५६८	,,
१९X१९X१९X१९X१९	= २४७६११९ ९	,,

२०X२०X२०X२०X२०	=३२००००००	,,
२१X२१X२१X२१X२१	=४१७२३०१	,,
२२X२२X२२X२२X२२	=५१५३६३२	,,
२३X२३X२३X२३X२३	=६४३६२४३	,,
२४X२४X२४X२४X२४	=७९६२६२४	,,
२५X२५X२५X२५X२५	=९७६५६२५	,
२६X२६X२६X२६X२६	=११८८१५७६	(आठ अंक)
२७X२७X२७X२७X२७	=१४१३८९०७	,,
२८X२८X२८X२८X२८	=१७२१०३६८	,,
२९X२९X२९X२९X२९	=२०५१११४९	,,
३०X३०X३०X३०X३०	=२४३०००००	,,
३१X३१X३१X३१X३१	=२८६२९१५१	,,
३२X३२X३२X३२X३२	=३३५५४४३२	,,
३३X३३X३३X३३X३३	=३९१३५३९३	,,
३४X३४X३४X३४X३४	=४५४३५४२४	,,
३५X३५X३५X३५X३५	=५२५२१८७५	,,
३६X३६X३६X३६X३६	=६०४६६१७६	,,
३७X३७X३७X३७X३७	=६९३४३९५७	,,
३८X३८X३८X३८X३८	=७९१३५१६८	,,
३९X३९X३९X३९X३९	=९०२२४१९९	,,
४०X४०X४०X४०X४०	=१०२४००००००	(नौ अंक)

यहाँ तक का निरीक्षण यह स्पष्ट करता है कि इन सख्याओ को याद रखने के लिए, वे कितने अंको की है, यह बात विशेष महत्त्व की है। उसके अन्त की सख्या तो समझी जा सके ऐसी है परन्तु दशक का परिवर्तन कब होता है ? यह जानने योग्य है। उसका इस रीति से विभाग करने पर पता लग सकता है। उनमे भी जिन संख्याओ मे सख्या के अंको की वृद्धि होती हो उतनी ही याद रखने की जरूरत है। वे सख्या निम्नोक्त हैं—

४१X४१X४१X४१X४१	=११५८५६२०१	(नव अंक)
४२X४२X४२X४२X४२	=	
४३X४३X४३X४३X४३	=	
४४X४४X४४X४४X४४	=	

४५X४५X४५X४५X४५	=	
४६X४६X४६X४६X४६	=	
४७X४७X४७X४७X४७	=	
४८X४८X४८X४८X४८	=	
४९X४९X४९X४९X४९	= २८२४७५२४९	(नव अ क)
५०X५०X५०X५०X५०	= ३१२५०००००	,,
६०X६०X६०X६०X६०	= ७७७६०००००	,,
६४X६४X६४X६४x६४	= १०७३७४१७२४	(दस अ क)
७०X७०X७०X७०X७०	= १६८०७०००००	,,
८०X८०X८०X८०X८०	= ३२७६८०००००	,,
९०X९०X९०X९०X९०	= ५९०४९०००००	,,
१००X१००X१००X१००X१००	= १००००००००००	(ग्यारह अ क)

इसका सार यह है कि—

१ पाँच अंक की संख्या तक अन्त मे आया हुआ अ क ही पंचधात का मूल है।

२ छह अ क की किसी भी सख्या मे पूर्व मे एक होता है।

३ सात अ क की सख्या के अन्त मे ६ से ९ तक की सख्या मे पूर्व मे १ है, और ० से ५ तक की सख्या मे २ है।

४ आठ अ क की सख्या मे मात्र अन्त की सख्या की गिनती से विभाग हो जाए वैसा नही हैं, क्यो कि इसमे सख्याएँ अधिक है। जिससे इस प्रकार की सख्याएँ दो-दो बार आती है। जैसे कि—

११८८१५७६ और ६०४६६१७६

१४३४८९०७ और ६९३४३९५७ आदि

इसलिए इनका वर्गीकरण पूर्व के अ को द्वारा करना चाहिये। पूर्व के अ को मे से दो अ क इस कार्य के लिए पर्याप्त है। उस रीति से ११ से २० तक की सख्या मे आगे २ अ कित होते है और २४ को लेकर बाद की सख्या मे ३ अ कित होते है।

५ नव अ क की सख्या मे भी इसी भाँति वर्गीकरण करते हुए १० से २८ तक की संख्या के पूर्व मे ४ है, ३० से ७६ तक की सख्या के पूर्व मे ५ होते हैं और ७७ से ९९ तक की संख्या के आगे ६ होते है।

६ १० अ क की सख्या मे भी इसी तरह वर्गीकरण करते हुए १० से १५ तक की संख्या मे ६, १६ से ३१ तक की सख्या मे ७, ३२ से ५८ तक की सख्या मे ८ और ५६ से ६६ तक की सख्या मे ६ होते है।

७ ग्यारह अ क की सख्या मे केवल १०० की सख्या ही है।

इस समस्त वर्गीकरण को निम्नोक्त पक्तियो के आधार पर याद रखा है—

पच घात नु पकडो पूँछ, रिपु ने आगल एक मूँछ;
वारने अन्ते कोतुक थाय, एक महाद्वीप वे थई जाय।
सिद्धि नानी राधा वे, वाकी नी तो त्रण त्रण छे,
निधि ये चार पाँच ने छँ राश थी वीमो वाध्यो जो,
दिनपालो छ थी नव छै, नप्पु गीनी पाश थी ले।

और इनका भो सार रूप एक ही दोहा है

रिपु मूँछ वार दीवो अने सिद्धि राधा एक।
वांध्यो वीमो राश थी नप्पू जुगारी छेक।

इसके सार का कल्पना चित्र मन मे इस प्रकार खीचना है। वीमा कम्पनी के रिपु और नप्पु नामक दो नौकर रविवार की रात्रि मे दीपक जलाकर आफिस मे जुआ खेल रहे हैं। यह दृश्य राधा नाम की नन्ही वालिका देख रही है। इतने मे पुलिस आकर उन्हे पकड लेती हैं, और पचनामा के लिए वयान लेने लगती है।

इस चित्र मे पचनामा पचघात की याद दिलाता है। इसलिए कि इस चित्र का सम्वन्ध पचघात के साथ है उनमे रिपु, वार, द्वीप नन्ही राधा, वीमा की आफिस, वीमा और नप्पु जुवारी, ये मुख्य विषय है, जो अनुक्रम से ६, ७, ८, ६, और १० की सख्या का स्मरण करते है ये नाम याद आते ही 'पचघात की पकड़ो' यें पक्तियां भी वरावर याद आती हैं।

इस साधन से १ से १०० तक की पचघात की सख्या का मूल ३० सैकिण्ड एक ? मिनट के अन्दर वताया जा सकता है जैसे कि—

१६८०७ का पचघात मूल क्या है? ७१ क्योकि सख्या पाँच अंक की है और पाँच अ क वाली सख्या का अन्तिम अ क ही ग्रहण करना है।

२४७६१९९ का पचघात का मूल क्या है ? १९ कारण कि अ क सात है, इसलिए वार सख्या है । वार के अन्त मे कौतुक होता है इसलिए (महा) ६ से ९ तक आगे १ होता है और (द्वीप) ० से ५ तक आगे २ होते है । इसलिए यहाँ आगे एक होना चाहिये । पीछे का अ क निश्चित ९ ही है । इसलिए उत्तर १९ हुआ ।

२८६२९१५१ का पचघात का मूल क्या है ? ३१ । क्यो कि संख्या आठ अ क की है, इसलिए सिद्धि वर्ग की है । उनमे राधा अर्थात् ११ से २० तक की सख्या के पूर्व मे २ है और बाकी की सख्या मे ३ है । इसलिए पूर्व का अ क ३ पीछे निश्चित १ वे दोनो मिल कर ३१ हुए ।

६९३४३९५७ का पचघात मूल क्या है ? ३७ । सख्या आठ अ क की है, इसलिए सिद्धि वर्ग की है, उनमे आगे २ अ क २० से अधिक हैं, इसलिए आगे ३ और पीछे का अ क ७ कुल ३७ ।

२०५९६२९७६ का पचघात मूल क्या है ? ४६, क्यो कि सख्या नव अ क ही है अर्थात् विधि वर्ग की है । उनमे राशि से अर्थात् २८ से आगे की सख्या ४ है । २८ वीमा तक की अर्थात् ७६ तक की संख्या ५ है और बाद की ६ है । यह आगे की सख्या २० है । इसलिए ४ और पीछे के ६ मिलकर ४६ हुई ।

१९३४९१७६३२ का पचघात मूल क्या है ? उत्तर ७२ । क्यो कि संख्या १० अ क की है । इसलिए दिक्पाल वर्ग की है । उसके आगे नप्पु १५ तक की सख्या हो तो ६, गीनी अर्थात् ३१ तक की सख्या हो तो ७, पाश अर्थात् ५८ तक की सख्या हो तो ८ और शेष की संख्या के लिए ९ समझने चाहिए । यहाँ सख्या २० होने से आगे ७ है और पीछे २ है; मिलकर ७२ हुई ।

इस पद्धति से १ से १०० तक की सख्याएँ जो पूर्ण पचघात हैं, उनका मूल भाव-बन्धन से बताया जा सकता है ।

यह विषय अति गहन है, जिससे इसमे बुद्धि को जितनी कसनी हो उतनी कसी जा सकती है । एक बार बराबर व्यवस्थित विचारणा हो चुकी हो और भाव का बन्धन यदि यथार्थ हो गया हो, तो वह बराबर याद रह सकता है ।

मंगलाकाक्षी
धी०

□

पत्र तेईसवाँ

अवधान-प्रयोग

प्रिय बन्धु,

पिछले पत्र के द्वारा तुम समझ गये होगे कि सामान्य मनुष्य को जो चीज असाधारण लगती है, वह बुद्धि और स्मृति के उचित विकास से साधी जा सकती है। इस बात की विशेष प्रतीति अवधान प्रयोग दिलवाते हैं।

अवधान-प्रयोग अर्थात् अवधान के प्रयोग। 'अवधान' शब्द सामान्यतया धारण करना, ध्यान मे लेना यह अर्थ बताता है। वह यहाँ परम्परा से ग्रहण, धारण और उद्‌बोधन इन तीनो का सयुक्त अर्थ सूचित करना है। इसलिए जिन प्रयोगो मे, अलग-अलग मनुष्यो द्वारा कहे हुए अलग-अलग विषयो को एक के बाद एक ग्रहण किया जाता है और उन समस्त को याद रखकर पीछे तुरन्त ही क्रमश दुहराया जा सके, उन्हे अवधान-प्रयोग कहते है। इनमे कुछेक विषय मूल क्रम मे ही कहने के होते है। कुछेक के प्रत्युत्तर देने होते है और कितनेक प्रश्नो के साथ जुड़ी, उन उन शर्तो को पूरा करना होता है। इस तरह जो आठ विषयो को धारण कर सकते है, वे अष्टावधानी कहलाते है जो सौ विषयो को धारण कर सकते है, उन्हे शतावधानी कहा जाता है और जो हजार विषयो को धारण कर सकते है वे सहस्रावधानी कहलाते है। हमारे देश मे हुए अवधानकारो के समुदाय मे से कुछेक का परिचय निम्नोक्त पक्तियो द्वारा मिलता है—

श्री मुनिसुन्दर सूरीरवधानसहस्रकारक ख्यातः।
व्याकरण-न्याय-गणितादिषु निष्णात कविप्रधानोऽभूत् ॥१०॥

श्रीमद् - यशोविजय - वाचकपुङ्गवोऽभूत्,
सिद्धचम्वरेन्दु (१०८) कलिताल्ललितार्थवित्तान्।

ग्रन्थांश्चकार जितकाश्यबुध प्रकाण्ड.
सिद्धावधानकुशलो विबुधाग्रणीर्य ॥१२॥
आसीत् महाकविवरश्रुत - गट्टुलाल:
आचार्यशङ्कर गुरुश्च शतावधानी ।
अद्यापि विश्रुत - यशा कविराजचन्द्र;
ख्याति दधाति विदुषा मुनि रत्नचन्द्र. ॥१३॥

(शतावधान प्रयोग के अवसर पर बीजापुर मे लेखक को समर्पित शतावधानाभिनन्दनम् नाम के बत्तीस श्लोकी काव्य मे से)*

श्री मुनि सुन्दर सूरि सहस्रावधानी के रूप में विख्यात हैं। व्याकरण, न्याय और गणित के विषय मे अत्यन्त निष्णात थे तथा कवियो मे श्रेष्ठ थे।

महामहोपाध्याय श्री यशोविजय जी महाराज विद्वानो मे सुप्रसिद्ध थे। उन्होने तत्त्वबोध से भरपूर और विविध छन्द-अलकार से बहुत कमनीय १०८ ग्रन्थो की रचना की है। उन्होने काशी मे सर्व पण्डितो पर तत्त्व-चर्चा मे विजय पाई थी। वे अवधान के विषय मे अतिशय कुशल थे। इस कारण विद्वान् उनका बहुत सम्मान करते थे।

कविवर गटटूलाल जी तथा शकर लाल माहेश्वर भट्ट शतावधानी थे, वैसे ही आज तक भी जिनका यश गूँज रहा है वे कवि राजचन्द्र जी और विद्वानो मे प्रख्यात मुनि रत्नचन्द्र जी भी शतावधानी थे।

मुनि श्री सौभाग्यचन्द्र जी (सन्त बाल), मुनि श्री जयानन्द जी, मुनि श्री धनराज जी स्वामी का नाम भी इस पक्ति मे अकित करने योग्य है।

अवधान-प्रयोगो मे कौन से विषय किस पद्धति से ग्रहण करने चाहिये, इसका विवेचन लेखक द्वारा ता० १६-४-३६ के दिन प्रात: काल बम्बई के सुप्रसिद्ध मेट्रो थियेटर मे श्रीमान् पुरुषोत्तमदास

---

* शतावधानी पण्डित श्री धीरजलाल शाह जीवन-दर्शन ग्रन्थ मे यह काव्य पूरा छपा है।

ठाकुरदास सी० आई० ई० के सभापतित्व मे किये गये प्रयोग से जाना जा सकता है।

विषयानुक्रम

१. ६ समान अंको का वर्ग करना।

२. ईस्वी सन् के अमुक वर्ष के अमुक महीने की अमुक तारीख को क्या वार था ? यह खोज निकालना।

३. सीधे आडे और तिरछे खानो को गिनते हुए एक समान संख्या आए, इसी प्रकार नव खाना वाले जादुई यन्त्र बनाना। (प्रश्नकर्ता द्वारा कथित सख्या का ही परिणाम लाना, सख्या तीन से विभक्त हो ऐसी होनी चाहिए। अवधान-कार प्रथम बार तीन खाने भरायेगा)।

४ ऊपर के अनुसार ही १६ खानो के चौरस यन्त्र मे कही हुई संख्या भरना (प्रश्नकर्ता कोई भी सख्या दे सकता है)।

५. ३६ अंकों की लम्बी सख्या याद रखना (प्रश्नकर्ता ३६ अंको की एक संख्या लिखकर उसके तीन तीन अंकों के १२ टुकडे बनाएगा। हरेक टुकडे को नम्बर देकर उन्हे क्रम-व्युत्क्रम से बोलेगा। पहली बार उनमे से जो चाहेगा वह एक टुकडा बोलेगा।

६ सस्कृत भाषा का ६ शब्दो का वाक्य याद रखना (इन शब्दो को प्रश्नकर्ता नम्बर देगा। प्रथम यह नम्बर बोल के शब्द एक ही बार स्पष्टता से कहेगा। ६ शब्दो को आगे पीछे सुनना, प्रत्युत्तर के समय उम वाक्य को क्रमशः प्रस्तुत करना।

७ ३६ अंक की सख्या का दूसरा टुकड़ा सुनना।

८. अवधानकार कुछ वार्ता प्रस्तुत करेगा।

९ हिन्दी भाषा का ६ शब्दो का वाक्य (न० ६ के अनुसार)।

१० ३६ अंक संख्या का एक टुकड़ा।

११-१२. प्रश्नकर्त्ता संख्याबद्ध वस्तुओ मे से ८ वस्तुओं को पसंद करके उन्हे नम्बर देगा। उन वस्तुओं के समुदाय से यथेष्ट दो वस्तुओ का अवधानकार को पीछे से स्पर्श करायेगा जब इस प्रकार

इन समस्त वस्तुओं का स्पर्श हो जाएगा। तब नम्बर के क्रम मे उन्हे अवधानकार बताएगा।

१३ ६ अंकों का वर्ग करना।

१४-१५ पशु-पक्षियों के चित्रो को देखकर याद रखना। यहाँ दो चित्र दिखाये जायेगे।

१६-२५ ताश के पत्तो में से किन्ही दस पत्तो को दिखाना। प्रश्नकर्त्ता पहले अपने नम्बर देगा फिर कोई पत्ता बताएगा।

२६ गुणाकार का गुप्त अंक प्रकाशन। प्रश्नकर्ता एक बडा गुणाकार तैयार करेगा, फिर गुण्य, गुणक और गुणाकार की सख्या सुनाएगा पर गुणाकार की संख्या सुनाते समय एक अंक छुपा लेगा। वह अंक कौन सा है वह प्रत्युत्तर समय में प्रकट किया जावेगा।

२७ कागज पर लिखे हुए संवत्, मास, तिथि, पक्ष और वार को गणित के आधार पर खोज निकालना।

२८ नव खाना वाले यन्त्र को आगे भरना।

२९ सोलह खाना वाले यन्त्र को आगे भरना।

३०. ३६ अंक की संख्या का एक टुकडा।

३१ मराठी भाषा का ६ शब्दो का एक वाक्य। (न० ६ के मुताबिक)।

३२ ३६ अंक की सख्या का एक टुकडा।

३३ अवधानकार अपनी वार्ता को आगे बढाएगा।

३४. अंग्रेजी भाषा का ६ शब्दो का वाक्य। (न० ६ के अनुसार)।

३५ ३६ अंक की संख्या का एक टुकडा।

३६-३७ दूसरी दो वस्तुओं का पीछे से स्पर्श कराना।

३८ चतुराक्षरी काव्य बनाना। चार अक्षरों का कोई भी शब्द कहना। इस शब्द का क्रमशः एक-एक अक्षर लेकर कविता बनाना।

३९-४०. दूसरे दो चित्र देखना।

४१-५० ताश के पत्तों में से अन्य दस पत्तों को याद रखना।

५१ चार व्यक्ति अलग-अलग एक दूसरे को न जानें इस प्रकार कागज पर सख्या लिखेगे। अवधानकार इस तरह गणित करायेगे कि जिससे चारो की सख्या का उत्तर एक समान आये।

५२ नव मनुष्य अपना एक समूह बना कर प्रत्येक का नम्बर स्थिर करे, फिर कोई भी एक व्यक्ति एक अंगूठी अपने दाये या या दाहिने हाथ की कोई भी अगुली के कोई भी पैरवे मे छुपा कर रखें। गणित के आधार पर वह मुद्रिका किसके पास, कौन से हाथ की अगुली के कौन से पैरवे पर है, अवधानकार प्रकट करेंगे।

५३ नव खाना वाला यंत्र पूर्ण भरना।

५४ सोलह खाना वाला यत्र आगे भरना।

५५ ३६ अक की संख्या का एक टुकडा।

५६ संसार की किसी भी भाषा का छह शब्दो का एक वाक्य। (नं० ६ के अनुसार)

५७ ३६ अंक की सख्या का एक टुकडा।

५८ अवधानकार वार्ता को आगे बढाएंगे।

५९ ससार की किसी भी भाषा का छह शब्दो का एक वाक्य। (न० ६ के अनुसार)

६० ३६ अक की सख्या का एक टुकडा।

६१-६२. अन्य दो वस्तुओ का पीछे से स्पर्श कराना।

६३ समान अन्तर वाली पांच अको की ११ सख्याओ का योग निकालना। इस समय उनमे से छह सख्याएं प्रश्नकर्ता सुनाएगा।

६४-६५ दूसरे दो चित्र दिखाने।

६६-७५ ताश के पत्तो मे से तीसरे दस पत्तो को याद रखना।

७६. पाँच घात वाली सख्या का मूल निकालना। सख्या पूर्ण पाँच घातवाली होनी चाहिए। (दस अको तक)।

७७. एक व्यक्ति एक बोर्ड पर लिखे सख्याबद्ध प्रश्नो मे से मन मे प्रश्न धारण करे, वह प्रश्न क्या है? कार्ड के आधार पर प्रकट करना।

७८ न० ६३ का विषय :-योग की दूसरी-तीन संख्याएं सुनानी।

७९. सोलहखानों वाला यंत्र पूर्ण करना।

८० ३६ अंक की संख्या का एक टुकड़ा सुनना।

८१ संसार की किसी भी भाषा का छह शब्दों का एक वाक्य याद रखना। (नं० ६ के अनुसार)।

८२ ३६ अंक की संख्या का एक टुकड़ा सुनना।

८३. चालू वार्ता को पूर्ण करना।

८४ संसार की किसी भी भाषा का छह शब्दो का वाक्य।

८५. ३६ अंक की संख्या का एक टुकड़ा।

८६-८७ चौथी दो वस्तुओ का पीछे से स्पर्श कराना।

८८ योगवाली शेष की दो संख्याएं सुनाना।

८९-९० चौथे दो चित्र देखने।

९१-१०० ताश के पत्तो मे से चौथे समूह के दस पत्तो को याद रखना।

इन विषयो को धारण करने के बाद उनका उत्तर बरावर दिया गया।

ता० १०-१-४२ के दिन सायंकाल बम्बई के सर कावस जी जहांगीर हाल मे सेठ प्राणलाल देवकरण नानजी के जे० पी० के सभापतित्व मे हुए अवधान-प्रयोग मे निम्नोक्त विषयो की धारणा की गई—

१-१६ १६ व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग दिखाई गई वस्तुओ को याद रखना।

१७ चार अलग-अलग व्यक्ति अपने मन मे संख्या धारण करेंगे अवधानकर्ता उन हरेक को एक साथ गणित कराकर सबका उत्तर एक ला देंगे।

१८ नव खाना वाला सर्वतोभद्र यंत्र भरना।

१९ सोलह खाना वाला सर्वतोभद्र यंत्र भरना।

२० ईस्वी सन् की बीसवी सदी के किसी भी वर्ष के किसी भी महीने की कौन सी तारीख को क्या वार था बताना।

२१. गणित के आधार पर अंकित जन्म, सम्वत्, मास, पक्ष-तिथि और वार अथवा सन्, महीना, तारीख और वार बताना।

२२. एक कागज पर लिखे हुए ३१ प्रश्नो के समूह मे से किसी एक मन मे निर्धारित प्रश्न को कार्ड के द्वारा बताना।

२३. उपर्युक्त प्रकार से ही दूसरा प्रश्न बताना।

२४. नव समान अंकों का वर्ग।

२५ दस अंक तक की पचघात संख्या का मूल प्रकट करना।

२६-७३. ताश के ४८ पत्तों को मात्र पाँच मिनट में याद रखना। बारह-बारह पत्तों का समूह एक बोर्ड पर बताना। ऐसे कुल चार बोर्ड बताये जायेंगे। हरेक बोर्ड को देखने का समय १ मिनट १५ सैकिण्ड होगा।

७४. हिन्दी भाषा के छह शब्दों को व्युत्क्रम से सुनना।

७५. मराठी भाषा के छह शब्दो को व्युत्क्रम से सुनना।

७६. गुणाकार का गुप्त अंक प्रकट करना।

७७. नव व्यक्तियों के बीच छुपाई गई अंगूठी किसके कौन से हाथ मे, कौन सी अंगुली के, कौन से पैरवे पर है, गणित के आधार पर बताना।

७८. संस्कृत भाषा के छह शब्दो का वाक्य व्युत्क्रम से सुनना।

७९. अंग्रेजी भाषा के छह शब्दों का वाक्य व्युत्क्रम से सुनकर याद रखना।

८० पाँच रुपये के नोट का नम्बर याद रखना।

८१-८४. चार टेलीफोन का नम्बर याद रखना।

८५-८६. संसार की किसी भी भाषा के छह शब्दों के दो वाक्य याद रखने।

८७-९४. टोकरी में से आठ वस्तुओं को बिना देखे स्पर्श मात्र से क्रमवार याद रखना।

९५-१०४. पृथक्-पृथक् आठ पुस्तकों को बिना देखे मात्र स्पर्श से नाम क्रमांक याद रखना।

१०५-१०८. एक ही प्रकार की चार पुस्तकों का मर्म क्रमशः बताना।

इन विषयो को धारण करने के बाद उन समस्त का क्रम तथा प्रत्युत्तर यथार्थ रूप से बताया गया ।

सन् १६३७ के जुलाई महीने मे कराची की विभिन्न सस्थाओ के सान्निध्य मे इस प्रकार के प्रयोग नव वार किये गये । उनमे गुणाकार, निबन्ध - लेखन, पादपूर्ति, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, सभाषण आदि का भी कार्यक्रम रखा गया । अन्य स्थानो मे किये गये अवधान प्रयोगो के बीच-बीच मे वार्तालाप और चर्चा का समावेश भी रखा गया ।

दूसरे अवधानकार अपनी अपनी रुचि के विषयो को अलग अलग प्रकार से संयोजित कर सकते हैं । जैसे कि पृथक्-पृथक् विषयो पर छन्द वार कविता, शतरज और पासा के दाँव, घटनाद आदि ।

इन विषयो को विवेचना से तुम जान सकोगे कि अवधान प्रयोगो मे विषयो की विविधता खूब ही होती है और उन हरेक विषय को चाहे जितनी अटपटी प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है; परन्तु सभा मे उच्च आसन पर शान्त और स्थिर-चित्त चक्षु बन्द किये बैठा हुआ अवधानकार उन हरेक विषयो को अपने मन मे एक के बाद एक सयोजित करता चला जाता है और चार या पाँच घण्टो के बाद उन समस्त का बराबर प्रत्युत्तर दे देता है । उस समय श्रोताओ के आश्चर्य का कोई पार नही रहता ।

परन्तु मेरे प्रिय बन्धु ! मेरे इतने पत्र बाँच लेने के बाद अब तुम्हे इस विषय मे विस्मय नही होगा । इनमे से हरेक प्रयोग के बारे मे पिछले पृष्ठो मे दिवेचन कर चुका हूँ । ये समस्त प्रयोग किसी न किसी सिद्धान्त पर ही व्यवस्थित हैं ।

मैं मानता हू कि तुम स्वयं इन विषयो के पीछे रहे सिद्धान्तो को बराबर समझ सके हो । फिर भी यदि कोई विषय विशदता से ध्यान मे न आया हो तो उसके सम्बन्ध मे स्पष्टता और पूर्णता कर लोगे ।

मगलाकाक्षी
धी०

पत्र चौबीसवाँ

प्रिय बन्धु !

तुम्हारा पत्र मिला, तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर निम्न प्रकार से है ।

प्रश्न—एक साथ कितनी वस्तुओ पर ध्यान दिया सकता है ?

उत्तर—एक समय में एक ही वस्तु पर ध्यान दिया जा सकता है, परन्तु मन यदि बहुत ही कल्पनाशील हो तो अलग-अलग विषयो को एक के बाद एक खूब शीघ्रता से ग्रहण किया जा सकता है। इसलिए वह एक साथ अनेक वस्तुओ पर ध्यान देने जैसा लगता है, परन्तु यथार्थ मे एक साथ दो वस्तु पर ध्यान देना सम्भव नही है ।

प्रश्न—अवधान-प्रयोग मे योग-शक्ति का उपयोग होता है—क्या यह सत्य है ?

उत्तर—योग शक्ति क्या है ? यह पहले समझ लेना आवश्यक है। योग, यह किसी भी प्रकार का चमत्कार अथवा प्रकृति के नियम के बाहर की वस्तु नही है, पर एक प्रकार का अभ्यास ही है । फिर वह चाहे शरीर और उसकी नसो के सम्बन्ध मे हो, मन और उसकी वृत्तियो के सम्बन्ध मे हो या परमात्मा की शक्ति के प्रकाश को प्राप्त करने के सम्बन्ध मे हो । इस अभ्यास द्वारा प्राप्त होने वाला शक्ति का खासकर एकाग्रता का उपयोग इस प्रयोग मे किया जाता है ।

प्रश्न—अवधान-प्रयोग सहजशक्ति से होता है या शैक्षणिक शक्ति से ।

उत्तर—कुछेक व्यक्ति इन प्रयोगों को सहज-शक्ति से कर सकते है, जबकि बाकी के शिक्षण-शक्ति द्वारा करते है । सहज शक्ति वाले व्यक्ति विरल और स्वल्प होते है, क्योंकि उसमे अति उच्च कक्षा का मानसिक विकास अपेक्षित है ।

प्रश्न—अवधान-प्रयोगो मे कोई खास विधि अपनानी पडती है, यह सत्य है न ?

उत्तर—अवधान-प्रयोग स्वय ही एक विधि युक्त प्रक्रिया है । उसमे दूसरे अनुष्ठान की अपेक्षा नही । परन्तु इन प्रयोगो की क्रिया के पूर्व शरीर का मल दूर हो जाए यह जरूर आवश्यक है तथा

उदर पर किसी प्रकार का वजन न हो तो मन की स्फूर्ति प्रशस्त और प्रबल रहती है। इस कारण बहुत से अवधानकार महान् प्रयोग के दिन, बने वहाँ तक, उपवास करते हैं और उपवास न बन सके तो दूध या फलों का स्वल्प आहार ग्रहण करते हैं। इसके सिवाय कोई खास विधि नही है।

प्रश्न अवधानकार अपने देश में ही हैं या दूसरे देशो मे भी है ?

उत्तर—अन्य देशों मे भी अद्‌भुत स्मरण-शक्ति वाले पुरुष समय-समय पर उत्पन्न होते हैं। परन्तु अवधान-क्रिया का पद्धति-युक्त विकास तो भारतवर्ष मे ही हुआ मालूम पडता है, उसमे भी जिन जातियो मे मासाहार या मदिरापान बिल्कुल वर्जित होता है, उनमे ही इस प्रकार के व्यक्ति विशेष पैदा होते है।

प्रश्न—अवधान कला के विषय मे आपने कोई खास ग्रन्थ देखा है ?

उत्तर—नही, इस कला का कोई खास ग्रन्थ देखने मे नही आया, और ऐसा ग्रन्थ किसी ने लिखा है यह आज तक तो जानने मे नही आया। किन्तु यह कला गुरु द्वारा उत्तरोत्तर शिष्यो को सिखाई जाती रही है, यह प्रतीत अवश्य होता है।

विदेशो मे स्मरण शक्ति और उसके विकास के विषय मे कुछेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं पर अब तक उनमे चाहिये जितनी गहराई नही आई है।

प्रश्न—नव और छह अ क का वर्ग किस प्रकार होता है।

उत्तर—इसमे भाव वन्धन का आधार लेना अपेक्षित है।

प्रश्न—ससार की पृथक्-पृथक् भाषाएँ किस पद्धति से याद रखी जाती हैं।

उत्तर—भाषाएँ कुल दो प्रकार की हैं। एक तो परिचित अर्थात् जिसे हम जानते है वह और दूसरी अपरिचित अर्थात् जिसे हम नही जानते हैं वह। नही जानते है वे समस्त भाषाएँ अपने तो एक समान ही है. फिर वह चाहे देश की हो और चाहे किसी प्रकार से बोली जाती हो। इन भाषाओ को सुनते समय अत्यन्त एकाग्रता रखनी अपेक्षित है जिससे उनका उच्चारण बराबर किया जा सके। इसके लिए श्रवणेन्द्रिय का भी परिपूर्ण कार्यक्षेत्र होना जरूरी है। इस तरह भाषा को ग्रहण करने के बाद उन अपरिचित शब्दो का परिचित भाषा के साथ, कोई न कोई

सम्बन्ध जोडा जाता है, जैसे कि—

मंची (तेलगु) तो मच मची
कंदलु (तेलगु) तो कद लू मूली को साफ कर
खेमिया (बर्मी) तो खेमि या दूसरा कोई
फया (वर्मी) तो फूग्रा-फया ।
गार्टन (जर्मनी) तो गारटन (गार लीपने की एक टन जितनी तैयारी की है ।
रीजेम्बल (अग्रेजी) तो रीसेबल-रिजेम्वल
लीब्रो (Libro पोर्चुगीज) लीबडो (नीम) लीब्डो लीबो ।
कोमर (Comor रशीयन) तो कुमार-कामार, कोमर आदि-आदि ।

प्रश्न—ताश के पत्तो किस विधि से याद रखे जाते हैं ? उनमे हरेक प्रकार के तेरह-तेरह पत्ते होने के कारण क्या भूल होना सम्भव नही है ?

उत्तर—ताश के पत्तो याद रखने के लिए मैंने खुद ही एक खास पद्धति निश्चित कर रखी है। उसके लिए प्रत्येक पत्तो को पशु, पक्षी या मनुष्य की स्वतत्र सज्ञा दी हुई है जिससे उस वस्तु को याद रखना और उस पत्तो को याद रखना एक समान है। जैसे कि मुझे हुकम का सत्ता याद रखना हो तो उसकी जगह मैं केवल कुत्ता याद रखता हूँ। चिडी का सत्ता याद रखना हो तो सियाल याद रखता हूँ और ईट का सत्ता याद रखना हो तो मुर्गी याद रखता हूँ। उसी प्रकार हुकम का गुलाम याद रखना हो तो भील, चिड़ी के गुलाम के लिए जागीरदार, लाल पान के लिए राजा का चपरासी और ईट के गुलाम के लिए ब्राह्मण रसोइये को याद रखता हूँ। इन सज्ञाओ को किसी भी पद्धति के वर्गीकरण के अनुसार निश्चित कर लेना चाहिये जिससे कि सुगमता से याद रह सकें।

प्रश्न—ताश के पत्तो के बारह पत्ते मात्र एक नजर से देखकर सवा मिनट मे कैसे याद रहते है।

उत्तर—बारह पत्तो चार विभागों मे तीन तीन पत्ते होते हैं। उन्हे देखते ही अक्षरो की सहायता से शब्द बनाये जाते है। उनके चार शब्द बनते हैं। उन्हे कल्पना के साथ जोड़ लेना होता

है। इसलिए ४८ कार्डों मे कुल १६ शब्द तैयार करके याद रखने होते है। यह कार्य मुश्किल है पर अभ्यास से सिद्ध हो जाता है।

प्रश्न—गुणाकार के गुप्त अक प्रकाशन मे क्या रहस्य है ?

उत्तर—इसमे स्मृति से गिनने की पटुता खास चाहिए। जब वह कला प्रयुक्त की जाती है तो गणित के आधार पर ही गुप्ताक का प्रकटन किया जा सकता है।

प्रश्न—सवत्, मास, पक्ष, तिथि और वार बताने मे क्या विज्ञान है ?

उत्तर—यह स्पष्टतया गणित का ही विषय है। इसमे भागाकार करने की विशेष दक्षता चाहिए। जिस तरह गुणन कराया गया है उसका पृथक्करण करने पर उत्तर उपलब्ध हो जाता है।

प्रश्न—बोर्ड पर लिखे हुए प्रश्नो मे से धारे हुए प्रश्न का उत्तर किस विधि से जाना जाता है ?

उत्तर—यह भी गणित का प्रश्न है। उस प्रश्न के सूचक पाच कार्ड दिए जाते है। उनमे से जो कार्ड प्रश्नकर्त्ता वापिस लौटाता है, उनकी गिनती के आधार पर ही प्रश्न का नम्बर निकाला जाता है।

निबन्ध लेखन, सभाषण, चर्चा, कविता, पादपूर्ति इन समस्त विषयो का आधार अवधानकार की विद्वत्ता पर निर्भर है। इसलिए उसकी जिस प्रकार की तैयारी हो उस प्रकार का कार्य कर सकता है। धुरन्धर विद्वान अवधानकार जनता के मन पर इस विषय की गहरी छाप छोड सकता है।

अवधानकार की स्मरण शक्ति की अपेक्षा ग्रहण करने की पद्धति अनोखी होती है। उसकी वजह से एक बार ग्रहण किया हुआ भी वह भूलता नही। विस्मरण की कला भी उसकी परिपूर्ण सीखी हुई होती है। उससे वह इतने समग्र विषय धारण कर सकता है। यदि एक विषय ग्रहण करने के बाद मन का ध्यान उससे हटाकर दूसरे विषय पर न ले जा सके तो विषय ग्रहण ही न हो सके। अत. वह एक बार विषय को ग्रहण करने के बाद उसे विश्वासपूर्वक छोड देता है—भूल जाता है।

अवधान प्रयोगो का रहस्य यही है कि वस्तु को ग्रहण करने की कला ठीक-ठीक सीखो।

मगलाकाक्षी
धी०

पत्र पच्चीसवाँ

उपसंहार

प्रिय बन्धु,

स्मरण शक्ति के विकास के लिए जो-जो सिद्धान्त उपयोगी माने है, उनमें से बहुत सारो का सार मैंने तुम्हे बता दिया है और तुम इन सिद्धान्तो के उपयोग से जान सके हो कि तुम्हारी स्मरण शक्ति मे कितना अधिक परिष्कार हुआ है, इतना ही नही पर उसके साथ तुम्हारे मन की दूसरी शक्तियो मे भी बहुत विकास हुआ है। अत: पद्धति-पूर्वक स्मरण-शक्ति का विकास करने पर समस्त मन की अपूर्व जागृति होती है, यह निश्चित हैं।

इस समग्र विवेचन का सार यह है कि किसी भी विषय को याद रखने का आधार वह किस विधि-सग्रह किया जाता है, उसके ऊपर निर्भर है। इसके लिए आठ सिद्धान्तो को चिन्तन मे रखना जरूरी है वे निम्नलिखित है—

१. जो विषय एकाग्रता से ग्रहण किया हुआ हो वह अच्छी तरह से याद रहता है।
२ जो रसपूर्वक गृहीत हुआ हो, वह अच्छी तरह याद रहता है।
३. जो विषय जाग्रत इन्द्रियो द्वारा ग्रहण किया हुआ होता है वह अच्छी तरह याद रहता है।
४. जो विषय बने, उतनी अधिक इन्द्रियो द्वारा गृहीत होता है, वह अच्छी तरह याद रहता है।
५. जो विषय समझपूर्वक ग्रहण किया जाता है, वह अच्छी तरह याद रहता है।
६. जो विषय व्यवस्थापूर्वक ग्रहण किया जाता है, वह अच्छी तरह याद रहता है।

७ जो विषय परिचित विषय के साथ किसी भी प्रकार के साहचर्य से जोड दिया जाता है वह अच्छी तरह याद रहता है।

८ जिस विषय का पुनरावर्तन होता रहता है, वह अच्छी तरह याद रहता है।

इन सिद्धान्तो का तात्पर्य यह है कि प्रथम तो जिस विषय मे निष्णात होना हो, उस विषय मे पूरा रस होना चाहिए। उसके लिए एकाग्रता सीखनी चाहिए; इन्द्रियो को बराबर कार्यक्षम बनाना चाहिए, उनका हो सके उतना उपयोग करना सीखना चाहिए। समझ को परिष्कृत करना चाहिए। अर्थात् विषय का स्मरण स्पष्ट हो वैसा दिमाग बनाना चाहिए, सीखी हुई वस्तुओ को मन के चोक मे बराबर व्यवस्थित करना चाहिए, उन्हे किसी भी विषय के साथ सयोजित कर लेना चाहिए और समय-समय पर उनका पुनरावर्तन करते रहना चाहिए। यदि इस प्रकार प्रयास किया गया तो निश्चित ही प्रगति होगी।

'ज्ञान कण्ठा, दाम अण्टा' इस प्राचीन उक्ति का सार यही है कि जिस विद्या मे निष्णात होना हो वह कठस्थ होनी चाहिए अर्थात् उसके छोटे-बडे तमाम अंग बराबर ध्यान मे रहने चाहिए। प्रमाण पुस्तकें उपयोगी हैं पर हरेक निर्णय मे उनका उपयोग नही किया जा सकता। दूसरे प्रकार से कहे तो जो कार्य आनन फानन मे होता है उसके लिए प्रमाण पुस्तकों तक दौडना सम्भव नही।

विद्या को तरोताजा रखने के लिए निम्नोक्त दोहा याद रखो।

पान सडे, घोडा अडे, विद्या विसर जाय।
तवा ऊपर रोटी जले, कहो चेला किण न्याय।।

नागर बेल के पान सड रहे है, घोड़ा हठ पर चढ़ गया है, सीखी हुई विद्या भूली जा रही है और तवे पर रोटी जल रही है, प्रिय शिष्य! ऐसा होने का क्या कारण है? गुरु द्वारा पूछे गये इन चार प्रश्नो का उत्तर उसका चतुर शिष्य एक ही वाक्य मे देता है कि—गुरुजी फेरा नही अर्थात् नागर बेल के पानो को फेरा नही इसलिए वे सड रहे हैं। घोड़े को फेरा नही, निरन्तर फिराया घुमाया नही इसलिए वह हठ पर चढ गया है, विद्या का पुनरावर्तन नही किया गया इसलिए वह भूलो जा रही है और तवे ऊपर की रोटी को भी

फेरा नही गया इसलिए वह जल रही है अर्थात् इन सारे विषयो मे फेरने की क्रिया नही की गई।

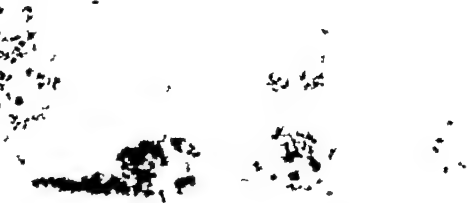
तुम भी इन पत्रो को, इस पत्र मे विज्ञापित सिद्धान्तो को यदि प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक वार, दो वार, तीन वार फेर लोगे तो तुम्हारी स्मरण कला सोलह कलाओ से उद्दीप्त हो उठेगी, इसमे सशय नही। पुनरावर्तन से तुम्हे नया ज्ञान मिलेगा। जैसे गाय समस्त घास चर जाती है और फिर शान्ति से उगल-उगल कर निकलती है वैसे ही तुम भी एक वार विषय को सामान्यतया ग्रहण करने के वाद फिर विशेष रूप से धारण करोगे तो उनके सूक्ष्म अङ्गों का रहस्य तुम्हारे समक्ष एकदम खुल जाएगा।

आज का हमारा शिक्षण जिस ढग से चलता है। उसमे समय और शक्ति का वहुत व्यय होता है और जो परिणाम आना चाहिए वह आता नही है। इसका कारण यह है कि वुद्धि के मुख्य आधारभूत सभी स्मरण-शक्ति के सिद्धान्तो का उसमे यथार्थ रूप से समावेश नही किया गया। यदि इन सिद्धान्तो का कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाय, तो उतने समय मे वहुत अधिक और वहुत अच्छी तरह से सीखा जा सकता है।

स्मरण-कला का प्रकाश पाए हुए देश के सव पुरुष और महिलाएँ धर्म और देश की वास्तविक सेवा करने के लिए भाग्यशाली हो यही मङ्गलकामना है।

तुम्हारा सव तरह से अभ्युदय चाहता हुआ इस पत्र को पूर्ण कर रहा हूँ। ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!
















अत्यन्त प्रभावशाली जिन-भक्ति

□

सुख कहां है ?

□

कोई भी मानव अपने मन एव इच्छाओ पर नियन्त्रण किये विना वास्तविक सुख अथवा शान्ति का अनुभव नही कर सकता। भौतिक सुखो की विपुल सामग्री एकत्रित करके उनके उपभोग के द्वारा मानव स्वय को सुखी एव समृद्ध बनाने का प्रयास करता है परन्तु वह सम्भव नही है। उसका कारण यह है कि उक्त सामग्री मे चेतन के धर्म का तनिक अश भी नही होता, तो फिर सच्चे सुख की सम्भावना कैसे की जा सकती है ?

उसमे पाँचो इन्द्रियो के विषयो को बहलाने की योग्यता अवश्य होती है, परन्तु किसी भी व्यक्ति की इन्द्रिया इस प्रकार कभी तृप्त नही हुई, होती ही नही। घी से अग्नि शमन नही होती वरन् अधिक उद्दीप्त होती है। उसी प्रकार से बाह्य सामग्री के भोगोपभोग से इन्द्रियाँ सन्तुष्ट न होकर अधिक तीव्र बनती हैं।

अत. अनुभवी महान् सन्त पुरुषो ने इस प्रकार की सामग्री एव उसके भोगोपभोग से प्राप्त होने वाले सुख को भ्रामक कह कर उसमे भ्रमित नही होने का फरमाया है।

इच्छाएँ आकाश की तरह अनन्त हैं। मानव की एक इच्छा सतुष्ट न हो, तब तक तो अन्य सैकडो इच्छाएँ उसके मन पर नियन्त्रण कर लेती हैं और उसकी तृप्ति का कल्पित आनन्द क्षण भर मे अतृप्ति की ज्वाला मे परिवर्तित हो जाता है।

समस्त भौतिक सुखो के उपभोग का यही करुण परिणाम प्राप्त होता है, फिर भी वाह्य सुख की कामी एव रागी आत्मा अधिकाधिक भौतिक सुखों की प्राप्ति एव उपभोग के लिये रात-दिन प्रयत्न करती रहती है।

समस्त प्रकार के भौतिक सुख शर्करा लिप्त (Sugar-coated) विष की गोली तुल्य घातक हैं। वे ऊपर से मधुर और भीतर से विष तुल्य कटु हैं। अत उनसे आत्मा को शान्ति एव तृप्ति प्राप्त नही हो पाती।

इन्द्रियो को प्राप्त होने वाले अभीप्सित रूप, रस, गध, स्पर्श एव शब्द के विषयो से मोहाधीन आत्मा सुख प्राप्ति के भ्रम मे मग्न होती है, परन्तु उसका वह भ्रम वस्तुत भ्रम ही है, क्योकि रूप, रस, गध, स्पर्श और शब्द पुद्गल के धर्म हैं। उनसे आत्मा को सुख प्राप्त हो सकता है क्या ? कदापि नही, पुद्गल से पुद्गल तृप्त होता है, आत्मा नही।

आत्मा को तृप्त एव पुष्ट करने के लिये उसके गुण-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, समता, मृदुता, सन्तोष आदि मे मन को तल्लीन कर देना चाहिये, उनसे अपने जीवन को गुम्फित करना चाहिये।

वाह्य सुखो के पीछे ही निरन्तर पागल की तरह दौडते हुए मानव ने अपनी आन्तरिक भूख के लिये एकान्त मे शान्त-चित्त बैठकर क्या कभी सोचा है कि इतना-इतना प्राप्त करके और उसका उपभोग करके भी मुझे आन्तरिक शान्ति एव तृप्ति का अनुभव क्यो नही होता ?

विवेकी, चिन्तक मनुष्य के समक्ष जव यह प्रश्न उपस्थित होता है तव किसी नवीन दिशा की ओर शान्ति की खोज में उसका मन प्रेरित होता है, आत्मिक शान्ति एव तृप्ति प्राप्त करने की उसको लगन लगती है और उसकी लगन मे तीव्रता आते ही उसे किसी ऐसे सत, महन्त अथवा ग्रन्थ से साक्षात्कार हो जाता है जो उसकी भीतरी भूख के लिये उचित पथ-प्रदर्शक वन जाता है।

सुख आत्मा मे रहता है, पुद्गल मे नही।

सयोगजनित पौद्गलिक सम्वन्ध अथवा पदार्थ आन्तरिक शान्ति अथवा तृप्ति कदापि नही दे सकते। सुख, शान्ति एव आनन्द आत्मा का स्वभाव है।

उस स्वभाव पर लिप्त ग्रावरण जिस अश मे हटते हैं उसी अश मे सुख-शान्ति की अनुभूति होती है।

कोई भी विकृत पदार्थ अपने धर्म का पालन नही कर सकता, यह एक अटल नियम है। इस नियमानुसार मोह, मिथ्यात्व, अज्ञान आदि से लिप्त आत्मा स्वय के मूल धर्म का पालन नही कर सकती, अपना स्वभाव स्पष्ट नही कर सकती।

यह आत्मा आनन्दमय है, सुखमय है, ज्ञानमय है, इस सत्य मे श्रद्धा रख कर उसे प्रकट करने के जो वास्तविक उपाय हैं, उसको आचरण मे लाने का सक्रिय प्रयास किया जाये तो इस जीवन मे ही आन्तरिक शान्ति एव आनन्द की अनुभूति अवश्य हो सकती है और वह उपाय है श्री अरिहन्त परमात्मा के प्रति प्रेम एव भक्ति।

पौद्गलिक सुखो के प्रति प्रगाढ राग के कारण जो मन मलिन एव चचल हो गया है उसे निर्मल एव स्थिर बनाने वाली श्री अरिहन्त परमात्मा की प्रीति और भक्ति है।

महा महिमामयी श्री अरिहन्त-भक्ति

श्री अरिहन्त परमात्मा के साथ प्रेम करने से जन्म-जन्म से चित्त मे स्थित पौद्गलिक सुखो की आसक्ति का रूपान्तर एव मलिन वासनाओ का ऊर्ध्वीकरण हो जाता है। जो अप्रशस्त वृत्तियाँ हैं, वे श्री अरिहन्त परमात्मा के प्रेम के प्रभाव से प्रशस्त एव पवित्र बन जाती हैं। पुद्गल के राग का स्थान आत्म-रति ले लेती है। केवल स्वय के सुख के राग का स्थान समस्त प्राणियो के सुख का विचार ले लेता है। यही एक भक्तियोग की प्रमुख विशेषता है।

मोह की प्रबलता के कारण अथवा भौतिक सुखो की तीव्र आसक्ति के कारण जिन चित्त-वृत्तियो को विरति-धर्म (त्याग-वैराग्य) के स्व पर कल्याण-कारी पथ की ओर उन्मुख करने का कार्य अत्यन्त कठिन ज्ञात होता है, वह

कार्य श्री अरिहत परमात्मा की भक्ति के प्रभाव से अत्यन्त सरल हो जाता है।*

रागी के प्रति राग आसक्ति है और वह ससार का मार्ग है। वीतरागी के प्रति राग भक्ति है और वह मोक्ष का मार्ग है।

श्री अरिहन्त एव सिद्ध परमात्मा के अनन्त गुण, उनकी अचिन्त्य एव अकल्पनीय शक्ति, उनके द्वारा विश्व पर किये गये, किये जा रहे एव किये जाने वाले असख्य उपकार, उनकी लोकोत्तर करुणा एव पतितो को पावन, अपूर्ण को पूर्ण वनाने का उनका अकल्पनीय सामर्थ्य शास्त्रो एव ज्ञानी गुरुओ के द्वारा ज्ञात होता है, तव उस परमात्मा के प्रति हमारे हृदय मे एक अपूर्व प्रेम-भक्ति एव सम्मान अवश्य ही जागृत होता है और वह जागृत निष्काम प्रीति एव भक्ति ज्यो-ज्यो विकसित होती रहती है, त्यो-त्यो उसके अपूर्व आनन्द की हम अनुभूति कर पाते है। फिर तो उस दिव्य आनन्द के समक्ष भौतिक सुख तुच्छ एव निरर्थक प्रतीत होने लगते हैं। उसके प्रति हमारे मन का आकर्षण घटता जाता है। पाँच इन्द्रियो के सुख के लिये किये जाने वाले प्रयास वालको की विचारहीन धूलि-क्रीडा सदृश लगने लगते हैं।

आत्मा को परमात्मा वनाने वाली एक परमात्म-भक्ति ही है—यह सत्य हृदय मे अविचल होने के पश्चात् परमात्मा को प्राप्त करने के लक्ष्य के अतिरिक्त भक्त के हृदय मे अन्य कोई अभिलाषा-कामना रहती ही नही।

प्रभु की भक्ति मे लीन वने भक्त को परमात्मा की परमभक्ति ही अन्य प्रत्येक पदार्थ से अधिक श्रेष्ठ ज्ञात होती है, अत वह भक्त सासारिक सुखो के लाभ की गणना करके, उसे प्राप्त करने के उपाय के रूप मे परमात्मा के दिव्य प्रेम को कदापि नीचे उतरने नही देता। उसके हृदय मे तो प्रभु की भक्ति ही सर्वस्व होती है।

---

* जिनपूजनसत्कारयो. करणलालस.
खल्वाद्यो देशविरति परिणाम (पू श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी म)
देशविरति धर्म का प्राथमिक परिणाम श्री जिनेश्वर देव की पूजा एव उनका सम्मान करने की लालसा है।

एक भक्त कवि ने तो यहाँ तक कह दिया है कि —'हे अरिहन्त परमात्मा ! आपकी भक्ति के सुप्रभाव से जब मैं आपके समान बन जाऊँगा तब मुझे अपार लाभ होने के उपरान्त एक हानि भी होगी कि तत्पश्चात् मैं आपकी भक्ति का लाभ प्राप्त नही कर सकूँगा ।'

भक्त-हृदय के ये उद्‌गार 'भक्ति' पदार्थ के अमृतानुभव के सूचक है ।

प्रत्येक आत्मा मे परमात्म-स्वरूप विद्यमान है, छिपा हुआ है । वह प्रकट तव ही हो पाता है जव आत्मा परमात्मा की शरण मे पहुँचती है, उनकी भक्ति मे एकात्म वन जाती है ।

शाश्वत सुख, अनन्त आनन्द और चिन्मय शुद्ध आत्म-स्वरूप को प्राप्त करने का अनन्य उपाय परमात्मा की प्रीति, भक्ति एव शरणागति ही है ।

वीतराग, सर्वज्ञ श्री अरिहन्त परमात्मा की भक्ति करने के प्रमुख साधन—उनका नाम उनकी मनोहर मूर्त्ति, उनके जीवन की पूर्व एव उत्तर अवस्था और उनकी प्रभुता है ।

प्रभु के नाम का स्मरण, प्रभु की मूर्ति के दर्शन, वन्दन एव पूजा, प्रभु के जीवन की पूर्व एव उत्तर अवस्थाओ का चिन्तन-मनन और प्रभु की प्रभुता अर्थात् अरिहन्त परमात्मा के आर्हन्त्य का मनन एव ध्यान करने से देहभाव का विलय होते ही आत्म-स्वरूप मे तल्लीनता आने लगती है ।

श्री अरिहन्त परमात्मा के नाम स्मरण मे से भव-ताप-निवारक ऊष्मा उत्पन्न होती है । स्मरण से हमारे चित्त पर मगलकारी प्रकृष्ट शुभ भाव की छाप पडती है ।

नाम स्मरण सकट के समय की जजीर है । नाम-स्मरण भव रूपी वन का पथ प्रदर्शक है ।

तात्पर्य यह है कि श्री अरिहन्त परमात्मा के नाम स्मरण मे अपार शक्ति है । मोह रूपी महा विष को नष्ट करने वाला भावामृत इस नाम-स्मरण मे से प्रवाहित होता है ।

भेद की दीवारो को धराशायी करने मे नाम स्मरण वज्र के समान है।

शब्द की अपेक्षा अनेक गुनी शक्ति आकृति मे है, चित्र मे है, मूर्ति मे है और उसमे श्री वीतराग अरिहन्त परमात्मा की सौम्य रसमग्न प्रतिमा का स्थान अग्रगण्य है।

सूरिपुरन्दर श्री हरिभद्र सूरीश्वरजी ने फरमाया है कि 'हे तीर्थंकर परमात्मा! मोर को देखकर दूर भागने वाले भुजगो की तरह आपकी प्रशान्त मूर्ति के दर्शन मात्र से कर्म रूपी भुजग तुरन्त दूर, बहुत दूर भागने लगते हैं।'

श्री जिन प्रतिमा को श्री जिनराज तुल्य कह कर शास्त्रवेत्ता महर्षियो नें उक्त विधान का स्वागत किया है।

उसी प्रकार से श्री अरिहन्त परमात्मा के जीवन की पूर्व एव उत्तर अवस्था पर निरन्तर मनन करने से स्वार्थांधता का क्रमश क्षय होता है और परमार्थ परायणता मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है, और अष्ट महा प्रातिहार्य युक्त समवसरण मे बिराजमान श्री तीर्थंकर परमात्मा का दर्शन और ध्यान प्राणियो को प्रभु का प्रेमी बनाता है।

इस प्रकार आत्म स्वरूप को प्राप्त करने और उसकी अनुभूति करने का सरलतम मार्ग भक्ति योग है।

आध्यात्मिक साधना मे श्री अरिहन्त परमात्मा किस तरह आलम्बनभूत होते हैं उस सम्बन्ध मे हम शास्त्र सम्मत चिन्तन करें जिससे वह मुमुक्षु साधको को साधना करने मे अत्यन्त हितकर एव प्रेरक सिद्ध हो।

किसी भी कार्य की उत्पत्ति तदनुकूल कारण—सामग्री प्राप्त होने पर एव कर्त्ता के उनका प्रयोग करने पर ही होती है।

कारण सामग्री मे मुख्यत. उपादान, निमित्त तथा उसके अनुरूप सहयोगी पदार्थों का समावेश होता है।

उदाहरणार्थ यदि हम घडे का विचार करें तो घडे की उत्पत्ति, उसका उपादान कारण मिट्टी, निमित्त कारण डडा, चक्र आदि और सहयोगी सामग्री मे उसके योग्य भूमि आदि का योग प्राप्त हो तब कुम्भकार के द्वारा होती है।

इसी तरह प्रत्येक मुमुक्षु साधक का साध्य मोक्ष अर्थात् आत्मा के पूर्ण, विशुद्ध स्वरूप को प्रकट करना है।

इस मोक्ष रूपी साध्य की सिद्धि मे उपादान—कारण स्वय आत्मा है और प्रधान निमित्त श्री अरिहन्त परमात्मा है। आर्य-क्षेत्र, उत्तम कुल, उच्च जाति आदि सहयोगी सामग्री हैं।

साधक यदि अपनी मोक्ष साधना मे इन कारणो का, उनकी सामग्री का यथार्थ रूप से उपयोग करे, प्रयोग मे लाये तो ही उसका साध्य मोक्ष सिद्ध हो सकता है।

ससार के समस्त जीव सत्ता से शिव-सिद्ध के समान है, अर्थात् प्रत्येक जीवात्मा अपने मोक्ष-शुद्ध स्वरूप का उपादान है, परन्तु जब तक उसे शुद्ध देव-गुरु स्वरूप पुष्ट-निमित्त-कारण प्राप्त न हो, तब तक उसमे उपादान कारणता प्रकट नही होती। निमित्त के योग से ही उपादान मे कार्य उत्पन्न करने की शक्ति प्रकट होती है।*

श्री अरिहन्त परमात्मा के आलम्बन से जो आत्मा निज आतम स्वरूप मे लीन हो जाती है, उसकी उपादान कारणता प्रकट होती है अर्थात् उसकी आत्मा क्रमशः परमात्मा बनती है।

बीज मे फल उत्पादन करने की शक्ति उपादान है, परन्तु वृष्टि आदि सामग्री का योग होने पर ही उसमे से अकुर प्रस्फुटित होते है और तत्पश्चात् क्रमशः फल रूपी कार्य सिद्ध होता है।

---

* उपादान आतम सही रे पुष्टालवन देव।
उपादान कारण पणे रे, प्रगट करे प्रभु सेव॥

(पू श्री देवचन्द्रजी म)

इस तरह मोक्ष रूपी कार्य का उपादान (बीज) आत्मा स्वय है। श्री अरिहन्त परमात्मा की भक्ति मे अकुर के रूप मे सम्यग् दर्शन गुण की प्राप्ति होती है, तत्पश्चात् ही क्रमश मोक्ष रूपी फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार किसी भी भव्यात्मा को धर्म-प्रशसा रूपी बीज की प्राप्ति मे प्रारम्भ होकर क्रमश प्राप्त होने वाली मोक्ष-पद तक की प्रत्येक भूमिका श्री अरिहन्त परमात्मा के अनुग्रह के प्रति अनुगृहीत है। उनके आलम्बन के बिना कोई भी भव्य आत्मा स्वय अथवा अन्य किसी निमित्त के आलम्बन से मोक्षदायी आध्यात्मिक भूमिकाओ मे न तो आगे बढ सकती है और न अपने पूर्ण शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकती है।*

श्री अरिहन्त परमात्मा ही एक ऐसे अद्वितीय विश्वेश्वर हैं कि जिनके प्रकृष्ट शुद्ध भाव का—उत्कृष्ट भावदया का अखण्ड प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर अपना वर्चस्व धारण करता है।

इस भावना मे भव विनाशक शक्ति है। श्री अरिहन्त की भाव सहित भक्ति से यह शक्ति प्रकट होती है। अर्थात् जीव को भव सागर से पार करने मे केवल अरिहन्त परमात्मा ही महान् जलयान के रूप मे माने जाते हैं और जिससे मुमुक्षु गण केवल उनकी शरण पाकर स्वय को कृतकृत्य अनुभव करते हैं।

पूर्णानन्दमय, पूर्ण गुणवान श्री वीतराग अरिहन्त परमात्मा की अद्भुत महिमा, उनके साथ अपना सम्बन्ध, सम्पूर्ण जीव लोक के प्रति उनके असख्य उपकार, उनकी स्तुति-वन्दना के रूप मे भक्ति का फल आदि विषयो पर पावन प्रकाश डालने वाली 'वीतराग स्तोत्र' एक प्रेरक कृति है।

उसका एकाग्रता से किया गया गान, अर्थ चिन्तन, भाव-भक्ति हमारे हृदय मे श्री अरिहन्त परमात्मा की सच्ची-पूर्ण प्रीति एव भक्ति जागृत करती है।

जिन-भक्ति जनित उस कृति के प्रथम प्रकाश पर अब हम अपना ध्यान केन्द्रित करें।

---

* अस्य अभयस्य, भगवद्भ्य एव न स्वतो नाप्यन्येभ्य सिद्धिः इति।
'अभयदयाण' पद की टीका एव पजिका —'ललितविस्तरा'

उत्कृष्ट जिन-भक्ति-प्रकाशक



वीतराग स्तोत्र, प्रथम प्रकाश



जिनकी महिमा का पार नही है, जिनमे सर्व भव-भय-हर सामर्थ्य है, समस्त इच्छाओ को उत्कृष्ट विश्व-प्रेम मे रूपान्तरित करने की अकल्पनीय शक्ति है, उन श्री वीतराग अरिहन्त परमात्मा की उत्कृष्ट भक्ति से ओत-प्रोत वीतराग-स्तोत्र के प्रथम प्रकाश मे अव हम अपनी समग्रता को भावपूर्वक स्नान करायें।

य परात्मा परज्योति, परमः परमेष्ठिनाम्।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तादामनन्ति यम् ॥१॥

अर्थ—जो समस्त ससारी जीवो से श्रेष्ठ, केवल ज्ञानी एव परमेष्ठियो मे प्रधान हैं, जिन्हे पण्डितगण अज्ञान के पार-गामी एव सूर्य के समान पूर्ण ज्योतिर्मय उद्योत करने वाला मानते हैं।(१)

सर्वे येनोदमूल्यन्त, समूला क्लेशपादपा।
मूर्ध्ना यस्मै नमस्यन्ति, सुरासुरनरेश्वराः ॥२॥

अर्थ—जिन्होने राग-द्वेष आदि समस्त क्लेश-वृक्षो को मूल से उखाड़ डाला है, जिन्हे सुर, असुर, मनुष्य एव उनके अधिपति शीश झुकाकर प्रणाम करते हैं—अर्थात् जो तीन लोको के प्राणियो के लिये वन्दनीय पूजनीय है।(२)

प्रावर्त्तन्त यतो विद्या, पुरुषार्थ प्रसाधिका.।
यस्य ज्ञान भवद्-भावि-भूत-भावावभासकृत् ॥३॥

अर्थ—जिनके द्वारा पुरुषार्थ को सिद्ध करने वाली शब्द आदि विद्यायें प्रवर्तित हुई हैं, जिनका ज्ञान वर्तमान, भावि एव भूत—तीनो कालो के समस्त भावो को प्रकट करने वाला है, प्रकाशित करने वाला है।(३)

यस्मिन् विज्ञानमानन्द, ब्रह्म चैकात्मतागतम् ।
स श्रद्धेय', स च ध्येय., प्रपद्ये शरण च तम् ॥४॥

अर्थ—जिनमे विज्ञान—केवल ज्ञान, आनन्द-अव्याबाध सुख एव ब्रह्म-परमपद, ये तीनो एकीकृत हैं, एक रूप हैं, वे (परमात्मा ही) श्रद्धेय है एवं ध्येय हैं। मै उनकी शरण अगीकार करता हूँ ।(४)

तेन स्या नाथवास्तस्मै, स्पृहयेय समाहित ।
तत कृतार्थो भूयास, भवेय तस्य किंकरः ॥५॥

अर्थ—उन परमात्मा के कारण मैं सनाथ हूँ उन परमात्मा को मैं समाहित—एक मन वाला बनकर चाहता हूँ, मैं उनसे कृतार्थ हूँ और मैं उनका सेवक हूँ ।(५)

तत्र स्तोत्रेण कुर्यां च पवित्रा स्वा सरस्वतीम् ।
इद हि भवकान्तारे, जन्मिना जन्मनः फलम् ॥६॥

अर्थ—उन परमात्मा की स्तुति—गुणगान करके मैं अपनी वाणी को पवित्र करता हूँ क्योकि इस भव अटवी मे प्राणियो के जन्म का यही एक फल है ।(६)

क्वाह पशोरपि पशुर्वीतरागस्तवः क्व च ।
उत्तितीर्षु रण्यानि, पद्भ्या पङ्गुरिवास्म्यत ॥७॥

अर्थ—पशु मे भी पशु जैसा मैं कहाँ ? और बृहस्पति से भी असम्भव ऐसी वीतराग की स्तुति कहाँ ? इसलिये दो पाँवो से महान् अटवी को पार करने के अभिलाषी पगु व्यक्ति के समान मैं हूँ, अर्थात् मेरा यह आचरण अत्यन्त साहसी होने के कारण हास्यास्पद है । (७)

तथापि श्रद्धामुग्धोऽह, नोपालभ्य स्खलन्नपि ।
विशृंखलापि वाग्वृत्तिः, श्रद्दधानस्य शोभते ॥८॥

अर्थ—तो भी श्रद्धा से मुग्ध बना मैं परमात्मा की स्तुति करने मे स्खलना होने पर भी उपालम्भ का पात्र नही हूँ, क्योकि श्रद्धालु व्यक्ति की सम्बन्ध-विहीन वाक्य रचना भी सुशोभित लगती है।(८)

त्रिलोकीनाथ, विश्व-चिन्तामणि, जगद्गुरु, परम करुणा-निधान, शरण दाता श्री अरिहन्त परमात्मा की सर्वोत्तम गुण-गरिमा एव उनकी शरण मे आये हुए भक्त के भक्ति-सिक्त हृदय की प्रार्थना (भावना) का कैसा कार्य-कारण भाव है, उसका भाव-वाही सुन्दर वर्णन इस स्तोत्र मे हुआ है जिसे हम देखें।

शरण्य परमात्मा की गुण गरिमा :—	शरणागत भक्त की मनोभावना :—
य: परमात्मा परज्योति परम परमेष्ठिनाम्	स श्रद्धेय: स च ध्येय
जो परमात्मा, पर ज्योति और परमेष्ठियो मे प्रधान हैं।	वे श्रद्धेय हैं और ध्येय हैं।
यम् तमस परस्ताद् आदित्यवर्णं आमनन्ति	तम् च प्रपद्य' शरण
जिन्हे विद्वान् लोग अज्ञान से परे और सूर्य के समान तेजस्वी मानते हैं।	उनकी शरण मैं अगीकार करता हूँ।
येन सर्वे क्लेशपादपा: समूला उदमूल्यन्त	तेन स्या नाथवान्
जिन्होने राग आदि क्लेश-वृक्षो को समूल उखाड डाला है।	उनके कारण मैं सनाथ हूँ।
यस्मै नमस्यन्ति सुरासुर नरेश्वरा·	तस्मै स्पृहयेय समाहित·
जिन्हे सुर, असुर, मनुष्य एव उनके अधिपति शीश झुकाकर नमस्कार करते है।	उन्हें समाहित मन वाला मैं चाहता हूँ।

यत· पुरुषार्थ प्रसाधिका:
विद्या प्रावर्तन्त

तत· कृतार्थो भूयासं

जिनके द्वारा पुरुषार्थ सिद्ध करने वाली विद्या प्रवर्तित हुई है।

उनसे मैं कृतार्थ होता हूँ।

यस्य ज्ञान भवद् भावि-
भूत-भावावभासकृत्।

तस्य किंकर: भवेयम्

जिनका ज्ञान वर्तमान, भावि और भूतकाल के भावो को प्रकट करने वाला है।

उनका मैं सेवक हूँ।

यस्मिन् विज्ञानमानन्द
ब्रह्मचैकात्मता गतम्

तत्र स्तोत्रेण कुर्या च
पवित्रा स्वा सरस्वतीम्

जिनमे विज्ञान (केवलज्ञान) आनन्द एव ब्रह्म-परमपद—ये तीनो एक रूप हैं।

उनकी स्तुति करके मैं अपनी वाणी को पावन करता हूँ।

विवरण —कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य रचित वीतराग स्तोत्र के इस प्रथम प्रकाश मे अनेक रहस्य सागर के तल मे छिपे रत्नो की तरह छिपे हुए है, वे साधक को आत्म-साधना मे यथार्थ मार्ग-दर्शन एव गतिशीलता प्रदान करने वाले हैं।

इस महाप्रभावशाली स्तोत्र मे—

समस्त गुणो मे चरमोत्कर्ष पर पहुँचे हुए श्री वीतराग अरिहन्त परमात्मा के अनुपम गुणों की स्तुति करके परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का स्पष्ट दिग्दर्शन कराया गया है, अर्थात् त्रिभुवनपति श्री अरिहन्त परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का हृदयस्पर्शी निरूपण किया गया है। उसके साथ ही साथ परमात्म दर्शन के ठोस उपाय भी स्पष्ट किये गये हैं।

प्रथम साढे तीन छन्दो (गाथा) मे उल्लिखित गुणो द्वारा श्री वीतराग अरिहन्त परमात्मा के असाधारण गुणो की वास्तविक स्तुति की गई है और

उन गुणो को पीछे के दो छन्दो में वर्णित श्रद्धेय-ध्येय आदि के कारण के रूप मे बताकर प्रभु की अकल्पनीय, अचिन्त्य-शक्ति की महिमा प्रदर्शित की गई है। वह निम्नलिखित है :—

(१) जो परमात्मा है, अर्थात् जो समस्त ससारी जीवात्माओ की अपेक्षा श्रेष्ठ है, क्योकि उन्होंने अपना शुद्धात्मस्वरूप स्वय के बल से पूर्णत प्रकट किया है। जो केवल ज्ञान की ज्योति स्वरूप है और परमपद मे स्थित पुण्यशाली परमेष्ठि भगवतो मे प्रधान हैं, प्रथम हैं, वे ही श्री वीतराग परमात्मा श्रद्धेय हैं, ध्यान करने योग्य हैं।

श्रद्धा श्रेष्ठतम तत्त्व के प्रति ही की जा सकती है, उसे श्रेष्ठतम तत्त्व मे ही प्रतिष्ठित किया जा सकता है। 'परमात्मा' यह शब्द ही उनके श्रेष्ठतम आत्म-तत्त्व की प्रतीति कराता है।

इस प्रकार का श्रेष्ठतम आत्म-तत्त्व श्रेष्ठ ज्योति-स्वरूप है और विश्व कल्याणकारी पच परमेष्ठि भगवतो मे भी श्रेष्ठ है, प्रथम है, इसलिये ही वह ध्यान करने योग्य है जो ध्याता को ध्येय-स्वरूप बना सकता है, अर्थात् ध्याता ध्यान के माध्यम से ध्येयाकार को प्राप्त कर सकता है।

(२) जो अज्ञान रूपी अन्धकार से परे सूर्य सदृश केवलज्ञानमय ज्योति प्रकाशित करने वाले हैं, ऐसे परमात्मा की शरण मैं स्वीकार करता हूँ।

उसका कारण यह है कि अज्ञान रूपी अधकार मे घुटती आत्मा को सच्चे मार्ग पर चलने के लिये ज्ञान रूपी प्रकाश का आश्रय अवश्य लेना ही पडता है। जो परमात्मा पूर्ण ज्ञान ज्योति स्वरूप हैं उनका आश्रय लेने वाले व्यक्ति का अज्ञान रूपी अधकार अवश्य नष्ट होता है और उसका जीवन स्वरूप—बोध प्राप्त करके ज्योतिर्मय बन जाता है, इसलिये ही वे शरण लेने योग्य हैं।

शीत से ठिठुरता मनुष्य ताप का आश्रय लेता है जिससे उसकी शीत उड जाती है। इस बात मे कोई व्यक्ति शका नही करता, उसी प्रकार से केवलज्ञानमय श्री अरिहन्त परमात्मा की शरण अगीकार करने वाला पुण्यात्मा

अज्ञान रूपी अधकार से विमुक्त हो जाता है, यह बात भी शकातीत है। उसमें शर्त इतनी ही है कि अनन्य भाव से श्री अरिहन्त परमात्मा की शरण लेना।

(३) जिन्होने राग-द्वेप आदि समस्त प्रकार के क्लेश रूपी वृक्षो को समूल उखाड डाला है, ऐसे परमात्मा के कारण मैं सनाथ हूँ, क्योंकि जिन्होंने राग-द्वेप का समूल उच्छेद कर दिया है, ऐसे परमात्मा के सान्निध्य मात्र मे भी राग द्वेप आदि आन्तरिक शत्रु आक्रमण करने मे समर्थ नही हो पाते।

जिस प्रकार सूर्य के ताप के समक्ष कोहरा नही ठहर सकता, उसी प्रकार से राग-द्वेप रहित श्री अरिहन्त परमात्मा के स्वाभाविक तेज के समक्ष राग-द्वेष नही ठहर सकते। इस अकाट्य नियम के अनुसार उनकी शरण मे आया हुआ प्राणी भी राग-द्वेष को परास्त करने मे सक्षम होता है।

कहा है कि 'योग-क्षेमकृन्नाथ।' नाथ उसे कहा जाता है जो हमे अप्राप्त की प्राप्ति कराये और क्षेम अर्थात् प्राप्त वस्तु की सुरक्षा कराये।

श्री अरिहन्त परमात्मा मे ये दोनो योग्यताएँ हैं, अतः उन्हे विश्व का नाथ कहा गया है और उनकी शरण मे आया व्यक्ति वास्तव मे स्वय को सनाथ अनुभव करता है।

चक्रवर्ती एव देवेन्द्र की शरण मे जाने से भी राग-द्वेष के आक्रमण को निष्फल करने का दुष्कर कार्य दुष्कर ही रहता है अर्थात् पूर्ण नही होता। वही दुष्कर कार्य श्री अरिहन्त परमात्मा को नाथ के रूप में स्वीकार करके उनका स्मरण करने से सरल हो जाता है, अर्थात् राग-द्वेष सर्वथा निष्क्रिय हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि वे अपने शरणागत को वास्तविक सनाथता बक्षीस करते हैं।

(४) जिन्हें सुरासुर नरेश्वर नमस्कार करते हैं अर्थात् जो त्रिभुवन द्वारा पूजनीय हैं, ऐसे परमात्मा की मैं एकाग्रचित्त होकर स्पृहा करता हूँ।

जो पूजनीय होते है वे पवित्र ही होते हैं और जो पवित्र और पूजनीय हो उनके सान्निध्य की सव इच्छा करते हैं। ऐसा अद्भुत आकर्षण इन दो गुणो मे विद्यमान रहता है।

(५) जिनके द्वारा धर्म आदि पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाली समस्त प्रकार की विद्याओ का प्रारम्भ हुआ है, उन परमात्मा को पाकर मैं कृतार्थ हुआ हूँ, क्योकि कृतार्थता की अनुभूति तब ही होती है कि जब आत्मा को अपनी अन्तिम कामना पूर्ण होती ज्ञात होती है।

बस, इसी प्रकार से सम्पूर्ण विद्या के प्रभव स्थान स्वरूप परमात्मा को पाकर वह कृतार्थता का अनुभव करता है, अर्थात् उसके समस्त कार्य पूर्ण होते है। सम्पूर्ण शुद्ध आत्म-स्वभाव प्राप्त करने के रूप मे उसकी मनोकामना पूर्ण होती है।

जिस मनुष्य को परमात्मा की पूर्ण कृपा से शुद्ध निजात्म-स्वरूप को प्राप्त करने की आध्यात्मिक विद्या प्राप्त हो जाती है, वह साधक पूर्णता की पग-डडी का पथिक बनता है। तत्पश्चात् उसे शुद्ध आत्म-स्वरूप को पूर्णतया प्रकट करने के साध्य की सिद्धि अत्यन्त समीपवर्ती प्रतीत होती है, जिससे मानो उसे साध्य की सिद्धि प्राप्त हो गई हो, उस प्रकार से वह स्वय को कृतार्थ मानता है, महान् भाग्यशाली समझता है।

दीर्घकालीन प्रवास के अन्त मे जब मनुष्य अपने गांव की सीमा मे प्रविष्ट होता है उस समय उसके नेत्रो एव अन्त करण मे जो कृतार्थता छाती है, उससे भी अधिक कृतार्थता का एक साधक को अपना साध्य निकटतर प्रतीत होने पर अनुभव होता है।

(६) जिनका ज्ञान त्रिकाल विषयक समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाला है, ऐसे परमात्मा का मैं दास हूँ।

दासता अधिक सम्पत्तिशाली-समृद्धिशाली व्यक्ति की की जाती है। परमात्मा अनन्त केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी के स्वामी है, अत उनकी दासता स्वीकार करने से उनका कृपा-पात्र बना जा सकता है, जो (कृपा) दास की दरिद्रता नष्ट करके अनन्त केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी को समर्पित करता है।

स्वय की अल्पता का भान एव दु,ख, किसी अन्य की सहायता के बिना उसे दूर करने की अपनी असमर्थता का ज्ञान कराता है और वह अल्पता

अन्य अल्पात्मा की दासता स्वीकार करने से दूर होने की सम्भावना नही है, परन्तु परिपूर्ण ज्ञानी परमात्मा की दासता ही उसे दूर कर सकती है, ऐसा दृढ निश्चय कराता है अत. साधक मनुष्य श्री अरिहन्त परमात्मा का दास बने विना रह नही सकता। श्री अरिहन्त परमात्मा को ही सर्वस्व मानकर जीवन जीने मे ही वह अपना जीवन सार्थक मानता है।

(७) जिस परमात्मा मे विज्ञान (केवलज्ञान), आनन्द एव ब्रह्म एक-रूप हो गये हैं. उस परमात्मा के गुण-गान इस स्तोत्र द्वारा करके मैं अपनी वाणी को पवित्र करता हूँ।

विज्ञान शब्द अनन्त ज्ञान, आनन्द शब्द अव्यावाध सुख और ब्रह्म शब्द स्वरूप-दर्शन एव स्वरूप-अवस्थान रूपी अनन्त दर्शन एव अनन्त चारित्र का द्योतक है।

इस प्रकार के अनन्त ज्ञान आदि चतुष्टय के स्वामी परमात्मा की स्तुति करने से वाणी पवित्र होती ही है। पूर्ण पुरुष की पूर्णता का गान स्व आत्मा की अपूर्णता का ध्यान दिलाने मे अनन्य सहायक होता है और स्व आत्मा को पूर्णता प्राप्त करने की पावन प्रेरणा का दान करता है।

इस प्रकार के परम-गुणी, परम कृपालु परमात्मा सूर्य की तरह अपने स्वभाव से ही समग्र विश्व पर अपना परम पावन प्रकाश प्रसारित करके समस्त प्राणियो को पावन वनाने का स्वाभाविक सामर्थ्य रखते हैं।

मधुरता का दान करने के लिये शर्करा को कुछ भी करना नही पडता। वह मधुरता तो उसके कण-कण मे व्याप्त है, परन्तु जिस मनुष्य को उस मधुरता की आवश्यकता होती है, वह उक्त शर्करा को हाथ मे लेकर मुँह मे डालता है तव उसे मधुरता का अनुभव होता ही है, उसी प्रकार से करुणा निधान श्री अरिहन्त परमात्मा को प्राणी को पूर्ण एव पावन वनाने के लिये कुछ भी करना नही पडता। जिस व्यक्ति को वैचारिक अपवित्रता खलती है, स्वार्थ मस्तक-शूल की तरह वेदना पहुँचाता है, पाप आँख मे गिरे कण की तरह चुभता है, वैसा मुमुक्षु भाव पूर्वक श्री अरिहन्त परमात्मा की शरण ग्रहण करके उनकी पावन करने वाली प्रकृति का अनुभव कर सकता है।

परन्तु जिस प्रकार दिन भर सूर्य का प्रकाश प्रसारित होने पर भी प्रज्ञाचक्षु (अन्धा) व्यक्ति अथवा तहखाने मे बैठे व्यक्ति को अथवा दिन मे देख सकने मे असमर्थ उलूक आदि पक्षियो को उस ज्योति का लाभ नही मिलता, उसी प्रकार से अभव्य, दुर्भव्य अथवा मिथ्यामति वासित प्राणी को भी परमात्मा के परम पवित्र प्रकाश की प्रतीति नही होती, जिससे उसकी आत्मा पवित्र हो नही पाती, वह कोई परमात्मा के सामर्थ्य का दोष नही है, परन्तु उस प्राणी की पात्रता का ही दोष है।

अत. मुमुक्षु, सुज्ञ साधक को अपने मन-मन्दिर को पावन करने के लिये हिंसा, विषय-कषाय आदि दोषो का त्याग करके अहिंसा, सयम, तप आदि अनुष्ठानो के द्वारा एव परमात्मा का नाम-स्मरण, जाप, गुण-कीर्तन, ध्यान आदि सुकृत के निरन्तर सेवन से निज अन्तःस्तल को पवित्रतम बनाना चाहिये।

यदि बर्तन का पैंदा स्वच्छ नही होगा तो उसमें जो उत्तम प्रवाही पदार्थ भरा जायेगा वह भी अशुद्ध हो जायेगा, अत पहले बर्तन स्वच्छ करना चाहिये और तत्पश्चात् उसमे घी, दूध आदि पदार्थ डालने चाहिये।

इसी प्रकार से अन्त करण कषायो की कालिमा से युक्त होता है तब तक वहाँ परमात्मा का पावन प्रकाश अपावन को पावन करने के अपने स्वभाव मे यथार्थ रूप से सफल नही हो सकता।

नियम है कि जिस पदार्थ की सतह शुद्ध, स्निग्ध एव समतल होती है वह पदार्थ प्रकाश की किरणो को अधिकाधिक आकृष्ट कर सकता है एव उनका सचय कर सकता है। यह नियम अन्त करण की शुद्धि, दयार्द्रता एव समता-वृत्ति पर भी प्रभावी होता है।

इस प्रकार के अन्त करण मे अन्तरतम आत्मा का परमात्म-प्रकाश निश्चित रूप से फैलकर स्व सत्ता को स्थापित करता है, जिससे परमात्म-दर्शन एव मिलन की उत्कट अभिलाषा परिपूर्ण होती है।

इस प्रथम प्रकाश मे श्री वीतराग अरिहन्त परमात्मा का स्वरूप प्रदर्शित करने के साथ परमात्म-दर्शन एव मिलन के उपायो का भी स्पष्ट निर्देश है, वह इस प्रकार है —

"स श्रद्धेयः" अर्थात् वही श्रद्धेय है। इस वाक्य से प्रीति एव भक्ति दोनो ग्रहण होती हैं।

जो सचमुच श्रद्धा करने योग्य होता है उस पर ही प्रीति और भक्ति उत्पन्न होती है। माता का वात्सल्य बालक मे माता के प्रति पूर्ण श्रद्धा जागृत करता है, उसी प्रकार से भगवान का अपार वात्सल्य, करुणा, भाव-दया भक्त को भगवानमय बनाते हैं।

परमात्मा की अखण्ड प्रीति एव निष्काम भक्ति परमात्म-दर्शन के प्रधान साधन हैं।

और "स च ध्येयः" अर्थात् वही ध्यान करने योग्य है, यह पद परमात्मा का सभेद और अभेद प्रणिधान करने की सूचना देता है और वह मुख्यत. वचन एव असग अनुष्ठान का द्योतक है।

सर्व गुण सम्पन्न परमात्मा को ध्येय बना कर ही ध्याता ध्येय स्वरूप बन सकता है, यह नियम त्रिकालाबाधित है।

स्वभाव से परिपूर्ण आत्मा को अपूर्ण का ध्यान सब प्रकार से हानिप्रद होता है।

उसके पश्चात् के पदो द्वारा श्रद्धा एव ध्यान को अर्थात् उपर्युक्त प्रीति, भक्ति, वचन एव असग अनुष्ठान को पुष्ट करने वाले साधनो का निर्देश किया गया है।

(१) शरण स्वीकार करके सर्व-समर्पण-भाव प्रदर्शित किया गया है।

उसी के शरण मे जाया जाता है, जो शरणागत की पूर्णरूपेण सुरक्षा करने मे समर्थ हो।

सुरक्षा वही कर सकता है जो सर्वथा सुरक्षित होता है, अपनी रक्षा के लिये किसी सासारिक अथवा दैवी सहायता की तनिक भी अपेक्षा रखने वाला न हो।

इस प्रकार की योग्यता वाले श्री अरिहन्त परमात्मा की शरण मे जाने वाले व्यक्ति के मन मे सदा एक ही भावना रहती है कि यह परमात्मा सुकृतो के सागर हैं, अनन्त गुण-गण के महासागर हैं।

इस प्रकार की भावना साधक को परमात्मा के समस्त सुकृतो की भूरि-भूरि अनुमोदना एव स्व-दुष्कृतो की तीव्रतर निंदा गर्हा करते रहने की सद्बुद्धि प्रदान करती है।

(२) 'नाथवान' शब्द सनाथता एव स्वामी-सेवक भाव का द्योतक है। सच्चा 'स्वामी-सेवक-भाव' सेवक को सेव्य स्वरूप बनाता ही है।

जिनकी परम विशुद्ध आत्मा पर देश, काल अथवा कर्म किसी का स्वामित्व नही है, उन श्री अरिहन्त परमात्मा को स्वामी के रूप मे स्वीकार कर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करने से ही, आत्मा मे देश, काल एव कर्म के त्रिभुज को भेदने का सामर्थ्य प्रकट होता है।

अनेक भक्त-कवियो ने जिनकी 'समरथ साहिब' के रूप मे उपासना की है, उन परमात्मा को स्वामी बनाना ही देव-दुर्लभ मानव भव मे करने योग्य श्रेष्ठ सुकृत है।

(३) 'मैं उनकी स्पृहा, रटन करता हूँ', यह वाक्य परमात्मा के दर्शन एव मिलन की तीव्र अभिलाषा का द्योतक है।

यह अभिलाषा—कामना किसी लौकिक पदार्थ की कामना नही है, परन्तु समस्त कामनाओ से सर्वथा मुक्त परमात्मा के दर्शन एव मिलन की कामना स्वरूप होकर सब तरह से स्व-पर कल्याणकारी है।

जो व्यक्ति परमात्मा का स्मरण, मनन, भजन, ध्यान करता है वह सर्वथा कृतकृत्यता का अनुभव करता है।

हमारे जीवन की केन्द्रीय अभिलाषा क्या है ? परमात्मा को प्राप्त करने की है अथवा जन्म-मरणकारी सामग्री प्राप्त करने की है ?

प्रत्येक विवेकी मनुष्य को यह प्रश्न स्वय को पूछना चाहिये और सम्यग्दृष्टि देव भी जिस जन्म की अभिलाषा करते हैं उस धर्म से युक्त मानव-भव का परमात्मा की प्रीति एव भक्ति के द्वारा श्रेष्ठ मूल्याकन करना चाहिये।

(४) 'उनसे मैं कृतार्थता का अनुभव करता हूँ" यह वाक्य परमात्म-दर्शन एव मिलन के पश्चात् की साधक की अनुभूति का द्योतक है। इस वाक्य मे अमृत-भाव-सिक्त मन का प्रकट उल्लास है।

सरिता को कृतार्थता का अनुभव कब होता है ? जब वह सागर मे सर्वथा विलीन हो जाती है तब।

जब इस प्रकार की कृतार्थता का अनुभव होता है तब 'कृतार्थोऽहं' जैसे हृदय-स्पर्शी शब्द साधक के हृदय मे साकार होते हैं।

इस प्रकार का अनुभव तब होता है जब साधक साध्यमय बन जाता है।

साधक परमात्मामय तब बन सकता है जब त्रिलोक में अन्य कुछ भी साधना करने योग्य नही लगता, परन्तु एक आत्मा ही सचमुच साध्य समझी जाती है।

इस प्रकार की साधना से जीवन मे कृतार्थता का सूर्य उगना स्वाभाविक है।

(५) "मैं उनका दास हूँ" यह वाक्य स्व जीवन जिनसे कृतार्थ हुआ है, उन परमात्मा का दास बनने मे ही जीवन को धन्य मानने वाले साधक के अपूर्व समर्पण-भाव, प्रीति एव भक्ति बताने वाला है, भक्ति-भाव के शिखर स्वरूप अहोभाव का द्योतक है।

जिस व्यक्ति को चार गति के दुःख सचमुच परेशान करते हैं, वह व्यक्ति वैद्यराज की शरण मे जाने वाले रोगी की तरह परमात्मा की शरण मे जाता है, उनका दासत्व स्वीकार करता है, उनका परम सेवक बन कर जीवन मे गौरव अनुभव करता है।

(६) "उनके गुण-गान करने मे मैं अपनी वाणी को पवित्र बनाता हूँ" यह वाक्य परमात्मा के साथ एक-रूप बने साधक की अवधूत दशा का द्योतक है; अर्थात् परमात्मा के दास बने साधक को अब परमात्मा की स्तुति, उनका स्मरण, उनके ही नाम का जाप, उनका ही ध्यान और उनके ही गुणो की अनुप्रेक्षा करने के अतिरिक्त अन्य किसी भी विषय मे आनन्द अथवा रस नही आता।

"झीलया जे गगा-जले, ते छिल्लर जल नवि पेसे रे,
जे मालती फूले मोहिया, ते बावल जई नवि बेसे रे।"

उपर्युक्त स्तवन-पक्तियो का भाव उक्त वाक्य मे है।

इस प्रकार इस वीतराग स्तोत्र के प्रथम प्रकाश मे प्रीति, भक्ति, वचन एव असग अनुष्ठानो के आराधना के सकेत के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करने की अद्भुत कला स्पष्ट की गई है।

प्रस्तुत पुस्तक मे भी उक्त चार अनुष्ठानो को लक्ष्य मे रखकर भक्ति योग की साधना का मार्ग प्रदर्शित किया गया है जो साधक के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

परमात्मा का विशद स्वरूप और उनका विश्वोपकार

परमात्मा के दो स्वरूप है। (१) साकार (२) निराकार।

श्री अरिहन्त साकार परमात्मा हैं।

श्री सिद्ध निराकार परमात्मा हैं।

परमात्मा के दोनो स्वरूप शुद्ध निज आत्म-स्वरूप की साधना मे अनन्य आलम्बन हैं। आत्मा के सत्य, शुद्ध, चिदानदमय स्वरूप की यथार्थ पहचान करा कर उसके प्रति श्रद्धा, रुचि उत्पन्न करके और उसमे ही रमण करा कर कर्म-जनित समस्त अशुद्धियो को दूर करने वाले हैं।

अत उन्हे पारसमणि से भी श्रेष्ठ माना है क्योंकि पारसमणि लोहे को स्वर्ण बनाती है, परन्तु वह लोहे को स्वय के समान पारसमणि नही बनाती। जबकि ये परमात्मा तो अपने अनन्य भक्त को स्व-तुल्य बनाते हैं, शिव-पद का अधिकारी बनाते हैं, अनन्त अव्याबाध शिव-सुख का भोक्ता बनाते है।

प्राथमिक स्तर के साधको के लिये साकार अरिहन्त परमात्मा का आलबन उपकारक है।

जिस व्यक्ति को जिस विषय की साधना मे दक्षता प्राप्त करनी हो, उस व्यक्ति को उस विषय की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करनी ही पडती है।

भूतल से ऊपर की मजिल पर पहुँचने के लिये सीढी का आलबन लेना ही पडता है, उसी प्रकार मे सर्वोच्च कक्षा पर पहुँचने के लिये प्रारम्भ साकार भक्ति से करना ही पडता है।

साधना का यह क्रम नैसर्गिक है, अत उसका अपलाप करने वाला व्यक्ति आत्म-विकास मे अग्रसर होने के बदले पीछे की ओर ढकेला जाता है।

शब्दातीत कक्षा पर पहुँचने के लिये प्रारम्भ मे शब्द का आश्रय लेना पडता है, उसी प्रकार से परमात्मा के निराकार स्वरूप तक पहुँचने के लिये, उसका अनुभव करने के लिये साकार परमात्म-स्वरूप की उपासना करनी पडती है।

उस उपासना के अनेक प्रकार हैं। उनमे मुख्य चार प्रकार हैं, जिन्हें जैन परिभाषा मे 'चार निक्षेप' कहा जाता है।

प्रत्येक वस्तु के चार निक्षेप होते हैं।

निक्षेप शब्द वस्तु के प्रकार अथवा स्वरूप का उद्बोधक है।

इन चारो निक्षेपो के स्वरूप को समझ लेने से परमात्मा के विराट् एव विशद स्वरूप का तथा उनके द्वारा समस्त विश्व पर होने वाले अगणित उपकारो का हमे अनुमान हो सकेगा, जिससे परमात्मा के प्रति जो भक्ति-भावना अपने हृदय मे विद्यमान है वह अधिक सुदृढ होगी और श्री अरिहन्त परमात्मा ही हमारे लिये अनन्य शरण-योग्य हैं यह निष्ठा अस्थि मज्जावत् बनी रहेगी।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज ने 'सकलार्हत स्तोत्र' के एक श्लोक मे श्री अरिहन्त परमात्मा के विश्वोपकार की प्रशसा मे फरमाया है—

नामाकृति द्रव्यभावै· पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे-काले च सर्वस्मिन्नर्हत· समुपास्महे ॥२॥

अर्थ —जो तीर्थंकर परमात्मा अपने नाम, आकृति (मूर्ति), द्रव्य एव भाव स्वरूप अवस्था द्वारा समस्त क्षेत्रो के, समस्त कालो के समस्त प्राणियो को पवित्र करते हैं, उन परमात्मा की हम उपासना करते हैं।

अष्ट महाप्रातिहार्ययुक्त समवसरण मे विराजमान श्री तीर्थंकर परमात्मा अपनी पैंतीस गुणो से युक्त निर्मल वाणी से जिस प्रकार प्राणियो के कर्म-मल को धोकर उन्हें पवित्र करते हैं, उसी प्रकार से उन परमात्मा का नाम, उनकी मूर्ति और उनकी पूर्व-उत्तर अवस्था रूप द्रव्य निक्षेप भी विश्व के प्राणियो को शुभ एव शुद्ध भाव की उत्पत्ति मे परम आलम्बन रूप बनकर निर्मल बनाते है।

जिस काल और जिस क्षेत्र मे श्री तीर्थंकर परमात्मा साक्षात् सदेह विचरते हैं तब और समवसरण मे विराजमान होकर भाव तीर्थंकर के रूप मे धर्म देशना प्रदान करते हैं, तब उनके द्वारा भव्य प्राणियो पर जिस प्रकार के अपार उपकार होते है, उसी प्रकार से परमात्मा के नाम, स्थापना एव द्रव्य निक्षेप भी विश्व के प्राणियो के लिये सदा उपकारक बनते हैं।

धर्म देशना के अतिरिक्त के समय मे समीपस्थ प्राणियो का एव दूर देशो मे स्थित भव्य जीवो का परमात्मा के नाम आदि निक्षेप ही परम आलम्बन-स्वरूप वनकर उपकार करते हैं।

स्वय श्री अरिहन्त परमात्मा के वरद हस्त से दीक्षित स्वय उन्ही के शिष्य-मुनिगण अपने जीवन के अन्त समय मे अनशन करते हैं तब वे प्रभु के नाम आदि निक्षेपाओ के आलम्बन के द्वारा ही समस्त कर्म-बधनो से मुक्त होकर चार गति रूप ससार को छोडकर पाँचवी गति रूप मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

अत श्री अरिहन्त परमात्मा के नाम, मूर्ति एव द्रव्य अवस्था रूपी निक्षेप को श्री अरिहन्त स्वरूप मानकर उसकी अनन्य उपासना करने का विधान जैन आगम शास्त्रो मे स्थान-स्थान पर किया गया है।

श्री अरिहन्त परमात्मा के असाधारण उपकार

श्री अरिहन्त परमात्मा, जिस प्रकार उपदेशो के द्वारा मोक्ष एव मोक्ष-मार्ग के दाता हैं, उसी प्रकार से वे स्वय भी मोक्षमार्ग स्वरूप हैं।*

जिस प्रकार उनके उपदेश और उनकी आज्ञा का पालन करने से भव्य जीवो को मोक्ष मिलता है, उसी प्रकार उनके नाम-स्मरण तथा दर्शन मात्र से भी भव्य जीवो को मोक्ष और मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति होती है।

प्रभु-मूर्ति के दर्शन से हृदय मे जो शान्त भाव प्रकट होता है, वह दर्शक को आर्त-ध्यान और रौद्र-ध्यान से मुक्त करता है। प्रभु-मूर्ति के दर्शन से प्राप्त अप्रमत्त भाव जीव को वास्तविक जागृति की ओर प्रेरित करता है। उच्चतम कोटि की अहिसा का स्पष्ट दर्शन प्रभु मूर्ति के दर्शन से होता है। विधि एव वहुमान-पूर्वक प्रतिष्ठित जिनेश्वर परमात्मा की मनहर मूर्ति के दर्शन से अमूर्त आत्म-स्वरूप को मूर्तिमन्त करने का भाव उत्पन्न होता है।

---

* मग्गो तद्दायारो, सय च मग्गोत्ति ते पुज्जा।
श्री विशेषावश्यक भाष्य-गाथा २९४८

श्री अरिहन्त परमात्मा की मूर्ति के समान उनका पवित्र नाम भी उतना ही उपकारक है। प्रभु-नाम के स्मरण का अचिंतनीय प्रभाव होने का विधान समस्त आस्तिक दर्शनकारो ने किया है।

श्री महावीर स्वामी परमात्मा का नाम लेने से जो भावना उत्पन्न होती है, वह भावना गोशाला का नाम लेने से हमारे हृदय को स्पर्श नही करती, उसका कारण नाम एव नामी के मध्य स्थित कथचित् अभेद है।

नाम-स्मरण नामी के साथ प्रगाढ सम्बन्ध स्थापित करके अनामी बनाता है, ख्याति की कामना से मुक्त करने का महान् कार्य करता है।

श्री अरिहन्त परमात्मा की ऐसी एक भी अवस्था नही है कि जिसका स्मरण, चिन्तन अथवा ध्यान आदि भव्य जीवो को मोक्ष एव मोक्ष मार्ग की प्राप्ति न करा सके।

इस प्रकार मोक्ष-मार्ग के दाता और स्वय मार्ग-स्वरूप श्री अरिहन्त परमात्मा का उपकार अन्य समस्त उपकारो से उच्च स्तर का उपकार है।

किसी भी प्राणी को सम्यक्त्व की प्राप्ति श्री अरिहन्त परमात्मा के चार मे से किसी एक निक्षेप की भक्ति करने से ही होती है।

तात्पर्य यह है कि सम्यग्-दृष्टि के दान द्वारा जो उपकार श्री अरिहन्त परमात्मा करते हैं, वह समस्त उपकारियो के उपकार के योग से भी अधिक होता है; क्योकि सम्यक्त्व मुक्ति का बीज है और बीज का महत्त्व फल की अपेक्षा अधिक होता है यह लोकमान्य तथ्य है।

देह मे जो स्थान चक्षु का है, मोक्ष-मार्ग मे वह स्थान सम्यग्-दृष्टि का है। अत· उसके दाता श्री अरिहन्त हमे प्रियतम लगने ही चाहिये। यदि हमे वे प्रियतय न लगें तो समझना चाहिये कि हमारी भक्ति कच्ची है।

चार निक्षेपाओं का स्वरूप

किसी भी वस्तु के कम से कम चार निक्षेपा प्रसिद्ध हैं। (१) नाम, (२) आकृति, (३) द्रव्य [अतीत, अनागत गुणयुक्त वस्तु] (४) भाव [वर्तमान मे गुणयुक्त वस्तु]।

तात्पर्य यह है कि विश्व के जो कोई पदार्थ है वे समस्त नाम, आकृति. द्रव्य एवं भाव इन चारो से युक्त होते हैं।

नाम आदि चार निक्षेपायुक्त पदार्थ मे ही शब्द, अर्थ एव बुद्धि का परिणाम होता है।

घडे के उदाहरण से भी यह तथ्य स्पष्ट समझा जा सकता है।

घडे मे ये चार निक्षेप अथवा धर्म विद्यमान होने का बोध 'घडा' शब्द बोलते ही होने लगता है।

इस प्रकार विचार करते हुए यह बात स्पष्टतया समझी जा सकती है कि नाम, आकृति एव द्रव्य ये तीनो पदार्थ के ही पर्याय हैं, धर्म हैं। इस लिये यह भाव के अगभूत ही है और इस कारण से नाम आदि भी भाव की तरह विशिष्ट अर्थ-क्रिया के साधक बन जाते हैं।

(१) नाम-निक्षेप–पदार्थ का स्वय का नाम।
उदाहरणार्थ–घडा शब्द।

(२) स्थापना निक्षेप–पदार्थ का स्वय का आकार।
उदाहरणार्थ-घडे का आकार।

(३) द्रव्य निक्षेप–पदार्थ का मूल कारण।
उदाहरणार्थ-घडे मे मूल कारण मिट्टी।

(४) भाव निक्षेप-कार्ययुक्त पदार्थ।

उदाहरणार्थ—जल से भरा हुआ घडा

इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ के ये चार स्वरूप होते हैं और इन चारों स्व पो के द्वारा विश्व के प्राणी उस पदार्थ को अपने उपयोग मे लेकर इष्ट कार्य की सिद्धि करते हैं।

विश्व के सामान्य व्यावहारिक जीवन मे जिस प्रकार पदार्थ एव उसके नाम आदि स्वरूप को अभेद के रूप मे मानकर उसके द्वारा व्यावहारिक कार्य पूर्ण किये जाते हैं, उसी प्रकार से आध्यात्मिक जीवन मे प्रवेश एव प्रगति करने के लिए आध्यात्मिक तत्त्व एव उसके नाम आदि स्वरूप को अभेद के रूप मे मानकर उसकी शास्त्रोक्त विधि के अनुसार यदि उपासना की जाये तो आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर चलने और अग्रसर होने मे साधक को अत्यन्त सरलता होती है।

भक्तियोग एक ऐसा योग है जिसमे परमात्मा विषयक सच्ची खोज मे भक्तात्मा एकाकार हो जाता है।

भक्ति को सघन करने के लिए परमानन्दमय परमात्मा को अपना आत्मेश्वर बनाकर उनके साथ गुप्त सगोष्ठी करने मे, तन्मयता अनुभव करने मे, तदाकार वृत्ति मे चित्त को ढालने मे, उनके नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीनो निक्षेप भी अनन्य उपकारी उनके चौथे भाव-निक्षेप के समान ही आदरणीय एव आराध्य हैं।

इन तीनो निक्षेपो को हृदय मे स्थान देने से, उन्हें हृदय मे स्थायी करने से समस्त प्रकार के कल्याण सिद्ध होते हैं, भाव निक्षेप स्वरूप श्री अरिहन्त परमात्मा का यथार्थ आदर होता है, और हृदय के भावोल्लास मे वृद्धि होती है।

श्री अरिहन्त परमात्मा विषयक भाव, भव-वृद्धि कारक अशुभ भावो एव अशुभ कर्मों का क्षय करते हैं।

अत स्व-पर के हितैषी को श्री अरिहन्त परमात्मा के समस्त निक्षेपों की उपासना अत्यन्त उपयोगी प्रतीत होती है।

परोपकार-व्यसनी श्री अरिहन्त परमात्मा के किसी भी निक्षेपा को आत्मसात् करना उनके असीम उपकारो को यथार्थ नमस्कार है। ऐसी एकान्त लाभदायक भक्ति मे अपनी समस्त शक्ति लगाने मे ही मानव-भव की सार्थकता है।

श्री अरिहन्त परमात्मा के चार प्रकार

(१) नाम जिन, (२) स्थापना जिन (३) द्रव्य जिन और (४) भाव जिन ये श्री अरिहन्त परमात्मा के चार प्रकार हैं।

(१) नाम जिन '—श्री जिनेश्वर परमात्मा का नाम। जिस प्रकार श्री वर्द्धमान स्वामी आदि विशेष नाम और अर्हं, अरिहत आदि सामान्य नाम।

(२) स्थापना जिन —श्री अरिहन्त परमात्मा की मूर्ति, चित्र तथा बुद्धिस्थ आकार तथा 'अरिहत' ऐसे अक्षर।

(३) द्रव्य जिन —श्री अरिहन्त परमात्मा के जीव, जिस प्रकार श्रेणिक महाराजा अथवा श्री अरिहन्त परमात्मा बनकर सिद्धि प्राप्त सिद्ध भगवत।

(४) भाव जिन —भाव जिन दो प्रकार से है (१) आगम से भाव जिन, (२) नो आगम से भाव जिन।

(१) आगम से भाव जिन ·—समवसरण स्थित श्री अरिहत परमात्मा के ध्यान मे उपयुक्त साधक।

(२) नो आगम से भाव जिन .—समवसरण स्थित श्री अरिहन्त परमात्मा।*

---

* चउहजिणा नाम-ठवण-दव्वभावजिणभेएण ॥५०॥
नामजिणा जिण नामा, ठवण जिणा पुण जिणिंदपडिमाओ।
दव्वजिणा जिणजीवा, भावजिणा समवसरणत्था ॥ ५१ ॥
—चैत्यवन्दन भाष्य · गाथा ५१

इस प्रकार ज्ञान एव आनन्द से परिपूर्ण, अनन्त गुणो के भण्डार परमात्मा अपने चारो स्वरूपो के द्वारा भव्य जीवो के लिये नित्य परम आलम्बन बनते हैं।

निराकार परमात्म-दर्शन का अधिकारी कौन ?

उपर्युक्त चार प्रकार से जो साधक साकार परमात्मा का दर्शन-मिलन प्राप्त कर सकता है, वही निरजन-निराकार परमात्मा के दर्शन का अधिकारी हो सकता है।

प्रत्येक साधक के लिये साधना मे यही क्रम उपयोगी होता है—यह बताने के लिये श्री नमस्कार महामत्र मे भी सर्वप्रथम साकार स्वरूप श्री अरिहन्त परमात्मा का निर्देश है और तत्पश्चात् निरजन-निराकार श्री सिद्ध परमात्मा का निर्देश किया गया है।

परमात्मा का तात्त्विक दर्शन एवं निश्चय रत्नत्रयी

वर्तमान काल मे अपने भरतक्षेत्र मे भाव-तीर्थंकर परमात्मा विद्यमान नही होते हुए भी उनके नाम आदि द्वारा उनके भाव-स्वरूप को अमुक अश मे अनुभव किया जा सकता है और यही प्रभु का 'तात्त्विक दर्शन' एव मिलन है।

शास्त्रो मे प्रभु के तात्त्विक दर्शन को 'सम्यग् दर्शन' एव प्रभु के तात्त्विक मिलन को 'सम्यक् चारित्र' कहते हैं और उन अद्भुत गुणो को प्राप्त करने की कला को 'सम्यग् ज्ञान' कहते हैं।

तात्त्विक रीति से (निश्चय नय से) परमात्म-स्वरूप का दर्शन आत्म-स्वरूप के दर्शन से ही होता है और परमात्म-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान आत्म-स्वरूप के यथार्थ ज्ञान के द्वारा ही होता है, तथा परमात्म-स्वरूप मे रमण-तारुप परमात्म-मिलन भी आत्म-स्वरूप मे रमण करने से ही होता है। इस प्रकार आत्मा एव परमात्मा के स्वरूप का अभेद है।

अत आत्म-तत्त्व में श्रद्धा एवं उसका दर्शन ही सम्यग् दर्शन है, आत्म-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ही सम्यग् ज्ञान है और उस स्वरूप मे रमण करना ही सम्यक् चारित्र है। इस प्रकार इसे निश्चय रत्नत्रयी कहते हैं।

तो सोचना यह है कि यह आत्मा कैसी महिमामयी है, अचिन्त्य शक्ति-सम्पन्न है।

आत्मा ही परम आराध्य है। इस त्रिकालावाध्य सत्य की उद्घोषणा करने वाले अन्य कोई नही हैं, परन्तु श्री अरिहन्त परमात्मा ही हैं। यह तथ्य जानने के पश्चात् हमारे रोम-रोम मे आत्मा की आराधना करने की भावना के भानु का प्रकाश व्याप्त हो जाना चाहिये, प्रसारित हो जाना चाहिये।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज योग-शास्त्र के चतुर्थ प्रकाश मे फरमाते हैं

आत्मानमात्मना वेत्ति मोहव्यागाद्य आत्मनि।
तदेव तस्य चारित्र, तज्ज्ञान तच्च दर्शनम् ॥

अर्थ —जो व्यक्ति मोह त्याग कर आत्मा के द्वारा आत्मा को आत्मा मे जानता है, वही उसका चारित्र है, वही ज्ञान है और वही दर्शन है।

तात्पर्य यह है कि आत्मा के द्वारा आत्मा को आत्मा मे देखना ही तत्त्व दृष्टि है। आत्मा के द्वारा आत्मा को आत्मा मे जानना तत्त्व-बोध है और आत्मा मे आत्मा के रूप मे जीना तत्त्व-जीवन है, तत्त्वजीवीपन है।

● मोह का त्याग करके इन तीन गुण-रत्नो को प्राप्त किया जा सकता है।

नाम आदि रूप से परमात्मा की उपस्थिति

श्री गणधर भगवतो ने 'जिनागमो' मे परमात्म-दर्शन की अद्भुत कला का विस्तृत वर्णन किया है। उसका तनिक रहस्य शास्त्र-मर्मज्ञ एवं तदनुरूप जीवनयापन करने वाले अनुभवी योगियो के प्रभावशाली वचनो के माध्यम से हम सोचें —

"नामे तो जगमा रह्यो, स्थापना पण तिमही,
द्रव्ये भव माहे वसे, पण न कले किमही।
भावपणे सवि एकरूप—त्रिभुवन मे त्रिकाले,
ते पारगत ने वदिये, त्रिहुँ योगे स्वभाले।

इन दो छदो के द्वारा पू ज्ञानविमलसूरि महाराज ने नाम आदि रूप मे परमात्मा की सर्वत्र उपस्थिति बतलाई है जो इस प्रकार है—

नाम रूप मे एव स्थापना रूप मे परमात्मा विश्व मे विद्यमान है। द्रव्य रूप मे भी वे विश्व मे हैं परन्तु पहचाने नही जाते, भाव रूप मे तो परमात्मा तीनो लोको मे सदा (भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल मे) विद्यमान है, क्योकि समस्त जीवो मे चैतन्य तत्त्व (समान भाव से) विद्यमान है, उसके कारण सब की एकात्मता वाले पारगत-ससार का भेद पाये हुए परमात्मा को त्रिकरण योग की शुद्धि से शीश नँवा कर वन्दन-नमन करें तो उनके दर्शन और मिलन से क्रमश: हम उनके तुल्य बन सकें।

साधक के हृदय मे कभी-कभी ऐसे विचार भी आते हैं कि यदि साक्षात् परमात्मा से मेरा साक्षात्कार हुआ होता तो सयम की उत्कृष्ट साधना हो सकती कि जिससे मैं शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर पाता, परन्तु इस काल मे, इस क्षेत्र मे किसी तीर्थंकर परमात्मा से साक्षात्कार होना सम्भव ही नही है, अत हमे तो केवल उसकी भावना ही बनानी है।

परन्तु पुरुषार्थ विहीन निरी भावना से कोई कार्य सिद्ध नही होता। उसके लिये भावना के अनुरूप सक्रिय प्रयत्न करने ही पडते हैं। सच्ची भावना एव लगन से यदि हम पुरुषार्थ करें तो आज भी चारो प्रकार से परमात्मा का सान्निध्य निस्सन्देह प्राप्त हो सकता है।

क्या आराधक आत्मा के लिये परमात्मा का नाम साक्षात् परमात्मा की अपेक्षा कम आलम्बन रूप है ? अथवा उन परमात्मा की प्रतिमा कम आलम्बन भूत हैं ? कि जिनके दर्शन मात्र से मन की मलिनता क्षीण हो जाती

है, चित्त मे प्रसन्नता की सौरभ छा जाती है, पाप का नाश और पुण्य का सचय होता है।

अत परमात्मा के नाम का स्मरण (जाप) और परमात्मा की प्रतिमा का आलम्बन भी साक्षात् परमात्मा के आलम्बन जितना ही फलदायी है, इस शास्त्र-वचन मे पूर्ण श्रद्धा रख कर हमें उनकी अनन्य भाव से उपासना करनी चाहिये ।

शास्त्रो मे श्री जिन प्रतिमा को जिन समान कही गई है और उनके पुण्य-नाम का मत्र के रूप मे परिचय कराया गया है। यह तथ्य एक और एक दो के जितना ही सही है।

इस तथ्य के समर्थन मे कहा भी है कि—

दर्शनात् दूरित ध्वंसी, वदनात् वाञ्छितप्रद ।
पूजनात् पूरक श्रीणा–जिनः साक्षात् सुरद्रुम ॥

अर्थ —दर्शन मात्र से दूरित (पाप) का नाश करने वाले, वन्दन से वाछित देने वाले, पूजन से लक्ष्मी के पूरक श्री जिनेश्वर भगवान साक्षात् कल्प-वृक्ष के समान हैं।

तो साक्षाद् कल्प-वृक्ष प्राप्त होने से गृहस्थ को जितना हर्ष होता है, उतना हर्ष परम कोटि के कल्पवृक्ष तुल्य श्री जिनेश्वर देव के प्रतिमा के दर्शन से होने लगे तो समझना चाहिये कि हमे प्रतिमा मे स्वय श्री जिनेश्वर देव देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

श्री जिन-प्रतिमा मे श्री जिनेश्वर देव के दर्शन करने वाले व्यक्ति को उसके पुण्य के प्रभाव से उपर्युक्त श्लोक मे वर्णित अनुभव हुए बिना नही रहता।

अपने उपकारी पुरुष का चित्र देख कर भी मनुष्य हर्ष विभोर हो जाता है, तो फिर समस्त जीवो के परम उपकारी श्री जिनेश्वर देव की मूर्त्ति के दर्शन करके हमारे साढे तीन करोड रोम-कूपो मे हर्ष के दीपक प्रज्वलित होने ही चाहिये।

श्री जिन नाम भी श्री जिन-प्रतिमा जितना ही मगलप्रद, वाछितप्रद और सौभाग्यप्रद है ही।

प्रभु का नाम प्रभु की मत्रात्मक देह है, उस सत्य की अनुभूति सविधि सम्मान सहित नाम स्मरण से होती है। उसका लक्षण यह है कि समस्त देह मे हर्ष की लहरें उठती हैं, नेत्र हर्षाश्रु से सिक्त बनते हैं, चित्त मे अपूर्व प्रसन्नता होती है।

जो व्यक्ति रात-दिन के श्रेष्ठ क्षणो मे श्री जिनेश्वर देव के असख्य उपकारो का चिन्तन-मनन करते हैं उन्हें श्री जिनेश्वर देव के चारो स्वरूप समान उपकारी होने का शास्त्रोक्त सत्य सर्वथा सही प्रतीत होता ही है।

अरिहन्त परमात्मा का नाम एव मूर्त्ति तीनो लोको मे बसे हुए जीवो पर उपकार करते हैं। वह तथ्य इस बात से सिद्ध होता है।

श्री अरिहन्त परमात्मा द्रव्य से भी इस विश्व मे सर्वत्र विद्यमान रहते हैं, परन्तु विशिष्ट कोटि के ज्ञानी भगवतो के बिना उन्हें पहचाना नही जा सकता।

भाव से तो तीन लोको मे, तीनो काल मे परमात्मा सर्वत्र विद्यमान हैं ही।

हाँ, उस भावना मे हमारी भावना सम्मिलित होनी चाहिये, तो इस काल मे भी परमात्मा का उत्कृष्ट आलम्बन मिल सकता है।

उन्हे उत्कृष्ट भाव से स्मरण करने की सरल रीति उनकी उपकारक आज्ञा का त्रिविध एव त्रिकरण योग से पालन करना है। उस प्रकार करने से जीव गिनती के थोडे भवों मे ही दु ख रूप, दु:ख फलक एव दु ख परपरक ससार का उच्छेद करके शिव-पद प्राप्त कर सकता है।

श्री अरिहन्त परमात्मा के नाम आदि चारो निक्षेपा समान उपकारी है, अपने अनन्य शरणागत को भव-सागर मे से सकुशल मोक्ष मे ले जाने की क्षमता वाले हैं। उस सत्य मे अपनी प्रज्ञा को स्थिर करके समस्त मुमुक्षु आत्मा आज वर्तमान समय मे भी इस जिन-मय जीवन का अमुक अशो मे अद्भुत रोमाचकारी अनुभव कर सकती हैं, यह निस्सदेह बात है।

प्रीति-योग



प्रभु प्रेम का प्रभाव



श्री जिनेश्वर देव के नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपा के स्वरूप द्वारा जिस प्रकार उनके विशद स्वरूप एव विश्वोपकारिता की हमे प्रतीति हुई, उसी प्रकार से उनके प्रति जो निष्काम प्रीति, भक्ति भक्त-हृदय मे उत्पन्न होती है, उसे जैन दर्शन के शास्त्रो एव शास्त्रवेत्ताओ ने किस प्रकार चित्रित किया है, किस प्रकार उसका विकास किया है, उस सम्बन्ध मे सूरि पुरन्दर श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज द्वारा प्रदर्शित प्रीतियोग, भक्ति-योग, वचन-योग और असग-योग के आधार पर विचार करके जैन दर्शन के भक्ति योग की व्यापकता एव विशदता का तनिक विशेष परिचय प्राप्त करें और तदनुसार जीवन मे उक्त भक्ति योग को जीवित करके हमारे अन्तर मे स्थित अनन्त आनन्द एव ज्ञान के कोष को प्राप्त करने के लिये सुभागी बनें।

सामान्यत परमात्म-दर्शन के लिये तरसते साधक के हृदय मे परमात्म-दर्शन की प्राप्ति के मौलिक उपाय ज्ञात करने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है और उन उपायो के अनुसार वह साधना की दिशा मे प्रयाण करता है।

इस प्रक्रिया को चार विभागो मे विभाजित किया जा सकता है[१]

(१) प्रीति-अनुष्ठान (प्रीति-योग), (२) भक्ति-अनुष्ठान (भक्ति योग), (३) वचन-अनुष्ठान (शास्त्र योग), और (४) असग अनुष्ठान (सामर्थ्य योग)

प्रीति-योग अर्थात् प्रेम

विश्व का महानतम आकर्षण प्रेम है। मानव प्रेम करता ही रहा है, फिर चाहे उसके प्रेम-पात्र कोई व्यक्ति हो अथवा कोई भौतिक पदार्थ हो, परन्तु कोई होता अवश्य है।

वह अपने प्रेम-पात्र को प्राप्त करने के लिये, उसे रिझाने के लिये क्या-क्या नही करता ? सब कुछ करता है।

उसे प्राप्त करने मे कदाचित् आपत्तियो के पहाड़ टूट पडें, चाहे विपत्तियो के श्याम मेघ बरस पड़ें और उसका प्रेम-पात्र बनने मे कदाचित् अनेक व्यक्तियो की शत्रुता मोल लेनी पडे, तो भी मानव सब कुछ सहन करने के लिये तत्पर रहता है।

प्रेम एवं जीव-सृष्टि

केवल मानव ही नही, अन्य जीव सृष्टि मे भी प्रेम मे पागल होकर जीवन को दाव पर लगाने वाले जीवो के असख्य उदाहरण देखने को मिलते हैं।

पतगा दीपक की लो पर पागल होकर अपने प्राणो की आहुति तक दे देता है।

चकोर पक्षी चाँद के लिये पागल होकर केवल उसकी प्रतीक्षा मे ही अपना जीवन व्यतीत करता है।

मृग एव भुजग सगीत के स्वरो से आकर्षित होकर शिकारी एव मदारी के बन्धनो मे फँस जाते है।

भ्रमर कमल-दल मे बन्द होने पर भी उसका स्नेह छोड कर बाहर निकलने के लिये उत्सुक नही होता।

प्रेम के लिये द्रव्य, क्षेत्र, काल अथवा भाव अवरोधक नही होते। उसका प्रवाह तो निज प्रेम-पात्र के पीछे अबाध गति से प्रवाहित होता ही रहता है।

सृष्टि मे विविध रूप से प्रेम का दर्शन होता है।

कही पति-पत्नी का प्रेम दृष्टिगोचर होता है, तो कही पिता-पुत्र के प्रेम का दर्शन होता है, कही सन्तान के प्रति माता का प्रेम अवलोकन करने

के लिये मिलता है, तो कही भाई-भगिनी का पवित्र प्रेम भी दृष्टिगोचर होता है। कही व्यक्ति का किसी पदार्थ के प्रति सकुचित प्रेम देखने को मिलता है तो कही व्यक्ति का विश्व के प्रति विकसित प्रेम देखने का अवसर मिलता है और कही विश्व वात्सल्यमय परमात्मा के प्रति प्रकृष्ट प्रेम प्रवाहित करते सत महन्तो के भी दर्शन होते हैं।

इस प्रेम का साम्राज्य विश्व पर विविध रूप मे फैला हुआ है। फिर भी भौतिक सुखो की कामना से किया गया प्रेम अन्त मे तो छलिया ही सिद्ध होता है। उसका अन्तिम परिणाम आह एव आँसू ही होते हैं।

पचेन्द्रिय-विषयक प्रेम भी अन्त मे प्राण-घातक सिद्ध होता है।

तात्पर्य यह है कि प्रेम का पात्र-पदार्थ एक मात्र आत्मा है, उसके गुण है। उन गुणो को धारण करने वाले महा सत हैं और वे महा सत भी जिन्हें नित्य भाव सहित स्मरण करते है वे श्री अरिहन्त परमात्मा हैं, जिनका शासन सर्व-व्यापी है, अप्रतिहत है। जिनकी कृपा का स्रोत समस्त सृष्टि पर अबाधगति से सतत प्रवाहित होता ही रहता है, जिनका विमल वात्सल्य समस्त प्राणियो के लिये सुखदायक सिद्ध होता है।

जिनके दर्शन मात्र से तन का ताप, मन का सन्ताप और हृदय की तडप शान्त हो जाती है।

जिनका सान्निध्य हमे अशुभ भावो से निवृत्त करके शुभ भावो मे प्रवृत्त करता है।

जिनकी प्रशान्त मुद्रा राग की ज्वाला बुझा कर त्याग के राग को पुष्ट करती है और पाप-पुञ्जो का विलय करके पुण्य-पुञ्जो का सचय करती है।

जिनके दर्शन से भव-निर्वेद एव ग्रथि-भेद भी सुलभ हो जाते है। भव-शृ खला से मुक्ति और निज-शुद्ध आत्म-स्वभाव की प्राप्ति मे भी अनन्य कारणभूत हैं।

परमात्मा के प्रेम मे ही एक ऐसी शक्ति है कि जो उनके प्रेमी को चित्त के चचल परिणामो से मुक्त करके स्थिर परिणामी बना सकती है।

अतः निर्विषयी, निष्कषायी अर्थात् समस्त गुणो से सम्पन्न श्री अरिहन्त परमात्मा के साथ प्रेम करने से विषय कषाय युक्त प्रेम (राग दशा) का विशुद्ध प्रेम मे रूपान्तर हो जाता है।

परमात्म-प्रेम से उत्पन्न होने वाली शक्तियाँ

परमात्मा के प्रति पूर्ण प्रेम से साधना की शक्ति एव वैराग्य की ज्योति प्रकट होने से जीवन आनन्दमय हो जाता है।

सासारिक सुख प्रदान कराने वाली वस्तुओ को प्राप्त करने के लिये मनुष्य रात-दिन जो प्रयास करते हैं उनके दसवें भाग के प्रयास भी यदि वे परमात्मा का प्रेम प्राप्त करने मे करें तो भी उनका जीवन अपार आनन्द से परिपूर्ण हो जाये।

परमात्मा की अखण्ड प्रीति का विशुद्ध प्रवाह सर्वत्र निरन्तर बह रहा है, परन्तु उसके योग्य बनने के लिये स्थूल, लौकिक, स्वार्थपूर्ण भावो के साथ प्रीत-सम्बन्ध का समूल त्याग करना पडता है और उसमे भी सर्वप्रथम अपने उत्तमाग (मस्तक) को परमात्मा के चरण-कमल मे समर्पित करने से ही उत्तम परमात्मा की प्रीति अगभूत होती है।

एक परमात्मा के अतिरिक्त मन को शीतलता प्रदान करने वाला अन्य कोई स्थान नही है, यह तथ्य स्वीकार करके परमात्मा की प्रीति मे रग जाने मे ही बुद्धिमानी है, जीवन की सार्थकता और सफलता है।

जल-बिन्दु सागर मे मिल जाने पर वह अक्षय अभग हो जाता है, फिर उसे सूखने अथवा शोषने का भय नही रहता।

अल्प को परम मे समर्पित करने की इस कला को प्रीति-अनुष्ठान भी कहा जा सकता है।

परमात्म-प्रीति-पूर्वक जीवन मे एकरूप बने हुए महा सत तो सर्वदा एक ही धुन मे लीन रहते हैं कि—'अवर न धधो आदरूँ, निश-दिन तोरा गुण गाऊँ रे .. '

परमात्मा ही अपनी मति बनते है, गति बनते हैं, फिर विचार, वाणी एव व्यवहार मे परमात्मा की प्रीति छलकती है।

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे '

पद गाने वाले आनदघन का श्रेष्ठ अभिवादन—सम्मान परमात्मा की प्रीति मे पूर्णत एकरूप होने मे है।

परम चैतन्यमय परमात्मा की प्रीति के परम प्रभाव से प्रत्येक प्राण मे अपूर्व पवित्रता प्रकट होती है। पाँचो इन्द्रियाँ आत्मा की ओर उन्मुख होती हैं। हृदय मे शब्दातीत स्नेह, दया प्रकट होती है। सातो धातुओ मे नवीन शुचिता का सचरण होता है। प्रत्येक कोष मे अपूर्व धर्म-धारणा की क्षमता प्रकट होती है अर्थात् प्रेमी की समग्रता परम कल्याणकारी परमात्म-प्रीति के द्वारा रग जाती है। उठते, बैठते, चलते, खाते, पीते अथवा कुछ भी कार्य करते उसका उपयोग (ध्यान) परमात्मा मे रहता है।

परमात्मा की प्रीति का अमृत-पान करने वाले व्यक्ति को विषय एव कषाय विष तुल्य लगते हैं अर्थात् विपय-कषय का तनिक भी सम्मान करने मे उसे परमात्मा का भयानक अपमान प्रतीत होता है।

परमात्मा की प्रीति का आस्वादन ही इस प्रकार का है कि एक बार उसका अनुभव करने वाले धन्यात्मा को स्वार्थ तुच्छ प्रतीत होता है। उसका सम्पूर्ण जीवन परमात्ममय बन जाता है। उसका हृदय ससार की किसी भी वस्तु मे नही चिपकता, वह तो केवल परमात्म-चरण मे ही लीन रहता है।

भक्त की भाव-सिक्त प्रार्थना

इस प्रकार का परमात्म-प्रेमी अनन्त गुण-निधान परमात्मा के गुणो को अत्यन्त उमग से स्मरण कर करके, स्व-दुर्गुणो की निन्दा करके परमात्मा के समक्ष दीनतापूर्वक याचना करता है कि—

"हे परमात्मा ! आप राग रहित हैं और मैं तो राग से ओत-प्रोत हूँ।

आप द्वेषरहित हैं और मैं तो द्वेष के दावानल मे झुलस रहा हूँ।

आप मोह रहित हैं और मैं तो मोह के महा पाश मे जकडा हुआ हूँ।

आप आशा रहित हैं और मैं आशा के मधुर स्वप्नो मे हिचकोले खा रहा हूँ।

आप इच्छा रहित हैं और मैं तो हजारो इच्छाओ से घिरा हुआ हूँ।

आप नि सग हैं और मैं तो सग मे ही जीवन के रगो का आनन्द लेने वाला हूँ।

आप पूर्ण ज्ञानी हैं और मैं तो अज्ञान मे ही भटकने वाला हूँ।

आप प्रशम रस के पयोधि हैं और मैं तो क्रोध-कषाय का उदधि (सागर) हूँ।

आप निर्विषयी हैं और मैं तो विषयासक्त, विषय-ग्रस्त हूँ।

आप कर्म-कलक से विमुक्त हैं और मैं कर्म-कलक युक्त हूँ।

आप अविनाशी-आत्म-सुख के स्वामी हैं और मैं तो नश्वर पौद्गलिक सुख का कामी हूँ।

आप शुद्ध, बुद्ध, पूर्ण हैं और मैं तो अशुद्ध, अबुद्ध, अपूर्ण हूँ।

आप अयोगी, अशरीरी, अलेशी हैं और मैं तो सयोगी, सशरीरी, और सलेशी हूँ।

आप निर्मम, निर्भय, निस्तरग है और मैं तो ममत्व, भय एव तरग से युक्त हूँ।

आप अजर और अमर हैं और मै तो जरा एव मृत्यु के भय से घिरा हुआ हूँ।

आप अनन्तनान्त गुणो से पूर्ण है और मैं तो अनन्तानन्त अवगुणो से पूर्ण हूँ।

हे परमात्मा! इस प्रकार आपके और मेरे मध्य विराट अन्तर है, जितना अन्तर मेरु पर्वत और सरसो के दाने के मध्य है, धरती और नभ के मध्य है, अमृत और विष के मध्य है, उनसे भी अधिक अन्तर हे प्रभो! आपके और मेरे मध्य है।

तो हे प्रभु! आपके साथ मेरा मेल कैसे बैठेगा? परस्पर की प्रीति किस प्रकार अभग होगी? अन्योन्य की समीपता किस प्रकार स्थिर रहेगी?

हे प्रभो! क्या मैं आपसे प्रेम करने के लिये योग्य नही हूँ? क्या आपकी प्रीति प्राप्त करने की मुझ मे पात्रता नही है?

नही नही प्रभो! यह अन्तर पुकार-पुकार कर कह रहा है कि केवल आपके प्रेम के प्रभाव से, आपकी अदृश्य एव अकलपनीय तारक शक्ति के बल से मैं इस विराट् अन्तर को अवश्य भेदकर आपके बिल्कुल समीप पहुँच जाऊँगा। यद्यपि यह कार्य सुसाध्य तो नही है, परन्तु असाध्य भी नही है, फिर भी कष्ट-साध्य (दु साध्य) अवश्य है।

हे प्रभो! इस दु साध्य कार्य को साध्य करने के लिये मैं भगीरथ पुरुषार्थ करूँगा। मैं अपनी समग्रता को आपके पूर्ण प्रेम मे ढाल कर इस विराट भेद को खोल कर ही दम लूगा। चाहे यह कार्य करने मे कदाचित् अनेक दिन, महीने, वर्ष अथवा कदाचित् अनेक जन्म व्यतीत करने पडें, परन्तु आपको प्राप्त करने का अपना श्रेष्ठ पुरुषार्थ अबाध गति से मैं प्रारम्भ ही रखूँगा। आप नित्य मुझ पर कृपा की वृष्टि करते रहे, नित्य मेरी राह मे ज्योति विखेरते रहें। इस भीषण भव-बन मे जब तक मेरा परिभ्रमण चलता रहे तब तक हे प्रभो! आप अपना पवित्र सहयोग मुझे प्रदान करके अशुभ वासनाओ एव वृत्तियो से मेरी रक्षा करते रहें।

हे प्रभो ! सवेग, निर्वेद भाव की दिव्य ज्योति मेरे मन-मन्दिर मे नित्य जगमगाती रखें और प्रत्येक भव मे मुझे आपके परम तारणहार शासन तथा उसके स्वरूप को समझाने वाले सुगुरु का सुयोग कराकर मेरी साधना मे प्राणो का सचार करें और आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करें कि जिससे मैं मुक्ति के अधिकाधिक समीप पहुँचता जाऊँ और अन्त मे मुक्ति प्राप्त करके आपके साथ शाश्वत मिलन सिद्ध कर लू, आपके साथ एकरूप बन जाऊँ।

परम दयालु परमात्मा को इस प्रकार बार-बार भाव-सिक्त निवेदन करता हुआ साधक अपनी इच्छा-पूर्ति मे विलम्ब होता देखते हुए भी तनिक भी निराश हुए बिना अपने निश्चय पर अटल रह कर, अखण्ड भक्ति, श्रद्धा एव तदनुरूप पुरुषार्थ करता हुआ वह स्वरूप-साधना मे प्रगति करता ही रहता है। वह आत्मा के पूर्ण-विशुद्ध स्वरूप की साधना मे मग्न रहता है।

परम वात्सल्यवान परमात्मा के प्रति इतनी अनुपम प्रीति साधक को साधना करने की शक्ति प्रदान कर उसे सिद्धि के अधिक समीप ले जाती है।

यह प्रभु-प्रेम ही समस्त साधना का उद्भव-स्थल है, जिसमे से समस्त प्रकार की उत्तम साधनाओ का प्रादुर्भाव होता है। ज्ञान से तो परमात्मा को पहचाना जा सकता है, परन्तु प्राप्त तो उसे प्रीति से ही किया जा सकता है।

भक्ति-योग



भक्ति की भव्य शक्ति

प्रीतियोग की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए साधक मे भक्ति-योग विकसित होता है।

भक्ति की शक्ति अकल, अटल एव अपार है। उसका प्रभाव और प्रताप अद्‌भुत है।

समस्त प्रकार की श्रेष्ठ साधना का विकास भी भक्ति की भव्य शक्ति के द्वारा ही होता है। भगवद्-भावना का अनमोल वीज भी भक्ति ही है। भक्ति की शक्ति के द्वारा ही ऐसी युक्ति प्राप्त होती है जो मगलमयी मुक्ति के साथ हमारा चिरन्तन मिलन करा देती है।

भक्ति भव का भ्रम नष्ट करके स्वभाव का साहजिक आनन्द प्रदान करती है।

भक्ति अशुभ मे से शुभ मे और शुभ मे से शुद्धता मे ले जाती है।

भक्ति वाह्य दशा मे से आभ्यतर दशा मे ले जाकर परमात्म-दशा के सम्मुख ले जाती है।

भक्ति भक्त का भगवान से साक्षात्कार कराने वाला सुहावना सेतु (पुल) है।

जिस प्रकार वालक के लिये विश्वासपात्र केवल माता ही होती है, उसके अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति पर उसे अपनी माता के समान विश्वास नही होता, उस प्रकार से भक्त के लिये विश्वासपात्र केवल भगवान

ही होते है; परन्तु जितना विश्वास उसे भगवान पर होता है उतना अन्य किसी पर नही होता ।

परमात्मा ही मेरी समग्र साधना एव आराधना के केन्द्र हैं । वे समस्त कामनाओ को पूर्ण करने वाले, आपत्तियो को नष्ट करने वाले और समस्त सम्पत्ति के समर्थक हैं—ऐसी दृढ एव अटूट श्रद्धा भक्त के हृदय मे होती है ।

श्रद्धा-विहीन भक्ति कदापि फल-दायिनी नही हो सकती ।

अकल्पनीय शक्ति-सम्पन्न श्री अरिहन्त परमात्मा की परम तारक शक्ति मे तनिक भी शका रखना महान् दोष है, मिथ्यामति की विकृतता है ।

तात्पर्य यह है कि भक्त को भगवान के प्रति पूर्ण श्रद्धा ही होनी चाहिये, होती है ।

ऐसी श्रद्धापूर्ण भक्ति जिस व्यक्ति के अन्तरोद्यान मे प्रकट होती है, प्रसारित होती है, उसका समग्र जीवन सद्भाव की अलौकिक सौरभ से महक उठता है । उसके समस्त भाव सत् मे ही केन्द्रीयभूत होते हैं । भाव प्रदान करने की शक्ति से शून्य ऐसे असत् पदार्थों के प्रति वह तनिक भी ममत्व नही रखता ।

इस प्रकार का भक्त भक्ति मे तन्मय होकर स्व-जीवन को धन्य-धन्य वना लेता है और वह भक्ति की साधना मे अहर्निश प्रगति करता रहता है ।

प्रभु मिलन की प्यास

भक्त को भगवान के प्रति प्रीति और भक्ति है, परन्तु प्रीति-भक्ति के भाजन स्वरूप परमात्मा प्रत्यक्ष नही होने से कभी कभी वह व्याकुलता अनुभव करके प्रभु को प्रश्न पूछ बैठता है कि—हे प्रभो ! आपका और मेरा मिलन (साक्षात्कार) होगा या नही ? आपकी और मेरी प्रीति अटूट रहेगी या नही ? क्योकि आपके और मेरे मध्य सात राजलोक का दीर्घ अन्तर है,

अर्थात् आप लोकाग्र में विराजमान हैं जबकि मैं मध्य-लोकवर्ती मनुष्य लोक मे हूँ।

हे नाथ ! अनेक वार मेरी ऐसी इच्छा हो जाती है कि मैं आपको पत्र लिख कर अपनी प्रीति सुदृढ करूँ, भक्ति को वेगवती बनाऊँ, परन्तु खेद है ! मेरा पत्र आप तक पहुँचाने वाला और वहाँ से आपका शुभ सन्देशमय प्रत्युत्तर लेकर लौट आने वाला कोई सन्देश-वाहक-पथिक मुझे मिलता नही। जो व्यक्ति आपके पास पहुँचता है वह मानो एक समय का भी विरह नही चाहता हो—नही सह सकता हो, उस तरह आपकी ज्योति मे मिल कर आपमय वन जाता है और ऐसा कोई वाहन भी नही है कि जिस पर सवार होकर मैं आपको मिलने के लिये आ सकूँ तथा उन नील-गगन मे उडने वाले पक्षियो के समान पख भी मेरे पास नही हैं कि उड कर सुदूर स्थित आपके मगलकारी दर्शन प्राप्त करने के लिये मै आ सकूँ। जिस प्रकार मेरे तन मे (पख) पाँखे नही है उस प्रकार मेरे मन मे आँखें भी नही हैं कि जिनके द्वारा मै आपके दर्शन कर सकूँ और हे सामर्थ्य-निधान ! मुझ मे ऐसी कोई विशिष्ट शक्ति भी नही है कि जिसकी सहायता से मैं आपके समीप पहुँच जाऊँ।

भक्त की व्यथा

प्रभु-मिलन-तृपित भक्त की व्यथा भी विचित्र प्रकार की होती है। वह परमात्मा को मानो कहता है कि आपके दर्शन की तमन्ना—लगन ज्यो-ज्यो तीव्र होती जाती है, आपके मिलन की प्यास ज्यो-ज्यो उत्कट होती जाती है, त्यो त्यो हे नाथ ! अनेक अन्तराय मुझे चारो ओर से घेर लेते हैं जो मेरी आशा के मधुर स्वप्न को धराशायी कर डालते हैं।

सचमुच, प्रभो ! आज मुझे उस सत्य का भान होता है कि जो दूर-सुदूर शाश्वत धाम मे निवास करते हो, जिन्हे मिलना अत्यन्त दूभर हो और जिन्हे कोई सन्देश भी नही भेजा जा सकता हो, ऐसे व्यक्ति से प्रेम करना दु खदायी है। अतः कायर मनुष्य आपको प्राप्त करने के मार्ग मे पीछे हट जाते हैं।

हे निरजन, निराकार परमात्मा ! आप तो वहुत दूर हैं, परन्तु साकार श्री अरिहन्त परमात्मा तो इस धरती तल पर विचर रहे हैं और अपने

पवित्र चरण-कमलो से पृथ्वी को पावन कर रहे हैं, असंख्य देव उनकी सेवा कर रहे हैं। वे परमात्मा भी यदि तनिक कृपा करके किसी देव को आदेश दें तो उस देवी शक्ति के बल से भी मैं उन अपार करुणा-निधान परमात्मा के दर्शन प्राप्त कर सकू ...परन्तु श्री अरिहन्त परमात्मा भी इतनी कृपा नही करते।

सचमुच, वीतरागी प्रभु के प्रति किया गया राग भी एक पक्षीय होता है, जिससे रागी भक्त का नित्य शोषण होता है, उसे व्याकुल होना पडता है।

चातक मेघ-वृष्टि की आतुरता से प्रतीक्षा करता है, जबकि मेघ को उसकी तनिक भी परवाह नही होती, इसलिये वह उसे तरसा-तरसा कर बरसता है और चकोर चन्द्र-दर्शन के लिये लालायित रहता है परन्तु चन्द्रमा उसकी प्रीति की उपेक्षा करके अमावस के गहन अन्धकार मे विलीन हो जाता है।

इसी प्रकार से प्रभो! आप भी भक्त की प्रीति और भक्ति की उपेक्षा करके भक्त से अलग ही रहते है। आपको कदाचित् यह भय होगा कि यह भक्त मेरे सच्चिदानन्द पूर्ण सुख मे से कुछ भाग छीन लेगा, परन्तु प्रभो! इतने कृपण क्यो हो रहे हो? मुझ मे इतनी शक्ति ही कहाँ है कि मैं आपके सुख मे से भाग छीन सकू परन्तु मै तो यह चाहता हूँ कि आपकी भक्ति के द्वारा मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि मैं भी अपने सम्पूर्ण, शुद्ध आत्म-स्वरूप को प्रकट करके निजानन्द की मस्ती मे रम सकू।

भले प्रभो! आप मुझ से दूर रहे, अपनी मनोहर, मन-भावन मुख-मुद्रा के दर्शन भी न दें तो भी मेरे पास सचित भक्ति की चुम्बकीय शक्ति के द्वारा आपको आकर्षित करके मैं अपने मन-मन्दिर मे प्रतिष्ठित करूँगा और अपने विशुद्ध प्रेम के पवित्र बन्धन मे आपको ऐसा बाँधूगा कि आप उसमे से कदापि निकल नही सकेगें।

हे प्रभो! आपका प्रत्यक्ष मिलन इस समय कदाचित् मेरे लिये दुर्लभ हो, फिर भी मेरे पास आपका पवित्र नाम रूप मन्त्र-देह विद्यमान है। मैं उसका आलम्बन लूंगा। भरे हुए महासागर मे बहता मनुष्य जिस अनन्य भाव

से लकडी के आलम्बन को समर्पित हो जाता है, उसी भाव से मैं आपके नाम रूपी आलम्बन को समर्पित होकर आपके दर्शन की अपनी प्यास बुझाऊँगा ।

और प्रभो ! आपके सदृश आपकी पावन पडिमा (प्रतिमा) का मैं जब-जब आलम्बन लेता हूँ, तब-तब तो मानो मुझे साक्षात् आप ही मिले हो ऐसा अपूर्व आनन्द होता है, हृदय हर्ष-विभोर होकर नेत्र अपलक बन अनन्य उत्साह एव उमग से आपके दर्शनामृत का पान करने लगते है । मन 'मेरा' मिट कर 'आपका' हो जाता है ।

हे नाथ ! आपकी पावन प्रतिमा भी मेरे लिये अनन्य आधार है, भीषण भव-सागर मे डूबते हुए को बचाने वाले सुन्दर, सुदृढ जहाज तुल्य है ।

क्त-हृदय की यह व्यथा उस भक्तिमय जीवन की प्रेरक कथा है ।

भगवान को उपालम्भ देने का अधिकार सच्चे भक्त को ही होता है क्योकि उस उपालम्भ के मूल मे कोई सासारिक लालसा नही होती, परन्तु वीतराग के परम विशुद्ध स्वरूप का श्रेष्ठ सम्मान होता है ।

निष्काम भक्ति की चुम्बकीय (आकर्षण) शक्ति को त्रिलोक मे कोई कदापि चुनौती नही दे सकता, क्योकि वह त्रिभुवन-पति श्री अरिहन्त परमात्मा से सम्बन्धित होती है । अत उसमे अरिहन्त परमात्मा का अचिन्त्य सामर्थ्य होता है ।

श्री वीतराग, अरिहन्त परमात्मा का राग चाहे एक-पक्षीय है परन्तु वह अवश्य करने जैसा है, अपनाने जैसा है, नियमा उपयोगी है, क्योकि उस राग मे भक्त को वीतराग बनाने का स्वाभाविक सामर्थ्य है । भक्त-हृदय की व्यथा व्यक्त करने वाले वचनो मे इस प्रकार का मर्म सुरभित होता है ।

चेतन पर जड के स्वामित्व को नष्ट करने मे श्री अरिहन्त परमात्मा की चारो निक्षेपा की भक्ति समान सामर्थ्य रखती है ।

अतः सचेत भक्तो को सत्वर, जागृत होकर जड-राग के आक्रमणो को विफल करने के लिये श्री अरिहन्त परमात्मा को, उनके नाम को, उनके आदेश को, उनकी उत्कृष्ट भावना को सम्मुख रख कर चलना चाहिये ।

निज आत्मा के परमात्म-स्वरूप को प्रकट करने की जो उत्तम सामग्रा हमे प्राप्त हुई है उसका उस दिशा मे ही सदुपयोग करके हम निस्सन्देह सर्वोपयोगी, सर्वोपकारी, शुद्ध जीवन के चरम शिखर पर पहुँच सकेंगे ।

शुद्धात्म स्वरूप प्रकट करने की शीघ्रता

जव-जव प्रभो । मैं आपके शुद्धात्म द्रव्य का विचार करता हूँ, तव-तव मुझे अपने ज्ञानावरणीय आदि कर्म से आच्छादित अशुद्ध आत्म द्रव्य मे भी प्रच्छन्न रूप मे निहित शुद्धात्म-स्वरूप के दर्शन होते हैं और उसे प्रकट करने की तीव्र अभिलापा होती है ।

इस प्रकार मेरे शुद्ध आत्म-द्रव्य का ज्ञान करा कर मेरे मिथ्यात्व-तहो का उच्छेद कराने मे भी प्रभो ! आपके शुद्धात्म द्रव्य का चिन्तन भी अनन्य सहायक होता है, उपकारी होता है ।

प्रभो ! जव-जव समवसरण मे वैठ कर आप देशना देते हैं, उस दृश्य को अपने नेत्रो के समक्ष लाता हूँ, तव-तव तो मुझे यही होता है कि मैं भी इस वारह पर्षदाओ के मध्य वैठ कर आपकी अमृत-वृष्टि करती वाणी का पान कर रहा हूँ । आप ही मुझे इस ससार की दु ख-रूपता, दु ख-फलकता और दु खानुवधकता का वास्तविक भान करा रहे हैं और मोक्ष-प्राप्ति के उपायो का यथार्थ ज्ञान करा रहे हैं ऐसा आभास होता है ।

हे नाथ ! शरद-पूर्णिमा के चन्द्र की ज्योत्स्ना को लज्जित करने वाली अनुपम कान्ति-युक्त आपके मुख-चन्द्र का दर्शन स्मृति-पथ मे आते ही हृदय हर्प-विभोर हो जाता है और देवताओ द्वारा रचित समवसरण की अलौकिक रचना, अष्ट महाप्रातिहार्यों की अद्भुत शोभा, चौतीस अतिशयो की समृद्धि और पैतीस गुणो से युक्त देशना आदि सव मुझे आपके प्रकृष्ट पुण्य की झलक प्रस्तुत करते हैं, आपकी 'सवि जीव करूँ शासन रसी' की उत्कृष्ट भाव-दया का स्मरण कराते हैं ।

देवेन्द्रो, असुरेन्द्रो एव नरेन्द्रो द्वारा पूज्य हे प्रभो ! आज आपके समान नाथ को प्राप्त करके मैं कृतार्थ हो गया हूँ । निर्वल व्यक्ति भी वलवान

व्यक्ति की सगति से गर्जता है, निर्धन व्यक्ति भी धनवान की सगति से गर्व से, अपना मस्तक ऊँचा कर सकता है और अवगुणी व्यक्ति भी गुणवान पुरुप की सगति से गौरव का अनुभव करता है। उस प्रकार से हे प्रभो! कर्म-कलक से युक्त मैं आपके समान निष्कलक के सानिध्य से गौरव का अनुभव करता हूँ, स्वय को भाग्यशाली मानता हूँ, अपना जीवन सार्थक मानता हूँ।

आप मेरे नाथ हैं, मैं आपका दास हूँ। आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपका सेवक हूँ। इस भव-अटवी मे भटकते हुए कल्पवृक्ष की तरह मुझे आपका अमोघ दर्शन प्राप्त हुआ है।

अत अव इस अस्थिर, असार ससार मे सारभूत यदि कोई है तो वह केवल आपकी सेवा ही है, ऐसा मुझे ज्ञात होता है।

हे नाथ! आपको शत्रु के प्रति तनिक भी रोष नही है, चाहे वह चडकौशिक के रूप मे आये अथवा कमठ के रूप मे आये, तथा आपको मित्र के प्रति राग नही है चाहे वह देव हो अथवा देवेन्द्र हो। आपकी समान दृष्टि को मैं जितने नमस्कार करूँ उतने कम है। स्वयभू-रमण समुद्र के उदधि को लज्जित करने वाली आपकी असीम करुणा को कोटिशः प्रणाम करके भी मेरा मन तृप्त नही होता।

हे विश्व-वत्सल परमात्मा! आपके चित्त मे स्थान प्राप्त करने की मैं याचना नही करता......... परन्तु प्रभो! मैं तो केवल यही याचना करता हूँ कि आप मेरे चित्त मे आकर निवास करें....... फिर मुझे कर्म-शत्रुओ का तनिक भी भय नही है।

सर्वस्व समर्पण-भावना

हे परम उपकारी नाथ! मेरा तन, मन, धन जीवन और प्राण समस्त आपको समर्पित हैं। इन सब पर आपका स्वामित्व है। आपकी आज्ञा का प्रभुत्व उन पर स्थापित हो और महा मोह का बल मद हो यही मेरी अभिलाषा है। मेरा सर्वस्व आपको समर्पित है, उसे स्वीकार करके प्रभो!

आप मुझे अपना बना लो ! मेरी जीवन-नैया की पतवार सभाल कर आप मेरा उद्धार करो ।

हे नाथ ! सर्वस्व समर्पण-योग के इस साधना-पथ मे मेरे पाँव न लडखडाये, मेरा मन चल विचलित न हो जाये, उसके लिए आप मेरे अन्त करण मे सम्यग्दर्शन का दीपक प्रज्वलित करें ।

हे करुणा-सिन्धु ! आपके चरण-कमलो की सेवा की मुझे भवो-भव भट दें उस सेवा के सुख की मैं अभिलाषा करता हूँ । आपके चरणो की सेवा ही मेरे मन मे सर्वस्व है ।

हे अनन्त ज्ञानी प्रभु ! आपकी भक्ति से मुझे यह सब अवश्य प्राप्त होगा, ऐसी अटल श्रद्धा मेरे अन्तर मे है, फिर भी अन्तर की अधीरता आपसे याचना कराती है । इस प्रकार की अधीरता सात्विक भक्ति का एक लक्षण होने मे सम्मानसूचक है, अत मुझे उसका तनिक भी शोक नही है ।

इस प्रकार भक्त प्रभु-भक्ति मे अग्रसर होता ही रहता है और उसके जीवन मे परमात्मा के प्रति श्रद्धा, समर्पण एव आज्ञा-पालन के गुण अधिकाधिक विकसित होते रहते हैं ।

ये तीन गुण ऐसे हैं कि जिनसे भक्त जीवन की समस्त त्रुटि-कमियाँ दूर हो जाती हैं और इन तीनो गुणो को अपना अगभूत बनाकर भक्त भगवान के अधिक समीप पहुँचता जाता है । फिर भी प्रभु के दर्शन नही होने पर वह उन्हे मधुर उपालभ भी देता है ।

परमात्मा को उपालंभ

हे स्वामी ! आपके तो अनेक भक्त हैं, परन्तु मेरे लिये तो आप एक ही स्वामी है । आप मुझ पर कृपा-दृष्टि रखे अथवा न रखें, मेरी भक्ति का मूल्य समझें अथवा न समझें, परन्तु मैं आपको छोडने वाला नही हूँ, क्योकि भगवन् ! एक बार अमृत का आस्वादन करने के पश्चात् विष के प्याले की

ओर दृष्टि कौन डाले ? गगा-जल मे नित्य स्नान करने वाला व्यक्ति गदे, दूषित जल से परिपूर्ण खड्डे मे स्नान करने के लिये कैसे उत्सुक हो ? जिस व्यक्ति का मन मालती-पुष्प की मधुर सुगन्ध से प्रफुल्लित हो गया है वह आक के पुष्प को सूघने की अभिलाषा क्यो करेगा ? उस प्रकार से अलौकिक गुण-निधान तुल्य आपको पाकर फिर विषय-कषायाधीन देवो पर मन कैसे जायेगा ?

हे नाथ ! आपने अनेक भक्तो के हृदय आकर्षित किये है, लुभाये हैं, आप सबकी सेवा-भक्ति स्वीकार करके सबको आश्वासन देते है, परन्तु वास्तव मे तो आप सम्पूर्णत समर्पित किसी एक भक्त के साथ तादात्म्य हो जाते हैं और मेरे समान गुणहीन भक्त की आप उपेक्षा करते हैं, यह आपके समान निरागी प्रभु के लिये उचित नही कहा जा सकता ।

निरागी तो गुणहीन एव गुणवान, पूजक अथवा निन्दक सबके लिये समदृष्टि होते हैं । सूर्य-चद्र अपना प्रकाश प्रसारित करते समय कदापि भेद-भाव नही रखते, उसी प्रकार से आपको भी यह सद्गुणी है और यह गुण-हीन है ऐसा भेद-भाव रखना उचित नही है । एक का आदर और एक का अनादर करना भी आपके समान विरागी के लिये शोभास्पद नही है । आपके लिये तो बाँयी और दाहिनी आँख की तरह कोई भी कम अथवा अधिक प्रेम-पात्र नही होना चाहिये ।

हे नाथ ! माता को अपने मूर्ख एव समझदार दोनो बालको के प्रति समान वात्सल्य होता है तो विश्व-माता स्वरूप आप इस बालक का तिरस्कार क्यो करते हैं, प्रभु ?

इस प्रकार भक्त के जीवन मे भगवान के प्रति श्रद्धा अधिकाधिक सुदृढ होती जाती है । जब यह श्रद्धा और भक्ति पराकाष्ठा पर पहुँचती है तब भक्त ससार मे रहने पर भी उसकी वृत्ति एव प्रवृत्ति ससार से परे होती जाती है, जल-कमलवत् निर्लेप होती जाती है, रागादि की वृत्तियें निष्प्राण होती जाती है । जिस प्रकार लोह-कण चुम्बक की ओर आकर्षित होता है उस प्रकार से उसकी समग्रता भगवान की ओर आकृष्ट होती है, भगवद्-भाव की ओर खिचती है ।

परा भक्ति

फिर उस भक्त को मुक्ति की अभिलाषा भी नही रहती। उसके दस प्राणो, सात धातुओ और साढे तीन करोड रोमो मे प्रभु-भक्ति का अमृत ऐसा परिणत हो जाता है कि उसकी कोई अभिलाषा ही नही रहती, उसकी समस्त कामनाएँ सरलता से समाप्त हो जाती है। स्वप्न मे भी यदि कोई इच्छा आशिक रूप से उसे हो जाये तो वह तुरन्त उठ बैठता है और अश्रु-धारा बरसा कर अपने पापो को धोता है, धोकर उन्हे पावन करता है।

सती नारी के मन के किसी कोने मे भी कभी पर-पुरुष का विचार नही आता, उसी प्रकार से परा भक्ति-युक्त भक्त के मन के किसी भी कोने मे परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई प्रवेश नही पा सकता।

हिमालय के सर्वोच्च शिखर पर कौए नही पहुँच सकते, उस प्रकार से ऐसे भक्त के मन के उत्तुग शिखर पर दुर्विचारो के वायस नही पहुँच सकते। खाते-पीते, उठते-बैठते, कुछ भी कार्य करते तथा साँस लेते-छोडते समय ऐसे भक्त का उपयोग भगवान मे ही होता है।

इस प्रकार की भक्ति को 'परा भक्ति' कहते है।

परा भक्ति अर्थात् विशुद्ध एव ठोस भक्ति, सघन भक्ति।

इस परा भक्ति द्वारा आकर्षित परमात्मा भक्त के मन-मन्दिर मे निवास करता है और भक्त अल्प-काल मे ही भव-भ्रमण का अन्त लाकर शाश्वत सुख का भोक्ता बनता है।

परमात्म-तत्त्व मे ही यह स्वाभाविक परम सामर्थ्य है कि जो अपने अनन्य शरणागत को स्व तुल्य बना देता है।

परमात्मा का परम पावन दर्शन प्राप्त करने के लिये तरसते-तडपते साधक के लिये भक्ति द्वितीय चरण है। प्रीति-योग मे पारगत होकर भक्ति-

भक्ति-योग मे प्रविष्ट होने के पश्चात् ही आगे की भूमिका पर पहुँचा जा सकता है।

प्रीति-भक्ति विषयक प्रश्नोत्तर

प्रीति एव भक्ति मे अन्तर क्या है ?

उपलक दृष्टि से देखने पर तो प्रीति एव भक्ति प्रेम के ही स्वरूप प्रतीत होते है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उनका अन्तर स्पष्ट ज्ञात होता है।

प्रीति मे स्नेह-भावना, याचना आदि की प्रधानता होती है, जबकि भक्ति मे पूज्य-भाव, श्रद्धा आदि की प्रधानता होती है।

प्रीति एव भक्ति के मध्यस्थ अन्तर को समझने के लिये पत्नी एव माता का उदाहरण दिया जाता है।

दोनो प्रेम-पात्र हैं, तो भी दोनो के प्रेम मे अन्तर है। पत्नी के प्रति स्नेह होता है, जबकि माता के प्रति पूज्य-भाव होता है, श्रद्धा एव कृतज्ञता होती है। अत स्नेह-भाव की अपेक्षा पूज्य-भाव का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

प्रीति-योग की अपेक्षा भक्ति-योग मे मन की निर्मलता, स्थिरता अधिक होती है, चित्त की प्रसन्नता अधिक होती है, विषयो के प्रति विरक्ति, कषायो की मन्दता और गुणानुराग तीव्र होता है।

प्रीति-योग मे परमात्म-दर्शन के लिये तरसता साधक कभी-कभी निराश हो जाता है, परन्तु भक्ति-योग मे प्रविष्ट साधक कदापि निराश नही होता, क्योकि उसकी श्रद्धा दृढतर बनती है। हजारो अन्तराय आने पर भी श्रद्धा के उस गढ की एक ककरी भी नही गिरती, परन्तु वह उत्तरोत्तर दृढतर बनती जाती है।

फिर भी प्रीति नीव है, उस पर भक्ति रूपी भव्य प्रासाद का निर्माण होता है।

इस प्रकार प्रीति और भक्ति परस्पर गुथे हुए हैं। प्रीति मे आकर्षण मुख्य है, भक्ति मे स्थिरीकरण मुख्य है, तो भी दोनो अपने-अपने स्थान पर समान महत्त्व के है।

प्रश्न—प्रीति राग स्वरूप है और राग पाप-स्थानक होने से कर्म-बन्धन का हेतु है, तो उसके द्वारा परमात्म-दर्शन कैसे हो सकता है?

उत्तर—कचन, कामिनी, काया आदि बाह्य पदार्थों के प्रति की प्रीति अप्रशस्त राग-स्वरूप होने से वह अशुभ कर्म-बन्धक होती है, परन्तु परमात्मा, सद्गुरु एव स्वधर्मी आदि की प्रीति प्रशस्त राग-स्वरूप होने से शुभ कर्म की बन्धक होती है तथा यह विशुद्ध भक्ति-भाव उत्पन्न करने वाली होने से आने वाले अशुभ कर्मों को रोक कर पूर्व कर्मो का भी विनाश करती है। इसलिये वह परमात्म-दर्शन का प्रथम साधन है।

प्रश्न— असग अनुष्ठान अथवा समाधि अथवा तन्मय अवस्था परमात्म-दर्शन के साधन हैं, यह बात तुरन्त समझ मे आ जाती है, परन्तु प्रीति से परमात्म-दर्शन कैसे होता है?

उत्तर—प्रीति निष्काम और निरुपाधिक प्रेम-स्वरूप है वह भक्ति, वचन और असग अनुष्ठान का मूल है।

श्रद्धा, रुचि अथवा इच्छा जागृत हुए बिना किसी भी साधना का प्रारम्भ हो ही नही सकता, तथा साधना-काल मे भी श्रद्धा, रुचि अथवा इच्छा उत्तरोत्तर प्रबल होती जाती है तो ही साधना की सिद्धि होती है। अत प्रीति परमात्म-दर्शन का मूल कारण है।

प्रश्न—आत्म-ज्ञान अथवा अन्य योग-साधना से भी आत्म (परमात्म) दर्शन हो सकता है तो परमात्म-भक्ति को ही क्यो प्रधान मानते हैं?

उत्तर—आत्म-ज्ञान अथवा आत्म-स्मरण आदि समस्त प्रकार के योग भी परमात्म-भक्ति से उत्पन्न होने से परमात्म-भक्ति-स्वरूप हैं, क्योकि शास्त्रो मे भक्ति का विशाल अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

(१) आश्रव रूपी असयम का त्याग और सवर रूपी सयम का सेवन ही सच्ची परमात्म-भक्ति है।

(२) परमात्मा का आज्ञा त्रिविध रूप से पालन करना ही उनकी पारमार्थिक भक्ति है।

(३) परमात्मा का वचन (शास्त्र) उनकी आज्ञा स्वरूप है, अत शास्त्रोक्त (गुरु-विनय, शास्त्र-श्रवण, अहिंसा, सयम और तप आदि) सद् अनुष्ठान भी परमात्मा की आज्ञा का पालन-स्वरूप परम भक्ति है।

(४) आत्म-स्वरूप मे रमण करना भी परमात्मा की परा—भक्ति स्वरूप है।

(५) शास्त्र निर्दिष्ट उत्सर्ग-भाव-सेवा एव अपवाद भाव सेवा का * विस्तृत स्वरूप समझने से ध्यान आयेगा कि चौथे गुण-स्थानक से चौदहवे गुण-स्थानक तक की समस्त प्रकार की साधना भी परमात्म-भक्ति ही है।

प्रश्न—श्री जिनागमो मे वर्णन है कि सम्यग्-दर्शन की प्राप्ति गुरु-उपदेश (अधिगम) और सहज स्वभाव (निसर्ग) से भी हो सकती है। उसमे अनायास ही प्राप्त होने वाले सम्यग् दर्शन के लिये तो परमात्म-भक्ति की कोई आवश्यकता नही पडती न ?

उत्तर—परमात्मा की भक्ति के बिना कोई भी गुण प्रकट हो ही नही सकता। अत. सम्यग्दृष्टि की प्राप्ति के समय भी प्रत्येक जीव जब परमात्मा

---

* उत्सर्ग भाव सेवा और अपवाद भाव सेवा का स्वरूप समझने के लिये पढे—'परमतत्त्व की उपासना' लेखक—पूज्य आचार्य श्री कलापूर्ण सूरीश्वर जी म

का प्रेम और भक्ति-पूर्वक ध्यान करके परमात्मा के साथ तन्मय हो सकता है, तब ही उसे सम्यग्दर्शन (आत्म-दर्शन) प्राप्त होता है, उसके बिना प्राप्त नही होता।

अपूर्व भावोल्लास-पूर्वक परमात्मा का स्मरण करने से, उनके गुणो पर मनन करने से उनकी मूर्त्ति की पूजा करने से, उनके द्वारा प्ररूपित धर्म की आराधना करने से और उनकी किसी एक अवस्था मे रमण करने से आत्मा मे एक भारी ऊहापोह उत्पन्न होता है और उसके परिणाम-स्वरूप आत्मा स्व-दर्शन प्राप्त कर सकती है।

अपनी आत्मा की ही भावी परम विशुद्ध अवस्था को उत्कृष्ट प्रकार का सम्मान प्रदान करने की योग्यता सम्यग् दर्शन की प्राप्ति के पश्चात् ही प्रकट होती है और सम्यग्-दर्शन की प्राप्ति परमात्मा की प्रीति-भक्ति के द्वारा ही होती है। विशेष जिज्ञासुओ को उसके लिये कार्य-कारण भाव के अटल नियम का रहस्य समझना चाहिये।

वह निम्न लिखित है —कोई भी छोटा या बडा कार्य दो प्रकार के कारणो की अपेक्षा रखता है। जिस प्रकार घड़ा बनाने मे मिट्टी, चक्र, डण्डा आदि कारणो की अपेक्षा रहती है। उसमे मिट्टी उपादान (मूल) कारण है और चक्र, डडा आदि निमित्त कारण हैं, सहयोगी कारण हैं। उसी प्रकार से मोक्ष-प्राप्ति मे सम्यग्-दर्शन आदि आत्म-गुण उपादान कारण हैं और परमात्म-भक्ति आदि निमित्त कारण हैं।

जिस प्रकार चक्र, डडा आदि सहयोगी कारणो के बिना घडा नही बन सकता, उसी प्रकार से परमात्मा की भक्ति के बिना सम्यग्-दर्शन आदि गुण प्रकट नही हो सकते, तो फिर मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है?

प्रश्न—परमात्मा का प्रेम-पूर्वक गुण-गान और ध्यान किये बिना आत्म-दर्शन क्यो नही होता?

उत्तर—अनादि काल से राग-द्वेष आदि आन्तरिक दोषो से घिरा हुआ जीव शरीर, सम्पत्ति, सुन्दरी और इन्द्रिय-सुख आदि अशुभ निमित्त

पाकर उनमे ही आसक्त रहता है, जिससे उसे स्वत: आत्म-भान होना दुष्कर है, परन्तु जब उसे श्री अरिहन्त परमात्मा का शुभ आलम्बन मिलता है, तब उनकी असीम उपकारी महिमा सुन कर उनके प्रति प्रेम एव भक्ति जागृत होती है और क्रमश उनका नाम-स्मरण, पूजा, स्तवन, वन्दन, प्रार्थना आदि करने से साधक का हृदय निर्मल, निर्मलतर होता जाता है। अशुभ सकल्प-विकल्पो की लहरें शान्त होने पर चित्त-सागर प्रशान्त एव स्थिर हो जाता है तब परमात्मा का सालम्बन-ध्यान करने की शक्ति साधक मे प्रकट होती है।

ध्यान मे तन्मय होने पर ध्येय-स्वरूप परमात्मा का ध्याता के निर्मल चित्त मे और अन्तरात्मा मे प्रतिबिम्ब पडता है।

उस समय ध्याता, ध्येय एव ध्यान की एकता-रूप समापत्ति सिद्ध होती है। उसे ही परमात्मा-दर्शन कहते हैं।

इस प्रकार अनेक बार के अभ्यास से साधक परमात्मा के साथ अभेद प्रणिधान सिद्ध करके आत्म-दर्शन (आत्मानुभूति) प्राप्त करता है।

आत्मानुभूति केवल अनुभव-गम्य है। यह अनुभव भौतिकता से विरक्त हुए बिना नही होता। अनुभव का उक्त द्वार खोलने के लिये परमात्मा को भक्ति-भाव-सिक्त हृदय से भजना पडता है। बाह्य जगत मे बिखरे मन को परमात्मा मे केन्द्रित करना पडता है। ऐसे केन्द्रीकरण के लिये परमात्मा के गुणो का गान एव ध्यान नितान्त आवश्यक है।

प्रश्न—क्या प्राणायाम आदि प्रक्रिया द्वारा चित्त को स्थिर अथवा शून्य करके हठ-समाधि द्वारा आत्म-दर्शन नही प्राप्त किया जा सकता? आज अनेक व्यक्ति इस प्रकार के प्रयोग करते है उसका क्या?

उत्तर—चित्त की शून्य अवस्था करने मात्र से ही आत्म-दर्शन नहीं होता। यदि चित्त की शून्य अवस्था करने मात्र से ही आत्म-दर्शन हो सकता हो तो समस्त एकेन्द्रिय आदि असज्ञी जीवो को स्वत सिद्ध आत्म-दर्शन मनना पडता है क्योकि उनके मन होता ही नही।

तथा चित्त की अकेली स्थिरता से भी आत्म-दर्शन नही हो सकता क्योकि ऐसी स्थिरता अपना भक्ष्य (शिकार) प्राप्त करने के लिये एकाग्र होने वाले बुगलो, बिलावो आदि मे कहाँ नही होती ?

अत आत्म दर्शन की प्राप्ति (आत्मानुभूति) तो चित्त की निर्मलता युक्त स्थिरता एव तन्मयता द्वारा ही हो सकती है ।

इस प्रकार की चित्त की निर्मलता परमात्मा, सद्गुरु अथवा उनके द्वारा प्रदर्शित अहिंसा आदि व्रतो की उपासना के द्वारा ही हो सकती है, परन्तु केवल बाह्य प्रयोगो से नही हो सकती ।

मलिन दर्पण मे पदार्थ का प्रतिबिम्ब प्राप्त करने की क्षमता नही होती उसी प्रकार से राग-द्वेष-युक्त मलिन मन को आत्म-सवेदन का स्पर्श नही होता ।

चित्त को विशुद्ध करके आत्मानुभूति करने के लिये 'परमात्म-भक्ति' प्रधान साधन है ।

परमात्म-भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए साधक को परमात्म-दर्शन अवश्य होता है ।

परमार्थ से परमात्मा की दर्शन-पूजा स्व-आत्मा की दर्शन-पूजा है ।

समस्त कर्म रहित शुद्ध आत्मा परमात्मा है, कर्म-ग्रस्त आत्मा जीवात्मा है ।

जीवात्मा परमात्मा तब ही बन सकती है, जब वह अनन्य भाव से परमात्मा की शरण अगीकार करती है, परमात्मा के आलम्बन का त्रिविध से स्वीकार करती है ।

परमात्म-तत्त्व आत्म-बाह्य तत्त्व नही है, परन्तु आत्म-तत्त्व का ही परम विशुद्ध स्वरूप है । उसका प्रकटीकरण पूर्ण विशुद्ध परमात्म।की उत्कृष्ट भक्ति के द्वारा होता है ।

इस प्रकार परमात्मा की भक्ति के प्रताप से साधक की आत्मा विशुद्ध, विशुद्धतर भूमिका को प्राप्त करती-करती अन्त मे परमात्मा बन जाती है।

प्रश्न—क्या जिनागमो मे भक्ति का स्थान है ?

उत्तर—भक्ति एव विनय पर्यायवाची हैं, एकार्थक है। आगम ग्रथो मे विनय एव भक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन मे विनय की शिक्षा दी गई है।

श्री आवश्यक सूत्र मे चउवीसथ्थो एव वन्दन अध्ययन द्वारा भी देवाधि-देव परमात्मा एव गुरु की विनय (भक्ति) को आवश्यक कर्त्तव्य के रूप मे व्यक्त किया गया है।

'चैत्यवन्दन भाष्यादि' ग्रन्थो मे परमोपकारी श्री अरिहन्त परमात्मा की भक्ति, शास्त्रोक्त विधि पूर्वक चैत्यवन्दन करने के सुन्दर निरूपण द्वारा व्यक्त की गई है।

एव चैत्यवन्दन (स्तुति) का फल स्पष्ट करते हुए कहा है कि जो व्यक्ति विधिपूर्वक भावोल्लास से चैत्यवन्दन करता है, वह शीघ्र परमात्म-दर्शन, सम्यग्-दर्शन आदि प्राप्त करके क्रमश परम पद प्राप्त करता है।

'श्री उवसग्गहर स्तोत्र' मे श्रुतकेवली भगवत श्री भद्रबाहु स्वामीजी ने भक्ति-पूर्ण हृदय से श्री पार्श्वनाथ परमात्मा की स्तुति करके उसके फल के रूप मे बोधि-परमात्म-दर्शन की याचना की है।

'श्री जयवीयराय सूत्र' मे पूर्ण विनय-भक्ति झलक रही है।

'नमस्कार महामत्र' मे भी 'नमो' शब्द परमात्मा की प्रीति एव भक्ति का द्योतक है। 'श्री दशवैकालिक सूत्र' मे विनय-भक्ति को धर्म-वृक्ष की मूल कहा गया है।

ज्ञानादि पाँचो आचारो मे भी विनय-भक्ति व्याप्त है।

प्रात. स्मरणीय गणधर भगवत श्री गौतम स्वामीजी की अनन्त लब्धियो के मूल मे भी परमात्मा श्री महावीर प्रभुजी के प्रति उनका उत्कृष्ट विनय निहित है।

इस प्रकार शास्त्रो मे अनेक विधि से विनय-भक्ति की व्यापकता व्याप्त है।

परमात्मा की दर्शन-पूजा करते समय साधक के हृदय मे परमात्मा के प्रति अपूर्व प्रेम उत्पन्न होता है तब वह परमात्मा के गुणो की स्तुति करने के लिये तत्पर होता है।

स्तुति, स्तवन, चैत्यवन्दन अथवा प्रार्थना के द्वारा परमात्मा के अद्भुत गुणो का गान किया जाता है। भावोल्लास पूर्वक किये गये गुण-गान से परमात्मा के प्रति प्रकृष्ट भक्ति-भाव जागृत होता है। परमात्म-भक्ति के द्वारा अनुक्रम से वचन एव असग अनुष्ठानो मे हमारा प्रवेश होता है और भक्त के मन-मन्दिर मे भगवान का पवित्र निवास होता है।

प्रश्न—प्रीति-भक्ति का लक्षण क्या है ?

उत्तर—जव परमात्मा के प्रति प्रीति-भक्ति प्रकट होती है तव अन्य समस्त पदार्थों की ओर का राग-प्रेम क्षीण होने लगता है, विपय—विमुखता एव कपाय-मदता मे वृद्धि होती है, क्षण-क्षण मे परमात्मा का स्मरण होता है, समग्र शरीर मे रोमाच होने लगता है, नेत्रो मे हर्पाश्रु उमड पडते हैं, मन मे अपूर्व शान्ति छा जाती है और अन्तःकरण निरभ्र गगन के समान निर्मल हो जाता है।

शास्त्र मे प्रीति-भक्ति अनुष्ठान के निम्नलिखित लक्षण वताये गये हैं—

प्रीति—यत्रादरोऽस्ति परम प्रीतिश्च
हितोदया भवति कर्तु ।
शेपत्यागेन करोति यच्च,
तत् प्रीति अनुष्ठानम् ॥

अर्थ —जिस (अनुष्ठान) मे परम आदर एव परम प्रीति होती है, वह प्रीति कर्त्ता के लिये हितोदय करने वाली होती है और शेष (प्रवृत्ति) के त्याग से जो करता है, वह प्रीति अनुष्ठान है।

तात्पर्य यह है कि परम तारणहार परमात्मा के प्रति परम आदर एव परम प्रीतिमय तथा अन्य समस्त प्रवृत्तियो के त्याग से परिपूर्ण जो अनुष्ठान होता है, उसे प्रीति अनुष्ठान कहा जाता है।

भक्ति—अनुष्ठान के विपय मे शास्त्रो मे कहा है कि—

गौरवविशेषयोगाद् बुद्धिमतो यद्विशुद्धतरयोगम् ।
क्रियेतर तुल्यमपि ज्ञेय तद्भक्त्यनुष्ठानम् ॥

—१०—४, (षोडशक प्रकरण)

अर्थ.—विशेष गौरव (पूज्य-भाव, सम्मान) के योग से बुद्धिमान पुरुष का जो विशुद्धतर योग वाला अनुष्ठान उस क्रिया के (अन्य व्यक्ति द्वारा किये गये प्रीति अनुष्ठान से) तुल्य प्रतीत होता हो तो भी वह भक्ति-अनुष्ठान होता है। अर्थात् भक्ति-अनुष्ठान मे परमात्मा के प्रति पूज्य-भाव, आदर-भाव विशेष होता है।

आशा ही नही विश्वास है कि प्रीति-भक्ति सम्बन्धी इस प्रश्नोत्तरी से परमात्म-पद की साधना के सुज्ञ साधक को श्री जिनोक्त साधना की सगीनता मे अटूट श्रद्धा उत्पन्न होगी और परमात्मा को सच्ची श्रेष्ठ भावना से स्मरण करने का बल प्राप्त होगा।

सासारिक पदार्थों के प्रति भावना रखने मे आत्मा का सम्मान नही होता, उसका अपमान होता है, आत्मा का सम्मान तो श्री जिनेश्वर देव द्वारा फरमाये धर्म की आराधना करने से ही होता है। उस आराधना का प्रारम्भ परमात्म-प्रीति है। उस सत्य को अगीकार करके सब लोग परम कल्याणकारी परम पद की उपासना मे अग्रसर हो।

वचन-योग



शास्त्र के सम्मान से परमात्मा का सम्मान



परमात्म प्रीति एव भक्ति मे अग्रसर साधक परमात्मा के प्रति तीव्र अनुरागी और दृढ श्रद्धालू वनता है।

उक्त अनुराग एव श्रद्धा ज्यो-ज्यो दृढतर होते जाते है, त्यो-त्यो साधक के हृदय मे परमात्मा के वचनो के प्रति सम्मान मे वृद्धि होती जाती है और श्री जिन-आज्ञानुसार जीवनयापन करने की लौ लगती है।

सचमुच, परमात्मा की आज्ञा का पालन ही परमात्मा की तात्त्विक सेवा-भक्ति है, क्योकि जब तक पूजनीय व्यक्ति के वचनो पर श्रद्धा नही उत्पन्न होती, तव तक उनकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति करने की इच्छा भी नही होती और जव तक उनकी आज्ञानुसार जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति नही होती, तव तक उनकी कृपा एव अनुग्रह प्राप्त करने की भूमिका पर नही पहुँचा जाता। उसके विना साधना-मार्ग मे प्रगति नही की जा सकती।

किसी सासारिक मनुष्य की कृपा भी उसके अनुकूल चलने वाले मनुष्य को ही प्राप्त होती है। लोकोत्तर धर्म-मार्ग मे भी यही नियम चलता है।

"आज्ञाराद्धा विराद्धा च, शिवाय च भवाय च ॥"

यह सूत्र उक्त नियम का समर्थन करता है।

या तो आज्ञा मानो और शिव-पद का वरण करो, या आज्ञा का उल्लघन करो और भीषण भव वन मे भटकते रहो। इन दो के अतिरिक्त तीसरा कोई विकल्प नही है।

अत: आध्यात्मिक मार्ग मे प्रगति के अभिलाषी साधक को परमात्मा एव उनसे परिचय कराने वाले सद्गुरु की कृपा और अनुग्रह अवश्य प्राप्त करना चाहिये और उसे प्राप्त करने के लिये आज्ञा-प्रधान जीवन जीना ही चाहिये।

तब साधक के समक्ष प्रश्न उठता है कि, "परमात्मा की आज्ञा क्या होगी, जीवन मे उसका पालन किस प्रकार होगा और परमात्म-कृपा किस प्रकार प्राप्त होगी ?"

इन समस्त प्रश्नो का समाधान करने के लिये वह सद्गुरु की शरण मे दौडता है और वहाँ से उसे ज्ञात होता है कि परमात्मा के शास्त्र ही परमात्मा के वचन हैं। उनमे वर्णित हेय, ज्ञेय, उपादेयता को जीवन मे आत्मसात् करना ही परम कृपालू परमात्मा की परम पावन आज्ञा है।

आत्मा को स्वभाव से भ्रष्ट करने वाले जो जो तत्त्व हैं, जो जो वृत्तियाँ और प्रवृत्तियाँ है उनका त्रिविध त्याग करना और जो जो वृत्तियाँ प्रवृत्तियाँ आत्मा को स्वभाव मे स्थिर बनाने वाली हैं, उनका त्रिविध अत्यन्त सम्मानपूर्वक स्वीकार करना ही परम पिता परमात्मा की सर्व-कल्याणकारी आज्ञा का निष्कर्ष है।

आज्ञा का उल्लघन करके कोई आत्मा को स्वभाव मे स्थापित नही कर सका और स्वभाव मे रमण करने के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति पर-भाव मे रमणता को टाल नही सका। पर-भाव-रमणता भयानक पराधीनता है, जबकि आज्ञानुसारिता उत्कृष्टतम स्वतन्त्रता की टिकिट है।

अत. परम स्वतन्त्रता के इच्छुक मनुष्य, मुक्ति-कामी मनुष्य अपार उल्लास से श्री जिनाज्ञा का पालन करते हैं आज्ञा-पालक जीवन को जीने योग्य मानते हैं, आज्ञा-निरपेक्ष जीवन मे एक साँस लेने मे व्याकुल होते हैं।

इस प्रकार की जिनाज्ञा का पालन जीवन मे तब ही किया जा सकता है जब जीवन का प्रत्येक क्षण शास्त्रानुसार व्यतीत हो और वह तब ही सम्भव हो सकता है यदि शास्त्रो का ससम्मान अध्ययन, मनन, चिन्तन और परिशीलन किया जाये।

दीपक अन्धकार मे ज्योति भरता है, उसी प्रकार से शास्त्र त्रिलोकवर्ती पदार्थों के स्वरूप को यथार्थ स्वरूप मे प्रकाशित करते हैं जिससे अज्ञानान्धकार मे घुटते जीव को स्व-स्वरूप का दर्शन होता है, इस जीव ने अनन्त वार भौतिक पदार्थो का उपभोग किया, फिर भी उसकी प्यास वुझी ही नही—उस सत्य का दर्शन होता है।

कर्म-सत्ता ने एक वार श्रेष्ठतम पौद्गलिक पदार्थ प्रदान करके आत्मा का स्वागत, आतिथ्य किया और दूसरी वार वीभत्स से वीभत्स पदार्थों का उपयोग करने के लिये उसे मजवूर करके उसका क्रूरतापूर्ण उपहास किया, तो भी चेतन की पौद्गलिक आसक्ति नही मिटी।

यह सव चिन्तन श्री जिनोक्त शास्त्रो के अध्ययन के द्वारा ही सम्भव है, इसके विना हो ही नही सकता। सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा द्वारा प्ररूपित शास्त्र ही लोकालोक का वास्तविक ज्ञान करा कर जीवो को सुमार्ग की ओर उन्मुख करके दुर्गति मे डूवने से वचा सकते हैं।

"जो मनुष्य ऐसे सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा द्वारा प्ररूपित शास्त्रो की उपेक्षा करके अदृष्ट अतीन्द्रिय आत्मा, धर्म और परमात्मा जैसे विषयो मे चोंच डालने का प्रयास करते हैं वे कदम-कदम पर ठोकर खाकर अत्यन्त दु खी होते हैं।"

सर्वज्ञ परमात्मा के शास्त्रो का सम्मान वास्तव मे सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा का ही सम्मान है। इसलिये ही स्वरचित 'ज्ञानसार' के शास्त्राष्टक मे पूज्य उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज फरमाते हैं कि—

"शास्त्रे पुरस्कृते तस्माद् वीतराग पुरस्कृत ।
पुरस्कृते पुनस्तस्मिन् नियमात् सर्वसिद्धय· ॥"

अर्थ·—शास्त्र को आगे करने से श्री वीतराग परमात्मा की आज्ञा-पालन-स्वरूप पराभक्ति होने से वीतराग ही आगे होते है और उनके प्रभाव मे समस्त योगो की सिद्धि होती है।

अर्थात् जिन्हे श्री वीतराग तीर्थंकर परमात्मा के वचनो के प्रति आदर, सम्मान, श्रद्धा हो और जो तदनुरूप आचरण करने के लिये सतत प्रयत्नशील हो, उन्होने सचमुच श्री वीतराग तीर्थंकर परमात्मा का ही यथार्थ रूप से सम्मान किया कहा जायेगा और उन्हें समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होगी।

शास्त्रो का इतना असाधारण महत्त्व प्रदर्शित करने का उद्देश्य यही है कि भूतकालिक, वर्तमान-कालिक एव भावी समस्त तीर्थंकर देवो की आज्ञा नि शक होकर पालन करने की अपार शक्ति प्राप्त होती है।

वह आज्ञा यही है कि हेय का त्याग करो, उपादेय का स्वीकार करो।

आश्रव हेय-त्याज्य है, क्योकि वह ससार-वृद्धि का कारण है, जबकि सवर उपादेय है क्योकि वह मोक्ष का कारण है।

एक तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञा का सम्मान करने से समस्त तीर्थंकर देवो की आज्ञा का सम्मान होता है और एक तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञा का अपमान करने से समस्त तीर्थंकर देवो की आज्ञा का अपमान होता है, क्योकि सब कालो के समस्त तीर्थंकर देवो की आज्ञा का तात्त्विक स्वरूप एक ही प्रकार का होता है। उसका सार है—आत्म-तत्त्व की आराधना, समस्त जीवो के प्रति आत्मवत् भाव और आत्म-समदर्शित्व।

शास्त्रों का महत्त्व

श्री जिन-वचन की अगभूत शास्त्र सापेक्ष क्रियाएँ ही सुफल दायिनी सिद्ध होती हैं, शास्त्र निरपेक्ष क्रियाएँ सुफलदायिनी नही होती।

शास्त्र बाती एव घी विहीन दिव्य दीपक है।
शास्त्र अहकार रूपी गज का अकुश है।
शास्त्र स्वच्छन्दता के ज्वर को उतारने वाली औषधि है।
शास्त्र पाप रूपी पक का शोषण करने वाला सूर्य है।
शास्त्र पुण्य को पुष्टता प्रदान करने वाला उत्तम रसायन है।

शास्त्र सर्वतोगामी चक्षु है।

शास्त्र समस्त प्रयोजन सिद्ध करने वाला कल्प-तरु है।

शास्त्र अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाला तेजस्वी तारा है।

शास्त्र द्वितीय दिवाकर एव तृतीय लोचन है।

शास्त्र जीवन की ज्योति, अन्तर की उषा और उज्ज्वल भविष्य की भीड़ है।

शास्त्र मोह के साम्राज्य को परास्त करने वाला अमोघ शस्त्र है।

शास्त्र विकार के वादल को विलय करने वाली विराटकाय वायु है।

शास्त्र पर-भाव को परास्त करके स्व-भाव मे स्थिर करने वाला सद्‌गुरु है।

शास्त्र सच्चा सखा, वन्धु, मित्र, स्नेही और वैद्य है।

शास्त्र पयोधि के विना ही प्रगट हुआ पीयूष और अन्य की अपेक्षा मे रहित ऐश्वर्य है।

शास्त्र धर्म रूपी उद्यान को पुलकित करने वाली अमृत की नाली है।

इस प्रकार के अपार उपकारी शास्त्रो पर (श्री जिन-वचन पर) जिसे अनन्य श्रद्धा है, जो शास्त्रो मे वर्णित आचारो का पालन करने वाला है, जो शास्त्रो का ज्ञाता एव उपदेशक है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे, व्यवहार मे शास्त्र को अपना नेत्र वनाकर चलता है, ऐसा योगी परम-पद प्राप्त करता है।

प्रश्नः—शास्त्रो का इतना गुण-गान क्यो किया गया है ?

उत्तर—शास्त्र सर्वज्ञ वीतराग श्री तीर्थंकर परमात्मा के वचनो का सग्रह है।

श्री तीर्थंकर परमात्मा की अनुपस्थिति मे उनके वचन ही भव्य जीवो के लिये आधार हैं।

विशिष्ट ज्ञानी भगवत के अभाव मे भी उनके समान ही सूक्ष्म ज्ञान शस्त्रो के अध्ययन से प्राप्त होता है। केवल-ज्ञानी भगवत केवल-ज्ञान के वल से जैसा प्ररुपण कर सकते है, उसी प्रकार का प्ररुपण श्रुतकेवली भगवत श्रुत के अध्ययन से कर सकते हैं।

शास्त्र परमात्मा के वचन का अंग होने से परमात्मा के समान ही पूजनीय है।

कहा है कि—"जिनवर जिन आगम एक रूपे।
सेवता न पड़ो, भव-कूपे।"

तात्पर्य यह है कि स्वय श्री जिनराज के समान उनके वचन और उनके सग्रह के रूप मे आगम भी जीव को भव रूपी अगाध अधकारपूर्ण कुएँ मे गिरने से वचाकर प॰म-पद पर प्रतिष्ठित करते हैं।

'एक अपि जिन वचन निर्वाहको भवति' अर्थात् श्रीजिनराज का एक वचन भी उनके अनन्य शरणागत को भव-सागर से पार करता है।

श्री जिन-वचन की यह अद्वितीय विशेषता है कि उसे ग्रहण करके ज्यो ज्यो उसका मनन करते हैं, त्यो-त्यो उसमे से आत्म-स्नेहवर्धक माधुर्य प्रस्फुटित होता है।

जो-जो आत्मा परम-पद को प्राप्त हुई हैं, प्राप्त हो रही है और प्राप्त होगी, वे समस्त श्री जिनोक्त शास्त्राज्ञा के पालन के वल पर ही प्राप्त हुई हैं, प्राप्त हो रही हैं और प्राप्त होगी, यह निस्सन्देह है।

सम्यग्-श्रुत (शास्त्र) के यथार्थ अध्ययन के द्वारा विवेक-दृष्टि खुलती है, जिससे त्याज्य, ग्राह्य एव हिताहित का विवेक उत्पन्न होता है।

विवेक से वैराग्य मे वृद्धि होती है, जड पदार्थों के प्रति राग का क्षय होता है और जीव-तत्त्व के प्रति स्व-तुल्य भाव उत्पन्न होता है, जिससे सयम सुदृढ होता है और उसके द्वारा कर्म-शत्रुओ का अन्त किया जा मकता है तया

अन्त मे आत्मा का सच्चिदानन्दघन स्वरूप प्रकट किया जा सकता है। इसलिये ही तो महा पुरुषो ने शास्त्रो का इतना गुण-गान किया है। कहा है कि—

"यस्य त्वनादर शास्त्रे, तस्य श्रद्धादयो गुणा ।
उन्मत्तगुणतुल्यत्वान्न प्रशसास्पद सताम् ॥"

अर्थ —जिसे शास्त्र के प्रति अनादर होता है, उसके श्रद्धा आदि गुण उन्मत्त व्यक्ति के गुणो के समान होने से सत पुरुषो द्वारा प्रशसा-पात्र नही हो पाते।

परन्तु जिस भाग्यशाली व्यक्ति को शास्त्रो के प्रति भक्ति होती है उसके लिये वह शास्त्र-भक्ति मुक्ति-दूत हो सकती है। इस प्रकार शास्त्र के अधीन बना साधक ही साधना के क्षेत्र मे यथार्थ रूप से प्रगति कर सकता है।

शास्त्र फरमाते हैं कि देव, गुरु, धर्म की परतन्त्रता स्वीकार करने वाला धन्य व्यक्ति सर्व कर्म परतन्त्रता से सर्वथा मुक्त होकर मुक्ति का अधिकारी हो सकता है।

जिनका त्रिभुवन पर एक-छत्र राज्य है उन श्री अरिहन्त परमात्मा की आज्ञानुसार जीवनयापन करने वाले भाग्यशाली की सुरक्षा का सम्पूर्ण उत्तर-दायित्व धर्म-महासत्ता वहन करती है। उनकी साधना मे आवश्यक शक्तियो का योग, विकसित शक्तियो का क्षेम (सुरक्षा) योगक्षेमकर परमात्मा के अचिन्त्य सामर्थ्य से होता है।

इस प्रकार परमात्म-आज्ञा योग-क्षेम करके साधक की साधना मे प्राणो का सचार करती है, उसे वेगवती बनाती है।

आज्ञापालन अर्थात् आज्ञा-पालन। उसमे तर्क के लिये कोई स्थान नही है। यदि कोई सैनिक अपने सेनापति की आज्ञा का पालन करने के समय आज्ञा का पालन करने के बदले तर्क करता है तो वह दण्ड का भागी होता है। उसी तरह से जो मनुष्य त्रिभुवन-पति श्री अरिहत परमात्मा की सर्वथा निरवद्य आज्ञा का पालन करने के अवसर पर यदि तर्क करते हैं, कि यह आज्ञा

पालने से सचमुच लाभ होगा अथवा नही, होगा तो कितने समय मे होगा ? होने के पश्चात् वह लाभ स्थायी रहेगा अथवा नही, वे एक ऐसी उलझन मे फस जाते हैं जिसमे से बाहर निकलना उनके बस की बात नही होती ।

महान् मोह रूपी पहलवान (मल्ल) को मात करने का परम सामर्थ्य केवल श्री जिनाज्ञा मे है, उसके त्रिविध पालन मे है। इस सत्य मे सम्पूर्ण श्रद्धा रखने वाला साधक तो श्री जिनेश्वर देव और उनकी आज्ञा को त्रिविध से समर्पित सद्गुरु को समर्पित होकर साधन-पथ मे अग्रसर होता रहता है और परमात्मा के समीप पहुँचता जाता है ।

ज्यो-ज्यो वह समीप पहुँचता है, त्यो-त्यो उसकी दर्शन, मिलन की अभिलाषा अदम्य होती जाती है, तीव्रतर होती जाती है, स्वरूप-सवेदन अधिक सजीव होता जाता है, आत्मा एव परमात्मा के मध्य की अभेद की अनुभूति जाज्वल्यमान होती जाती है और परमात्मा की आज्ञा मे जो आत्मा को परमात्मा बनाने का परम सामर्थ्य होने का शास्त्रीय विधान है वह सर्वथा सही प्रतीत होता है ।

आगमो मे नव-तत्त्व, षड्-द्रव्य, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, क्षायिक आदि पाँच भाव, द्रव्य-गुण-पर्याय, पचास्तिकाय, निश्चय-व्यवहार, उत्सर्ग-अपवाद, सप्तनय और सप्त भगी तथा कर्म का जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूप प्रदर्शित किया गया है उसका अन्तिम तात्पर्य यही है कि आत्मा के स्वरूप का वास्तविक परिचय प्राप्त करके, कर्म की परतत्रता से भव-भ्रमण करती हुई आत्मा को भव-बधन से मुक्ति दिलाकर शाश्वत सुख का भोक्ता बनाना ।

तीन लोको मे सारभूत द्वादशागी है और द्वादशागी का सार निज शुद्ध आत्मा है । तीन लोक से आत्मा अधिक है। आत्मा है तो तीन लोको का ज्ञान है । उस ज्ञान की स्वामिनी आत्मा विश्व की स्वामिनी है ।

द्रव्य से आत्मा ही ऐसी महिमामयी है कि उसके साथ किया गया स्नेह अनन्त लाभ का कारण बनता है। अनन्त अव्याबाध सुख का कारण

भी शुद्धआत्म-स्नेह है। आत्मा ही उपादेय है, ज्ञेय है और ध्येय है। ज्ञात करने योग्य भी आत्मा है और आदरणीय भी एक आत्म-तत्त्व ही है। वह चिन्मय एव आनन्दमय है, नित्य एव स्वाधीन है। सब जानकर भी जिसने एक आत्मा को नही जाना उसने कुछ नही जाना। शुद्ध' निज आत्म-स्वरूप के यथार्थ ज्ञान विहीन समस्त ज्ञान एक के अक विहीन शून्यो के समान है।

जो मनुष्य आत्म-स्वरूप का सच्चा परिचय प्राप्त कर सकते हैं, उन्हे ही परमात्म स्वरूप का सच्चा परिचय प्राप्त होता है।

जिस व्यक्ति ने एक आत्म-तत्त्व का निश्चय कर लिया उसे परमार्थ से समस्त तत्त्व का, समस्त चराचर विश्व का निश्चय हो ही जाता है। कहा है कि--"जो एग जाणई सो सव्व जाणइ" --श्री आचाराग सूत्र

शुद्ध आत्म-स्वरूप का ठोस परिचय प्राप्त होने पर परमात्म-स्वरूप से यथार्थ परिचय हो ही जाता है क्योकि परमात्म-तत्त्व आत्मा से भिन्न तत्त्व अथवा पदार्थ नही है। यह तो आत्म-तत्त्व का ही परम विशुद्ध स्वरूप है जिसका यथार्थ स्पर्श श्री अरिहन्त परमात्मा की भाव युक्त भक्ति के प्रभाव मे साधक को होता है।

इस प्रकार के स्पर्श के पश्चात् डाँवाडोल चित्त अडोलता धारण करता है, निज उपयोग से कदापि भ्रष्ट नही होने वाली आत्मा के उपयोग मे स्थिर रहता है। यह स्थिरता परमानन्द समाधि का बीज बनता है, जो जन्मान्तर मे साधक के साथ रह कर साधक को साध्यमय बनाने का अपना कर्त्तव्य पूर्ण करता है।

इस प्रकार का परमात्म-स्वरूप मेरी आत्म मे भी है यह जानकर उसे प्रकट करने के लिये साधक परमात्मा के नाम आदि निक्षेपा के आलम्बन द्वारा उनके स्मरण और ध्यान मे आगे बढता है।

प्रत्येक छद्मस्थ के लिये परमात्मा के चारो निक्षेपा के आलम्बन आवश्यक ही नहीं, परन्तु अनिवार्य है। इन चार निक्षेपा मे से किसी एक

निक्षेपा का आलम्बन लेकर ही वह मोक्ष-मार्ग की साधना मे आगे बढ सकता है।

श्री जिनाज्ञा के अगभूत शास्त्रो मे पूर्ण श्रद्धा रखने से ऐसी सन्मति प्रकट होती है, जिससे सम्यग्-ज्ञान एव सम्यग् ध्यान मे रमण करता हुआ साधक आत्म-स्वभाव मे, सच्चारित्र मे स्थिरता प्राप्त करता है।

इस प्रकार शास्त्र-योग के द्वारा वचन-अनुष्ठान मे प्रवृत्त साधक अच्छी तरह परमात्म-स्वरूप का ध्यान कर सकता है और उसमे दक्षता प्राप्त करके परमात्मा के अरूपी गुणो के ध्यान-स्वरूप निरालम्बन ध्यान मे प्रवेश करने की योग्यता प्राप्त करता है।

इस स्तर तक पहुँचा हुआ साधक विषय-कषाय की परिणति से परे होकर अन्तरात्म दशा मे स्थिर होता है, उसके चित्त मे सत् के स्वामित्व की स्थापना होती है, चचलता, अधीरता, उत्सुकता आदि के अश भी उसके चित्त के समस्त भागो मे से लुप्त हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि वह आत्म-स्वभावी बन कर परमात्मा के ध्यान मे एकात्म हो जाता है। उस समय उसे इतना अपूर्व आनन्द आता है कि विश्व की कोई भी वस्तु चाहे वह मणि हो अथवा माणिक, कनक हो अथवा कामिनी, पुष्प हो अथवा कटक तनिक भी राग अथवा द्वेष का कारण नही बनता। अर्थात् परस्पर विरोधी वस्तुओ के प्रति भी वह सम-भाव रखता है और आगे बढ कर मुक्ति एव ससार दोनो के प्रति भी समदृष्टि रखता है, क्योकि ससार का भय सर्वथा नष्ट हो जाने से मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा भी उसके हृदय मे से लुप्त हो जाती है।

इस प्रकार की आन्तरिक दशा ही परा-भक्ति' कहलाती है जो भक्त को भगवत्-स्वरूप की प्राप्ति करा देती है।

इस प्रकार की भक्ति मे ऐसी ऊष्मा और प्रभा होती है कि करोडो वर्षों मे भी क्षय नही होने वाले कठोर कर्मों को भी श्वासोश्वास जितने अल्प समय मे क्षय कर डालती है।

इस प्रकार की भक्ति वचन-अनुष्ठान द्वारा अर्थात् श्री जिनाज्ञा के सम्पूर्ण पालन द्वारा उत्पन्न होती है।

अत: परमात्मा-दर्शन-मिलन की लगन वाले साधक को वचन-अनुष्ठान द्वारा परमात्मा की परा-भक्ति सिद्ध करके आत्म-साधना मे अग्रसर होना चाहिये।

इस प्रकार अग्रसर होने वाला साधक परमात्म-कृपा का अधिकारी होकर आत्मा एव परमात्मा के भेद का छेदन करके परमात्म-मिलन के अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है।

प्रसंग-योग



आत्मिक सुख का अनुभव



प्रीति-भक्ति एवं वचन-योग के यथार्थ स्वरूप को जान-समझ कर अब हम असग-योग के यथार्थ स्वरूप को समझें।

शास्त्र-सापेक्ष प्रवृत्ति करते समय, परमात्मा के प्रति अतिशय आदर-सम्मान वाला साधक जब परमात्म-ध्यान के अभ्यास के द्वारा परमात्म-स्वरूप मे लीन होता है तब उसे अन्तरात्मा मे ही परमात्मा के दर्शन होते है।

ध्यान के द्वारा परमात्मा के शुद्ध स्वरूप मे रमण करने वाला ध्याता ध्यान की धारा को अभग-अखड रूप से धारण करता है तब उसे स्वात्मा मे ही परमात्मा के दर्शन होते हैं—यही तात्त्विक परमात्म-दर्शन है। कहा है कि—

प्रभु निर्मल दर्शन कीजिये,
आतम ज्ञान को अनुभव दर्शन,
सरस सुधा-रस पीजिये.... प्रभु निर्मल०—

ये पक्तियाँ निर्मल प्रभु दर्शन प्राप्त अनुभव-योगी के अनुभव को प्रति-ध्वनित करती हैं।

प्रभु का दर्शन आत्मा का अनुभव स्वरूप है और वह ठोस आत्म-ज्ञान से प्राप्त होता है। आत्मानुभव अथवा आत्मज्ञान का ठोस अनुभव ही वास्तविक प्रभु-दर्शन है, जिसकी मधुरता सरस सुधा-रस से भी अधिक है, अर्थात् आत्मानुभव का आनन्द अपूर्व कोटि का होता है, शब्दातीत होता है। तीन

लोको के किसी भी पदार्थ मे उस प्रकार का आनन्द प्रदान करने की शक्ति नही होती।

प्रत्येक आत्मा सत्ता से सिद्ध परमात्मा के समान है। ज्योति स्वरूप सिद्ध परमात्मा का ध्यान ही वास्तविक परमात्म-दर्शन है।

किसी भी जीव को सम्यग्-दर्शन का स्पर्श होने पर इस प्रकार का परमात्म-दर्शन होता है कि जिसके लिये साधक ने इतना प्रयास किया था, पुरुपार्थ किया था, वही अनन्त सामर्थ्य-निधान परमात्मा उसे अपने अन्तर मे ही प्राप्त होने पर, उनका पुनित-पावन दर्शन होने पर, उसका आनन्द असीम होता है, अनन्त होता है। स्वय मे पूर्णता अवलोकन करके वह परम तृप्ति का अनुभव करता है, परम सुख एव शान्ति का अपूर्व आस्वादन करता है।

अब उसे इन्द्र, चन्द्र आदि की ऋद्धि भी तनिक भी आकृष्ट नही कर सकती। आत्मा के सच्चिदानन्द-धन स्वरूप मे रमणता ही उसे अपूर्व सुख-शान्ति और आनन्द प्रदान करने वाली है, यह सत्य जीवित होता है। पहले जानता था वह सत्य अब उसके जीवन मे प्रकट होता है।

पहले उसे जिस पौद्गलिक सुखाभास मे सुख का भ्रम होता था, वह अब उसे माँग कर लाये आभूपणो की शोभा के समान प्रतीत होता है। माँग कर लाये हुए आभूषणो की शोभा कब तक रहती है? वे आभूषण कितने समय तक आपको आनन्द दे सकेंगे? अल्प समय के लिये ही तो देंगे न? फिर तो वह शोभा और आनन्द नष्ट ही होंगे न? और ऊपर से आपके कष्टो मे वृद्धि ही करेंगे न?

बस, इसी प्रकार से पौद्गलिक सुख भी क्षणिक आनन्द प्रदान करके, दुःखो की परम्परा का मृजन करके वे चले जाने वाले ही हैं, उन पर आत्मा का कोई अधिकार नही होने से वे कदापि स्थायी नही रह सकते। इस सत्य को हजम करके वह स्वभाव-रमणता का सहज आनन्द उठाने मे तन्मय रहता है, लीन रहता है।

यह आनन्द आत्मा के घर का होने से आत्मा के समान अमर है, शाश्वत है, अछेद्य है, अखण्ड है। क्रूर कर्म अथवा कराल काल भी उसका कुछ भी बिगाड नही सकता।

अन्तरात्मा में परमात्म-दर्शन

जिस परमात्मा के दर्शन अन्तरात्मा मे ही हो सकते थे, उनके लिये अनन्त काल तक बाहर ही भटकता रहा जिसका उसे अपार खेद होता है।

जो वस्तु जहाँ न हो, वहाँ उसे चाहे जितनी खोजें तो वह कहाँ से मिलेगी ? नही मिलेगी।

परन्तु सद्गुरु जब ज्ञानाजन से साधक-भक्त की दृष्टि खोलते हैं तब वह आत्म-सुख को बाहर खोजना छोडकर अन्तर्मुखी होता है; अन्तरात्मा मे परमात्म-दर्शन प्राप्त करके अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है और स्वय परमात्मा के गुण-निधान का स्वामी बना हो ऐसा उसे प्रतीत होता है, अर्थात् परमात्मा मे निहित अनन्त गुण स्वय के प्रत्येक आत्म-प्रदेश मे होने का सामान्य अनुभव भी उसे पहली बार होता है।

आत्मानुभव का पराक्रम और सुख

इस प्रकार की परमात्म-गुण की अनुभव रूपी चन्द्रहास खड्ग कदापि म्यान मे नही रह सकती। वह तो मोह रूपी महान् शत्रु का नाश करके ही रहती है। महान् पराक्रम के प्रेरक इस अनुभव के सुख का वर्णन करना असम्भव है, क्योकि वर्णन करने का साधन जिह्वा वहाँ तक पहुँच ही नही सकती।

जिस प्रकार वन मे रहने वाला कोई मनुष्य, राजा का अतिथि बने और विभिन्न पकवानो से युक्त भोजन आदि का आनन्द उठाये, परन्तु जब वह पुनः अपने निवास पर लौटे तब वह वन के सुखो से उन सुखो की तुलना नही कर सकता, क्योकि वन की किसी भी वस्तु मे उसे उस प्रकार के सुख का अश मात्र भी प्रतीत नही होता। उसी प्रकार से अनुभव योगी स्वभाव रमणता

के अलौकिक सुख का जो अनुपम आस्वादन कर रहा हो उसकी वह विश्व किसी भी वस्तु के साथ तुलना नही कर सकता, क्योकि विश्व की किसी भी आत्म-वस्तु के सुख का एक अश भी नही होता।

यह अनुभव-सुख केवल अनुभव-योगी ही प्राप्त कर सकता है। शब्दो के द्वारा इस सुख का शत-शत जिह्वाओ से श्रुत-देवता भी यथार्थ वर्णन नही कर सकते।

साधक जब इस अनुभव-स्तर तक पहुँचता है तब उसे स्वत. ही सब समझ मे आ जाता है।

समता का अनुपम सुख

समता आत्मा की सम्पत्ति है। समता आत्मा का धन है।

आत्मा मे मग्न रहने वाला साधक इस धन का स्वामी होकर उसके अनुभव का अलौकिक आनन्द मना सकता है।

गुलाब के इत्र से पूर्ण हौज मे निश-दिन स्नान करने वाले व्यक्ति को भी इस आनन्द के एक अश का भी कदापि अनुभव नही होता।

समता-सुख के एक अश का यथार्थ वर्णन सैकडो ग्रन्थो मे समाविष्ट हो जाये उतना लेखन करने पर भी नही हो सकता।

उत्तम शास्त्र-ग्रन्थ 'समता' का निरूपण करते हैं, समता के लाभ का वर्णन करते हैं, समता से भ्रष्ट होने पर आत्मा की होने वाली दुर्दशा को सही रूप से प्रस्तुत करते हैं, परन्तु वे समता के अनुभव-गत सुख का वर्णन नही कर सकते। उसका तो अनुभव ही करना पडता है।

शर्करा के स्वाद का वर्णन करने वाले सैकडो ग्रन्थो का पठन करने वाले व्यक्ति को उक्त वर्णन पढने से उसकी मधुरता का अनुभव नही होता जो शर्करा मे होती है।उसकी मधुरता का अनुभव तो तब ही होता है जब वह उसे हाथ मे लेकर मुह मे डालता है और जीभ से चखता है।

फिर भी श्री जिनोपदिष्ट शास्त्रो का यह महान् उपकार है कि जो आत्मा को पहचानने का, उसका सत्कार करने का, उसे अपनाने का चस्का लगाते हैं तथा उसी दिशा मे वे परम उपकारक ज्योति बिखेर कर जीवो को जड पदार्थों के राग मे न रगने की प्राणदायिनी प्रेरणा देते हैं।

श्री जिनोक्त शास्त्र भव अटवी मे भटकते जीवो के लिये उतने ही उपकारी हैं, जितना उपकारी बन मे भूले-भटके प्रवासी को लिये पथ प्रदर्शक होता है।

इस शास्त्र की आँख से साधना के शिखरो पर विजय प्राप्त करने वाला साधक परमात्म-ध्यान मे मग्न होकर ही उक्त समता मुख का अनुभव कर सकता है।

अनुभव-योगी की आत्मिक दशा

परमात्म-स्वरूप के ध्यान मे मग्न बने योगियो को अपनी आत्मा सच्चिदानदमय प्रतीत होती है। इतना ही नही, विश्व की प्रत्येक आत्मा भी सच्चिदानदमय प्रतीत होती है। उनकी दृष्टि मे से कृपा की सतत वृष्टि होती रहती है। उनकी वाणी मे से समता रूपी अमृत झरता रहता है जो त्रिविध तापो से सतप्त जीवो को अपने सान्निध्य मात्र से शीतलता प्रदान कर सकता है।

पर-भाव से मुक्त इस प्रकार के योगी को स्व-भाव सुख का अपूर्व लाभ होने पर फिर विश्व मे प्राप्त करने योग्य कुछ भी शेष नही रहता, पर वस्तु विषयक लालसा का एक अश भी उसके मन के किसी भी भाग मे शेष नही रहता। अतः वह स्वभाव-रमणता मे तन्मय रह सकता है।

चित्त के किसी भी भाग मे यदि पर पदार्थ की स्पृहा होती है तो चित्त स्व मे मग्न नही हो सकता। वह विकल्पो की तरगो मे भटकता रहता है जिससे वह महान् दु ख का कारण बनता है, जबकि निस्पृहता विकल्प की लहरो को शान्त करके समता का अनुपम सुख प्रदान करती है।

घट मे ही सम्पूर्ण समृद्धि के दर्शन

अनुभव-दशा मे वाह्य दृष्टि का प्रसार वंद होता है, जवकि योगी को विश्व की श्रेष्ठतम समृद्धि अपने आत्म-मन्दिर मे ही दृष्टिगोचर होती है जो निम्नलिखित है :—

आत्मानन्द-दायक समता रूपी इन्द्राणी, समाधि रूपी नन्दन-वन और परिषह् उपसर्गों की पखों को भेदने वाले धैर्य रूपी वज्र के साथ स्वात्म वाध रूपी विमान के निवासी मुनि इन्द्र हैं। इन्द्र के वैभव-विलास को ज्योति हीन करने वाले इस वैभव का स्वामी होकर वह आनन्द करता है।

क्रिया रूपी चर्म-रत्न और ज्ञान रूपी छत्र-रत्न का विस्तार करता हुआ और मोह रूपी मलेच्छो द्वारा की गई तीक्ष्ण शर-वृष्टि को निष्फल करने वाला मुनि चक्रवर्ती ही है।

आध्यात्म रूपी कैलाश पर्वत पर विवेक रूपी वृषभ पर सवार योगी विरति रूपी गगा और ज्ञप्ति रूपी गौरी से युक्त साक्षात् 'शिव' की तरह सुशोभित है।

गगा, यमुना एव सरस्वती के तीन प्रवाहो का सगम होने पर जिस प्रकार पवित्र गगा सुशोभित होती है, उसी प्रकार से दर्शन, ज्ञान एव चारित्र के त्रिवेणी सगम के समान 'अरिहन्त पद' भी सिद्ध योगी से दूर नही है।

इस अलौकिक समृद्धि का स्वात्मा मे दर्शन करने वाला योगी निज आनन्द मे मस्त रहता है।

अनुभव-दशा का महत्त्व

इस प्रकार विश्व मे अलभ्य सर्वश्रेष्ठ ऋद्धि-समृद्धि का निवास आत्मा मे ही है जिसका सुमुनि को अनुभव होता है।

अनुभव-ज्ञान अपूर्व वस्तु है जिसे प्राप्त करते के लिये अथक पुरुषार्थ करना पडता है।

शास्त्र उसका केवल निर्देश करते हैं। शेष कार्य उन निर्देशो के अनुसार आचरण करके साधक को करना पडता है।

अहमदाबाद से पालीताना जाने का राजमार्ग मान-चित्र (नक्शा) बतलाता है, परन्तु जिस व्यक्ति को पालीताना पहुँचना है, गिरिराज के स्पर्श का लाभ लेना है उसे तो उस मानचित्र मे प्रदर्शित पथ पर स्वयं चलना ही पडता है। केवल मानचित्र को पकड कर बैठने वाले व्यक्ति को गिरिराज के स्पर्श का आनन्द प्राप्त नही होता।

उसी प्रकार से केवल शास्त्रो के अध्ययन एव उनकी सैकड़ो युक्तियो से आत्मा के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान होता है, परन्तु उसका स्वाद तो तब ही प्राप्त किया जा सकता है जब उसे कार्य करने देकर साधक कुछ नही करने (होने) के उच्चतर आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचता है।

"पर-ब्रह्म अथवा पर ब्रह्ममय परमात्मा का दर्शन करने के लिये लिपि-मयी, वाङ्मयी अथवा मनोमयी दृष्टि भी समर्थ नही हो सकती, परन्तु उसके दर्शन केवल विशुद्ध अनुभव-दृष्टि के द्वारा ही हो सकते हैं।"

"सुषुप्ति, स्वप्न एव जागृत दशा से परे चौथी अनुभव-दशा है, जिसमे मोह एव कल्पना का सर्वथा अभाव होता है।"

अचिन्त्य शक्ति-सम्पन्न आत्मा का प्रकट अनुभव सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रकार के चिन्तन से भी परे है। राग-विहीन अवस्था के चरम शिखर पर ही आत्मानुभव सभव होता है।

शास्त्र-दृष्टि से शब्द-ब्रह्म को ज्ञात करके तदनुसार जीवित रहने वाला योगी अनुभव-योगी बन कर पर-ब्रह्ममय परमात्मा मे लीन हो जाता है। परमात्म-स्वरूप मे लीन बनी आत्मा स्वय को भी परमात्म-तुल्य देखती और जानती है।

इस प्रकार की आत्मा कर्म-मल से लिप्त नही होती, परन्तु ध्यान की तीक्ष्ण धारा के द्वारा पूर्व-कृत कर्मों की निर्जरा करती जाती है।

स्वानुभव दशा का प्रभाव अपरम्पार है। वह स्व-पर उपकारी है, जड के चेतन पर स्वामित्व को नष्ट करने मे अद्वितीय है। इस प्रकार का योगी विश्व के किसी भी क्षेत्र मे रह कर भी सूर्य-चन्द्र से भी अधिक उपकार विश्व पर करता है।

वचन एवं असंगता का कार्य-कारण भाव

वचन-अनुष्ठान के प्रति सर्वथा स्वामि-भक्त (वफादार) रह कर असग अनुष्ठान मे प्रवेश हो सकता है।

'अ-सग' अर्थात् बाह्य-अभ्यतर निर्ग्रन्थता, सर्व सग रहितता।

जिस प्रकार डडे से चक्र को घुमाने के पश्चात् कुछ समय तक डडे की सहायता के बिना भी वह चक्र (चाक) घूमता रहता है, उसी प्रकार से सम्यग्-ज्ञान की तीक्ष्णता द्वारा ध्यान मे तन्मय बना साधक अमुक समय तक शास्त्र-ज्ञान की सहायता के बिना भी स्व स्वरूप के ध्यान मे लीन रह सकता है। तब वचन-अनुष्ठान असग-अनुष्ठान का कारण बनता है और असग-अनुष्ठान उसका कार्य बनता है।

असग दशा का काल अत्यन्त अल्प होता है। अत: कुछ समय तक आत्म-अनुभव का आस्वादन करके साधक पुनः वचन-अनुष्ठान का आश्रय लेता है

इस असग दशा मे ध्याता, ध्यान और ध्येय की एकतारूप समापत्ति सिद्ध होती है, सकल्प-विकल्प की ऊर्मिया शान्त हो जाती हैं और चित्त की अनुपम स्थिरता के द्वारा अविकल्प दशा की अनुभूति होती है, जिसमे निरजन-निराकार-ज्योति-स्वरूप सत्ता से सिद्ध परमात्मा तुल्य आत्मा की साक्षात् अनुभूति होती है। उस समय स्वभाव के सर्वोत्कृष्ट सुख का अनुभव होता है, शान्ति-समता का अस्खलित प्रवाह प्रवाहित होने लगता है, चन्दन एव सुगन्ध का अभेद आत्मा एव समता के मध्य स्थापित होता है।

कहा भी है कि 'जिस मुनि को आत्मा मे शुद्ध स्वरूप का दर्शन एव विशेष ज्ञान हुआ है अर्थात् मेरी आत्मा भी अनन्त ज्ञानादि गुण पर्याय से

युक्त है ऐसी सम्यक् श्रद्धा एव ज्ञान के साथ आत्म-स्वभाव मे स्थिरता, रमणता, तन्मयता प्राप्त हुई हो उसे ही आत्म स्वभाव की आनन्दानुभूति होती है।

ज्ञान-सुधा के सागर तुल्य पर-ब्रह्म शुद्ध ज्योति-स्वरूप आत्म-स्वभाव मे मग्न मुनि को समस्त रूप-रस आदि पौद्गलिक विषयो की प्रवृत्ति विष की वृद्धि करने जैसी अत्यन्त भयानक अनर्थ कारक लगती है।

आत्म-स्वभाव मे मग्न मुनि को किसी भी पदार्थ का कर्तृत्व नही होता, केवल साक्षी ही रहती है। अत. वे तटस्थ रूप से समस्त तत्त्वो के ज्ञाता होते हैं परन्तु वे कर्त्ता के रूप ये गर्व नही रख सकते।

इस प्रकार की ज्ञाता-दृष्टा-भावना उस स्वभाव-मग्न मुनि की अग्रगण्य लाक्षणिकता है। "स्वभाव-सुख मे मग्न साधक ज्ञानामृत का पान करके, क्रिया रूपी कल्पलता के मधुर फलो का भोजन करके, और समता परिणाम रूपी ताम्बूल का आस्वादन करके परम तृप्ति अनुभव करता है।"

आत्म-साक्षात्कार से होने वाला आश्चर्य

इस प्रकार का साधक ही यथार्थ आत्म-सक्षात्कार कर सकता है।

जब आत्म-साक्षात्कार होता है तब साधक को "यही मेरा तात्त्विक-दर्शन एव तात्त्विक मिलन है" इस प्रकार का परमात्म-स्वर स्पष्टतया हृदयगत होता है, जिससे साधक को अपार आनन्द एव आश्चर्य होता है।

आश्चर्य इस बात का होता है कि 'अहो! यह तो 'मैं' मुझे ही नमस्कार कर रहा हूँ।

सचमुच, भ्रमर का ध्यान करने से ईयल जिस प्रकार भ्रमरी हो जाती है, उसी प्रकार से परमात्मा का ध्यान करने वाली आत्मा भी परमात्म-ध्यान से परमात्मा हो जाती है।

यह न्याय सर्वथा उचित ठहरने का कारण आत्मा मे परमात्म तत्व का अस्तित्व है जो परमात्मा के ध्यान के प्रभाव मे प्रकट होता है।

'सिरि सिरिवाल कहा' मे वर्णन आता है कि 'जब श्रीपाल राजा श्री नवपद के ध्यान मे तादात्म्य हो जाते हैं तब उन्हे सम्पूर्ण विश्व नवपदमय प्रतीत होता है' यह वाक्य भी महान अनुभव-योग को प्रस्तुत करता है।

श्री जिनेश्वर प्रभु के ध्यान मे लीन साधक को अपनी आत्मा और आगे जाकर सम्पूर्ण विश्व जिनमय प्रतीत होता है।

पूज्य श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी महाराजा ने शक्रस्तव मे इस बात की ही पुष्टि की है।

जिनो दाता जिनो भोक्ता, जिनः सर्वमिद जगत्।
जिनो जयति सर्वत्र, यो जिन सोऽहमेव च ।।

अर्थ—जिन दाता एव भोक्ता है, सम्पूर्ण विश्व जिनेश्वरमय है। जिनेश्वर की सर्वत्र जय होती है और जो जिनेश्वर है वह मैं ही हूँ।

असग दशा, निर्विकल्प दशा पी अनालम्बन-योग अथवा सामर्थ्य-योग सब पर्यायवाची हैं।

इस प्रकार के सामर्थ्य-योग के द्वारा परमात्मा को किया गया एक ही नमस्कार मनुष्य का ससार-सागर से उद्धार कर देता है। यह बात 'सिद्धाण बुद्धाण' सूत्र मे 'इक्कोवि नमुक्कारो' गाथा द्वारा स्पष्ट की गई है।

इस दशा मे जब तात्त्विक रीति से आत्म-तत्त्व का निर्णय होता है तब ही तात्त्विक रीति से परमात्म—तत्त्व का निर्णय हो सकता है और जब तात्त्विक रीति से आत्मा एव परमात्मा का निर्णय हो जाता है तब ही अन्य समस्त तत्त्वो का तात्त्विक निर्णय होता है।

जब सम्पूर्ण तत्त्व का तात्त्विक निर्णय होता है तब समस्त अनुष्ठान तात्त्विक बनते हैं। इस प्रकार के तात्त्विक अनुष्ठान तुरन्त शाश्वत सुखदायक सिद्ध होते हैं।

जिन-जिन महापुरुषो ने मुक्ति प्राप्त की है, प्राप्त कर रहे हैं अथवा जो प्राप्त करेंगे वे समस्त इस असग-अनुष्ठान के द्वारा ही करेंगे, यह बात निस्सन्देह है।

प्रारम्भ प्रीति से, प्रगति भक्ति मे और सिद्धि असग से यह क्रम है और तत्पश्चात् विनियोग की कक्षा आती है।

साधक की अद्भुत स्थिरता

आत्म-स्वभाव मे लीन साधक का चित्त अडोल एव मेरुवत् निष्कप होता है। उसमे देह-भाव का अश भी नही होता, परन्तु आत्म-ज्ञान का अखण्ड साम्राज्य होता है।

इसलिये ही तो इस प्रकार की दशा मे मग्न खधक मुनिवर अपने देह की चमडी उतार ली जाने पर भी स्वभाव मे मग्न रहे अटल रहे! वे पर भाव मे फिसले नही।

श्री गजसुकुमाल मुनिवर के सिर पर खेर के जलते अगारो से परिपूर्ण ठीब रखा गया तो भी वे आत्म-मस्ती मे मस्त रहे, क्योकि देह पर-पदार्थ है और आत्मा स्व-पदार्थ है। उनके लिये यह सत्य अस्थि-मज्जावत् हो गया था, यह सत्य उनके साढे तीन करोड रोमो मे पूर्णत परिणत हो गया था।

इस प्रकार की स्व-परिणति स्वात्म-रमणता के पश्चात् ही प्रकट होती है।

इस प्रकार की असग दशा मे स्थित योगी को यदि खधक मुनिवर के पाँच सौ शिष्यो की तरह कोल्हू मे पेला जाये तो भी उनका चित्त आत्म-

दशा मे से विचलित नही होता; क्योकि देह एव आत्मा दोनो भिन्न पदार्थ होने का ज्ञान उसने आत्मसात् किया हुआ होता है। अत: जो विगडती है, जलती है, पेली जाती है अथवा तपती है वह देह है, मेरी आत्मा नही है, क्योकि आत्मा तो अजर-अमर है। योगी इस प्रकार की निश्चल भावना के चरम शिखर पर आरूढ होता है।

इस प्रकार की निश्चल भावना द्वारा साधक अन्तर्मुहूर्त्त मे क्षपक श्रेणी पर चढकर, केवल ज्ञान प्राप्त करके, शैलेशीकरण करके शाश्वत-धाम मे पहुँच सकता है।

ये हैं असग दशा के ठोस उदाहरण एव प्रत्यक्ष फल।

पूजा, जाप, ध्यान और लय



प्रीति आदि चार अनुष्ठानों की उत्तरोत्तर अधिक फल-दायिनी शक्ति



पूजा कोटि सम स्तोत्र, स्तोत्रकोटि समो जप ।
जपकोटि सम ध्यान, ध्यानकोटि समो लयः ॥

अर्थ :—परमात्मा की एक करोड बार की गई द्रव्य-पूजा जितना फल एक स्तोत्र-पूजा मे है । कोटि स्तोत्र-पूजा के समान फल परमात्मा के पवित्र नाम के जाप का है । करोड जाप जितना फल परमात्मा के ध्यान का है और करोड ध्यान जितना फल लय मे है ।

इस श्लोक से हमे सरलता से स्पष्ट हो जाता है कि द्रव्य की अपेक्षा भाव का मूल्य कितना अधिक है; परन्तु भाव उत्पन्न करने के लिये और उसमे वृद्धि करने के लिये द्रव्य की भी उतनी ही आवश्यकता है । इस कारण ही सर्व-प्रथम परमात्मा की द्रव्य-पूजा करने का शास्त्रो ने निर्देश दिया है । तत्पश्चात् स्तोत्र, स्तुति, स्तवनादि द्वारा परमात्मा की भाव-पूजा करने का निर्देश दिया गया है । फिर जाप, तत्पश्चात् ध्यान और अन्त मे लय मे प्रवेश होता है इस बात का भी निर्देश दिया गया है ।

'श्री जिन-प्रतिमा की द्रव्य-पूजा करने से त्रिभुवन द्वारा पूज्य परमात्मा की पूजा करने वाला मैं अब तुच्छ स्वार्थ की पूजा नही करूँगा'—यह भाव मन को स्पर्श करता है । इस भाव के स्पर्श से मन प्रफुल्लित होता है और स्वतः

ही श्री जिनराज की भाव-पूजा के अग-भूत स्तोत्र, स्तवन आदि करने की हमारी इच्छा होती है। परमात्मा का गुण गान करते-करते उनके उन गुणो के असीम उपकारों का हमे भान होता है।

ऐसा भान होने के पश्चात् हमारे मन में परमात्मा का मान तुरन्त वढ जाता है, परमात्मा हमारे हृदय मे वस जाता है।

अतः परमात्मा के नाम का जाप हमे अपने नाम से भी अधिक प्रिय लगता है।

ज्यो-ज्यो जाप गहन, व्यापक एव ताल-बद्ध होता जाता है, त्यो-त्यो उसमे से राग-द्वेष विनाशक ताप उत्पन्न होता जाता है। तत्पश्चात् शब्द-जाप, नाम-जप घटने लगता है और ध्यान की धारा प्रारम्भ होती है।

इस प्रकार का ध्यान लाने से नहीं आता, परन्तु इस प्रकार की पूजा-भक्ति की क्रमिक प्रक्रिया द्वारा वह साकार होता है।

और परमात्म-स्वरूप के ध्यानाभ्यास द्वारा आत्म-स्वरूप मे तल्लीनता आती है अर्थात् 'अह' का विलय हो जाता है।

इस प्रकार पूर्व-पूर्व के पूजा-अनुष्ठान उत्तरोत्तर के अनुष्ठानो मे प्राण-पूरक होते हैं और साधक उसी क्रम से आगे वढ सकता है, प्रगति कर सकता है।

सर्वप्रथम पुद्गल के आकर्षण से चकाचौंध चित्त को पुन लौटाने और पौद्गलिक आसक्ति तोडने के लिये श्रेष्ठतम द्रव्यो द्वारा परमात्मा की पूजा की जाती है।

अपने प्रिय को स्वय को प्रिय से प्रिय वस्तु प्रेम से अर्पण करना मानव-स्वभाव है। ऐसा करने से दोनो के मध्य का प्यार अत्यन्त सुदृढ होता है, परन्तु यह लौकिक प्रेम एकान्त हितकर नही है। परमात्मा के प्रति प्रेम

एकान्त हितकर है, क्योकि परमात्मा की प्रीति की डोर से बँधा हुआ साधक तुच्छ स्वार्थ एव तज्जनित समस्त वन्धनो का त्यागी सिद्ध होता है।

यह प्रीति छुपी नही रहती, चुप नही बैठ पाती, परन्तु परमात्मा के गुण गा-गाकर हर्षित होती है, अर्थात् इस प्रीति वाला साधक परमात्मा के गुणो का चिन्तन करता हुआ भक्ति-अनुष्ठानो मे प्रविष्ट होता है, स्तोत्र द्वारा अन्तःकरण को परमात्मा के गुणो से भावपूर्ण करके जाप रूपी वचन-अनुष्ठान मे प्रविष्ट होता है और जाप द्वारा चित्त की निर्मलता एव स्थिरता होने से असग दशा मे प्रविष्ट होकर लय-अवस्था-रूप (आत्म-स्वरूप-लीनता रूप) फल का आस्वादन करता है।

इस प्रकार पूजा मे प्रीति-अनुष्ठान की, स्तोत्र मे भक्ति-अनुष्ठान की, जाप मे वचन-अनुष्ठान की और ध्यान मे असग-अनुष्ठान की प्रधानता होती है।

पूजा प्रीति-अनुष्ठान को पुष्ट करती है; स्तोत्र भक्ति-अनुष्ठान को पुष्ट करता है; जाप वचन-अनुष्ठान को पुष्ट करता है और ध्यान असग-अनुष्ठान को पुष्ट करता है तथा असग-अनुष्ठान द्वारा परमात्म-दर्शन रूपी अलौकिक फल की प्राप्ति होती है।

जिस प्रकार पूजा की अपेक्षा स्तोत्र, स्तोत्र की अपेक्षा जाप, जाप की अपेक्षा ध्यान और ध्यान की अपेक्षा लय का फल करोड गुना है, उसी प्रकार से प्रीति की अपेक्षा भक्ति का, भक्ति की अपेक्षा वचन का और वचन की अपेक्षा असग-अनुष्ठान का फल करोड गुना है तथा असग-अनुष्ठान द्वारा प्राप्त होने वाले परमात्म-दर्शन का फल अनन्त गुना है क्योकि उससे आत्म-दर्शन होता है और आत्म-दर्शन परमानन्द प्रदान करता है।

तात्पर्य यह है कि परमानन्द की नीव प्रीति है, प्रासाद भक्ति है, शिखर जाप है और कलश ध्यान है।

यदि प्रीति नही तो फिर भक्ति कैसी ? यदि भक्ति नही तो जाप कैसा ? यदि जाप नही तो ध्यान कैसा ? फिर लय तो सभव ही नही।

तो प्रीति-पात्र कौन ? सर्व गुण-सम्पन्न परमात्मा, सर्व दोष रहित परमात्मा। परमात्मा की प्रीति मे से ही आत्मा को परमात्मा बनाने वाला तेज प्रकट होता है, बल प्रकट होता है, वीर्य का स्फुरण होता है।

आत्म-दर्शन करने वाले साधक की वृत्ति एवं प्रवृत्ति

जिस व्यक्ति को एक बार आत्म-दर्शन हो गया हो, उसकी वृत्ति एव प्रवृत्ति पर आत्म-रति की अमिट छाप होती है। उसकी वृत्ति एव प्रवृत्ति मे तुच्छ स्वार्थ एव राग-द्वेष रूपी ससार के समक्ष कदापि नतमस्तक नही होने का सत्त्व होता है। वह पाँच इन्द्रियो के विषयो मे फँसता नही, चार कषायो के चक्कर मे उलझता नही। भव-निर्वेद सवेग (मोक्ष-प्राप्ति की तीव्र उत्कठा) उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य होता है। वह स्वात्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट करने के प्रबल पुरुषार्थ मे सदा रत रहता है और प्राप्त मानव-जीवन के प्रत्येक क्षण का आत्म-साधना मे सदुपयोग करने के लिये वह कटिबद्ध होता है।

आत्म-दर्शन के पश्चात् रुचि, प्रीति, मति, ध्यान और उपयोग आत्मा मे रहते है।

"सम्यग् दृष्टि आत्मा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर थी अलगो रहे, जिम धाव खेलावत बाल॥"

इस उक्ति को सार्थक करने का सत्य सम्यग्-दृष्टि आत्मा मे होता है।

अत ऐसी सम्यग्-दृष्टि वाली आत्मा मोक्ष मे जाने से पूर्व कदाचित् जन्म-मरण के फन्दे से उलझ जाये, दैवी एव मानुषी सुखो के शिखर पर आरूढ हो अथवा दु ख के दावानल मे फँस जाये तो भी वह कदापि मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति का सृजन नही करती। अरे! एक आयुष्य कर्म छोडकर शेष सात कर्मों की स्थिति अन्त कोडा-कोडी से अधिक बाँधता नही है। अधिक से अधिक अपार्ध पुद्गल-परावर्त्त काल मे तो वह शाश्वत सुख का भोक्ता अवश्य बनता है।

यह है परमात्म-दर्शन और उसके द्वारा होने वाले आत्म-दर्शन का फल।

इस प्रकार किसी भी योग, अध्यात्म अथवा धर्म-साधना का वास्तविक पूर्ण फल-प्रीति, भक्ति, वचन (शास्त्रोक्त विधि) एव असगता के द्वारा ही प्राप्त होता है जिससे परमात्म-दर्शन की साधना मे भी प्रीति, भक्ति, वचन और असग-अनुष्ठान की ही प्रधानता है।

यदि प्रीति-भक्ति युक्त पूजा आदि की जाये तो क्रमश परमात्म-दर्शन अवश्य हो सकता है, क्योकि इस काल मे भी अप्रमत्त गुण-स्थानक तक तो पहुँचा ही जा सकता है।

परमात्म-दर्शन एवं समापत्ति

सम्यग्-दर्शन द्वारा परमात्मा का दर्शन प्राप्त होता है और सम्यग्-चारित्र द्वारा परमात्मा से मिलन होता है।

अप्रमत्त आदि गुण स्थानक मे वास्तविक तौर से ध्याता, ध्येय और ध्यान की एकता रूप समापत्ति होती है जिससे ध्याना की आत्मा भी ध्येयाकार धारण करके परमात्मा के साथ अभेद भाव से मिल जाती है। कहा भी है कि—

ध्याता-ध्येय-ध्यान पद एके।
भेद छेद करशु हवे टेके॥
क्षीर-नीर परे तुमशु मिलशु।
वाचक यश कहे हेजे हलशू॥

सच्चारित्रवान् श्री उपाध्यायजी भगवत के ये हृदयोद्गार ग्रहण करके आत्मा और परमात्मा के मध्य स्थित भेद की दीवार को धराशायी करने के लिये हम सब आज से ही तात्त्विक-जीवन की सच्ची भूख जागृत करने वाले प्रीति आदि अनुष्ठानो मे अपनी समग्रता को केन्द्रीभूत करके इस मानव-भव को उज्ज्वज करें।

'दर्शन' शब्द के विविध अर्थ और नयों की अपेक्षा से दर्शन

दर्शन शब्द के अनेक अर्थ व्यवहार मे प्रचलित हैं जैसे—देखना, जानना, सामान्य ज्ञान, सामान्य उपयोग आदि, परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ मे 'दर्शन' शब्द

मुख्यतया सम्यग्-दर्शन, तत्त्व-दर्शन, आत्म-दर्शन; शुद्ध स्वभावानुभूति, परमात्म-तत्त्व का साक्षात्कार आदि अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है ।

चर्म चक्षुओ के द्वारा होने वाले इस दर्शन से यह दर्शन सर्वथा निराला है । अत प्रज्ञा-चक्षु को भी यह दर्शन सुगम होने का विधान है ।

नयों की अपेक्षा से दर्शन

(१) नैगम नय की अपेक्षा से प्रभु दर्शन अर्थात् मन, वचन, और काया की चचलता के साथ केवल चक्षुओं से प्रभु-मूर्ति को देखनी ।

(२) सग्रह नय की अपेक्षा से प्रभु-दर्शन अर्थात् समस्त जीवो मे सिद्ध के समान शुद्ध सत्ता का दर्शन करना ।

(३) व्यवहार नय की अपेक्षा से प्रभु दर्शन अर्थात् आशातना रहित वन्दन-नमस्कार सहित प्रभु-मुद्रा अथवा प्रभु की देह को देखना ।

(४) ऋजु सूत्र नय की अपेक्षा से प्रभु-दर्शन अर्थात् योगो की स्थिरता-युक्त उपयोग से प्रभु-मुद्रा देखना ।

(५) शब्द नय की अपेक्षा से प्रभु-दर्शन अर्थात् आत्म-सत्ता प्रकट करने की रुचि से प्रभु की तत्त्व सम्पत्ति रूपी प्रभुता का अवलोकन करना ।

(६) समभिरूढ नय की अपेक्षा से प्रभु दर्शन अर्थात् केवल ज्ञान, केवल-दर्शन की प्राप्ति ।

(७) एव-भूत नय की अपेक्षा से प्रभु-दर्शन अर्थात् जीव जब अपनी शुद्ध सत्ता को प्रकट करता है और पूर्ण शुद्ध और सिद्ध होता है वह ।

श्री अरिहन्त परमात्मा के दर्शन रूप निमित्त से ही आत्मा की सत्तागत शक्तियो का आविर्भाव होता है, उसके अतिरिक्त नही होता ।

श्री अरिहन्त परमात्मा का दर्शन अर्थात् साक्षात् श्री अरिहन्त परमात्मा के दर्शन मे उत्कृष्ट कारण रूप श्री जिन-शासन अथवा साक्षात् आत्म-दर्शन मे उपादान कारणभूत सम्यग्-दर्शन ।

प्रभु-दर्शन सुख-सपदा, प्रभु-दर्शन नव निध ।
प्रभु-दर्शन थी पामिये, सकल पदारथ सिद्ध ।।
दर्शन देव देवस्य, दर्शन पाप नाशनम् ।
दर्शन स्वर्ग सोपान, दर्शन मोक्षसाधनम् ।।

यह दोहा और श्लोक दोनो प्रभु-दर्शन के अगाध सामर्थ्य का प्रतिपादन करते हैं ।

यदि 'दर्शन' मे 'प्रभु-दर्शन' ही हो तो इस दोहो और श्लोक में जिस फल की प्राप्ति का विधान है वह सत्य ठहरता है ।

जैसे स्वच्छ दर्पण अपना चेहरा जैसा है वैसा दर्शन कराता है, उसी प्रकार से प्रभु का दर्शन अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप का दर्शन कराता है ।

जिस प्रकार दर्पण अपना कर्त्तव्य पूर्ण करता है । उसी प्रकार से प्रभु दर्शन भी स्व-धर्म पूर्ण करता है और उसका प्रारम्भ प्रभु-पूजा रूपी प्रीति-अनुष्ठान से होता है ।

'दर्शन' शब्द के विविध अर्थों एव नयो की अपेक्षा से 'दर्शन' का विचार करने से हम किस धरातल पर हैं, किस तरह का प्रभु-दर्शन करते हैं और किस तरह का प्रभु-दर्शन करना चाहिये उसका यथार्थ ध्यान आता है जिससे आगे बढने की प्रेरणा प्राप्त होती है । उससे दर्शन-शुद्धि मे वृद्धि होती है, जो बढते-बढते प्रभु-तुल्य स्वात्मा के दर्शन मे परिणत हो जाता है और उससे आत्मा का परमात्म-मिलन हो जाता है ।

श्री अरिहन्त परमात्मा के असीम उपकार



तारणहार श्री तीर्थंकर परमात्मा प्रकृष्ट पुण्य के निधान होते हैं जिस पुण्य के प्रभाव से जघन्य से जघन्य कोटि-कोटि देव, देवेन्द्र, दानवेन्द्र और मानवेन्द्र उनकी उत्कृष्ट कोटि की पूजा, सेवा और भक्ति करने मे गौरव का अनुभव करते हैं, अपने तन, मन, धन और जीवन की कृतार्थता समझते हैं।

परन्तु प्रश्न उठता है कि इस प्रकार का प्रकृष्ट कोटि का पुन्य उन्होने किस प्रकार उपार्जित किया होगा तनिक आगे बढ़ कर सोचने से तुरन्त उसका समाधान भी हो जाता है।

प्रकृष्ट परार्थ-परायणता

सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, वायु आदि के जितने प्रकट-अप्रकट उपकार है, उनसे अनन्त गुने प्रकट-अप्रकट उपकार जिनके हैं, उन श्री तीर्थंकर परमात्मा का आत्म-द्रव्य विशिष्ट कोटि का दलदार होता है। गेहूँ के समस्त दानो मे विशिष्ट दलदार दाना अलग निकल आता है, उसी तरह से विश्व की समस्त आत्माओ मे विशिष्ट आत्म-दलदार श्री तीर्थंकर परमात्मा की आत्मा अलग निकल आती है।

विशिष्ट प्रकार का यह आत्म-दल उन्हे उत्कृष्ट कोटि के परमार्थ मे लगाकर प्रकृष्ट पुण्य के स्वामी बनाता है।

माता को अपनी सन्तान का दु ख देखकर जो व्यथा होती है चिन्ता होती है उससे अनन्त गुनी व्यथा एव चिन्ता श्री तीर्थंकर परमात्मा को तीन लोको के प्राणियो की वेदना देखकर होती है। इससे उनका हृदय दया के सागर का स्वरूप धारण करता है और वे वेदना की उत्पत्ति के कारणो की खोज मे अन्तर तल मे गहरी डुबकी लगाते हैं। अपनी समग्रता विलो कर वे इस वेदना के कारण रूप मक्खन को प्राप्त करते हैं।

यह मक्खन अर्थात् तीनो लोको के प्राणियो के सब प्रकार के दुःखो का मूल कारण कर्म होना ही सत्य ।

इस सत्य की प्राप्ति के पश्चात् वे करुणा-सागर घडी भर के लिये भी शान्त नही बैठते। वे उन कर्मों का समूल उच्छेद करने की उत्कृष्ट विचार-धारा मे सतत अग्रसर होते है।

तीनो लोको के समस्त प्राणियो को स्व-दया के विषयभूत बनाने वाले श्री तीर्थंकर परमात्मा की आतमा को अब रह-रहकर यही प्रश्न स्पर्श करता है कि तीन लोको के समस्त प्राणियो को त्राहि-त्राहि कराने वाले इन कर्मों के सिकजे मे से किस प्रकार छुडाया जाये ?

इस गम्भीर प्रश्न को वे परम दयालु अपना प्राण-प्रश्न बना कर अपने समस्त प्राणो को उसमे रमाते है, अपने रक्त के प्रत्येक बिन्दु को उससे रगते हैं जिससे श्री तीर्थकर परमात्मा के रूप मे अपने भव से पूर्व तीसरे भव मे उक्त गम्भीर प्रश्न का उत्तर प्राप्त हो जाता है कि यदि विश्व के समस्त प्राणी श्री जिन शाहत के रसिक बनें और श्री जिनेश्वर भगवान द्वारा निर्दिष्ट राह पर चलें तो वे कर्म के ससस्त बन्धनो से मुक्त होकर आधि, व्याधि एव उपाधि के समस्त दु.खो से भी अवश्य मुक्त हो जागेयें।

हृदय रोमाचकारी इस लत्तर के पश्चात् उन परम दयालु प्रभु के हृदय मे यह प्रश्न उठता है कि समस्त जीवो को परमात्म-शासन-रसिक किस प्रकार बनाया जाये ?

चुनौती स्वरूप इस प्रश्न से भी वे पीछे नही हटते परन्तु कर्म-सत्ता के समस्त गात्रो को शिथिल करने वाली परमोत्कृष्ट भावना का नाभि-नाद करते हैं।

"जो होवे मुझ शक्ति इसी,
सवि जीव करूँ शासन रूपी।"

श्री तीर्थंकर परमात्मा के विशिष्ट दलदार आत्मा के इस परम सकल्प का त्रिभुवन पर एक छत्र साम्राज्य है, है और है।

इस परम सकल्प अर्थात् उत्कृष्ट भाव-दया से अपनी समग्रता को अत्यन्त भाव पूर्ण बनाने वाले वे परम दयालु बीस स्थानक तप की त्रिविध से, उच्च परिणाम से आराधना करके त्रिभुवन-तारणहार श्री तीर्थंकर-नाम-कर्म की निकाचना करते हैं।

तनिक सोचिये, कितने उत्कृष्ट परार्थ मे परम दयालु परमात्मा की आत्मा ने अपनी समग्रता को प्रयुक्त करके भावना भाई—"सवि करूँ शासन रसी" की! वहाँ भव्य अथवा अभव्य का भेद ही नही रखा, न पापी अथवा पुण्यशाली का, न रक अथवा राजा का, न निर्धन अथवा धनवान का, न ऊँच अथवा नीच का, न क्षुद्र अथवा सुपात्र का, न किसी गति अथवा जाति का भेद रखा।

वस, केवल एक ही भावना भाई कि "तीन लोको के समस्त जीव मेरे आत्म-बन्धु है, उनका दुख मेरा दुःख है और उनके सुख मे ही मेरा सुख है।" अत यदि मुझ मे ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाये तो समस्त प्राणियों को परमात्म शासन के रसिक बनाकर इन कर्मो के भयानक बन्धनो से मुक्त कराऊँ।"

यह है प्रकृष्ट परार्थ-परायणता का उत्कृष्ट स्वरूप।

उन परम दयालु परमात्मा की आत्मा इतनी उत्कृष्ट परार्थ-परायणता अर्थात् भाव-दया को केवल पाँच-पच्चीस घण्टो, माह अथवा वर्षों तक ही नही रखते, परन्तु निरन्तर तीन भव के समग्र काल को उक्त भाव-दया के द्वारा रग देते हैं, जिससे चरम भव मे उनका प्रत्येक रोम-रोम दया रूपी गगा

का स्वरूप धारण करके विश्व के जीवो को पावन करने का स्वधर्म पूर्ण करते हैं।

एक आत्मा को दीया गया शुभ भाव भी उत्कृष्ट पुण्य के रूप में परिणत होता है तो तीन भुवन के समस्त जीवो को दिया गया शुभ भाव-उत्कृष्ट दया-भाव परमोत्कृष्ट पुण्य का पिता बने यह स्वाभाविक है।

अत सम्पूर्ण विश्व-वत्सल श्री तीर्थंकर परमात्मा प्रकृष्ट-पुण्य के निधान है—यह विधान अक्षरश सत्य होने की बात स्वीकार करनी ही पडती है।

स्वार्थ परायणता तो विश्व मे चारो ओर फैली हुई प्रतीत होती है। अधिकतर जीव तो स्वार्थ को केन्द्र मे रखकर ही जीवन-यापन कर रहे हैं। अपना स्वार्थ तनिक भी टकराये तो लाल-पीले होने वाले जीवो की पृथ्वी पर कमी नही है।

समस्त जीवराशि के हित का द्रोह कराने वाले इस स्वार्थ को देश-निकाला देने की दैवी-शक्ति परार्थ-परायणता के परम शिखर पर सुशोभित श्री तीर्थंकर परमात्मा की भाव-पूर्वक की जाने वाली भक्ति से ही प्रकट होती है।

इस विश्व मे परमार्थ की जो गंगा प्रवाहित है उसके जनक श्री तीर्थंकर परमात्मा हैं, उनकी उत्कृष्ट भाव-दया है, सकल जीव-लोक की उद्धार करने की परम करुणा है, जीव मात्र को परम स्नेह का दान करने का महा गान है।

स्वार्थ के विचार मे ही लीन व्यक्ति को पर-हित का विचार, जीवो के कल्याण का विचार अपने स्वार्थ-पूर्ण विचार के प्रति सख्त घृणा उत्पन्न होने पर ही आता है।

यह उपकारी घृणा श्री तीर्थंकर परमात्मा और उनके वचन आदि वास्तव मे प्रिय लगने पर ही उत्पन्न होती है।

अत कोई शुभ भावना को सस्ती मान लेने की भयंकर भूल न करे।

तो क्या केवल भावना से ही कार्य सिद्ध हो जाता है ?

जिनकी भावना शुद्ध है वे इस मतलब का प्रश्न नही करते । इस मतलब के प्रश्न वे ही पूछते हैं जो शुभ भावना के अप्रतिम सामर्थ्य से अज्ञात हैं ।

यदि आप शुभ भावना के सामर्थ्य का अनुभव करना चाहो तो केवल तीन दिन तक आप किसी भी एक जीव को शुभ भावना का विषय बना कर यह अनुभव कर सकते हैं ।

सघन अन्धकार को नष्ट करने मे जो कार्य प्रकाश-किरण करती है, वही कार्य केवल स्वार्थ के विचार मे लुब्ध चित्त मे परार्थ-परायणता की किरण करती है ।

अतः यह कार्य अधिकतम दुष्कर माना गया है ।

इस ससार मे सर्वथा सस्ती और सर्वथा महगी यदि कोई वस्तु हो तो वह भाव ही है । उसके द्वारा जिसका चित्त पूर्ण हो, जीवन रगा हुआ हो उसका कौनसा शुभ कार्य अपूर्ण रह सकता है ?

शुभ भाव से सुरभित व्यक्ति का जीवन के केन्द्रवर्ती बल भी यह भाव ही बन जाता है, अत वह उसे अशुभ भाव, अशुभ वाणी एव अशुभ व्यवहार की ओर जाने नही देता और कदाचित् कोई व्यक्ति यदि उस दिशा मे फिसल जाता है तो भी वह उसे दूसरे ही क्षण अपने नियन्त्रण मे कर लेता है ।

अतः शुभ भावना रखने से कार्य सिद्ध हो अथवा न हो—यह प्रश्न करने की अपेक्षा शुभ-भावना-युक्त, मित्रता आदि भाव-युक्त जीवन यापन करने का शुभ प्रारम्भ करना उस यही प्रश्न का यथार्थ उत्तर प्राप्त करने का राज-मार्ग है ।

देखिये, स्वय श्री तीर्थंकर परमात्मा की आत्माए भी उत्कृष्ट प्रकार की भावदया से भावित होकर और उसी के अचिन्त्य सामर्थ्य से प्रेरित होकर तदनुरूप तपोमय जीवन मे अग्रसर होती है, क्योकि इस भाव-दया का यह स्वभाव है कि वह उसके अनन्य उपासक को पर-भाव की ओर जाने से रोकती है ।

मित्रता आदि शुभ भावो की यह तासीर है कि इसके द्वारा जिसका चित्त सुरभित होता है उसके चित्त पर पौद्गलिक सुख और पौद्गलिक सम्बन्धो का राग प्रभुत्व नही जमा सकता ।

स्पर्शित शुभ भाव उस प्रकार की शुभ करणी मे परिणत होकर ही रहता है, अत. ऐसा भय अथवा भ्रम रखने की आवश्यकता नही है कि केवल शुभ भावना से कार्य सिद्ध हो सकता है क्या ?

श्री तीर्थंकर परमात्मा के शासन के प्रेमी पुण्यात्माओ को यदि यह प्रश्न स्पर्श करे तो वह एक अचम्भा माना जायेगा, क्योकि स्वय श्री तीर्थंकर परमात्मा उस उत्कृष्ट शुभ भाव, प्रकृष्ट परार्थ परायणता और सर्वोत्तम भाव दया के पवित्रतम प्रमाण स्वरूप हैं ।

समस्त श्रेष्ठता को अपनाने, प्रकट करने का उत्तम बीज उत्कृष्ट शुभ भाव है, उसमे दो मत नही हैं ।

स्व साधना द्वारा जगत को मूक सन्देश

जिस जन्म मे श्री तीर्थंकर परमात्मा सर्वज्ञ, अरिहन्त, तीर्थंकर और समस्त कर्म-बन्धनो से सर्वथा मुक्त होकर सिद्ध स्वरूपी बनने वाले होते हैं, उस जन्म मे जब वे माता के गर्भ मे पधारते हैं तब मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधि-ज्ञान-रूप विशिष्ट ज्ञान के धारक होते हैं ।

इस विशिष्ट ज्ञान के प्रभाव से वे उसी भव मे अपनी मुक्ति होने की बात जानते हुए भी दुश्चर सयम अगीकार करके, विशिद्ध रूप से पचाचार का पालन करके, अष्ट प्रवचन-माता का जतन करके, उग्र तपस्या करके, भयकर परिषह-उपसर्गो को धीरता एव वीरता से सहन करके, निश्चय ध्यान करते-करते जब तक उन्हे केवल ज्ञान प्राप्त नही होता तब तक की छद्मावस्था मे भी विश्व को मूक सन्देश देते ही रहते हैं कि "स्वकृत कर्मो के साथ सघर्ष करके उन्हे पराजित किये बिना, सयम का सुविशुद्ध पालन किये बिना, उग्र तपस्या का सेवन किये बिना और शुक्ल ध्यान की धारा पर आरूढ हुए बिना केवल ज्ञान हस्तगत नही किया जा सकता । अत: जिसे इन कर्म-शत्रुओ के पजे मे से मुक्ति प्राप्त करनी हो उसे विवेक रूपी सराण पर सयम रूपी

शस्त्र को तीक्ष्ण बनाकर धैर्य रूपी ढाल धारण करके कर्म शत्रुओ के विरुद्ध प्रकट युद्ध छेडना ही रहा।"

सग्राम-भूमि मे शत्रु से सघर्ष करते सैनिक मे जो शूरवीरता होती है उससे भी कही अधिक शूरवीरता कर्म रूपी शत्रुओ को पराजित करने के लिये चाहिए।

ऐसी शूरता परम वीर्यवान परमात्मा की भक्ति एव सर्व जीवो की मैत्री मे से उत्पन्न होती है, परन्तु वह शूरता विषय-कषाय के सेवन से प्रकट नही होती।

श्री तीर्थकर परमात्मा की आत्मा के मूक सन्देश का सार यह है कि "जड के चेतन पर स्वामित्व का नाश करने के लिए नख शिख चेतनमय बनो, आत्म-उपयोगी बनो और उसके लिए आवश्यक तप, जप, सयम, स्वाध्याय और ध्यान-मग्न बनो।"

विश्वोपकारी इस मूक सन्देश का वे प्रथम स्वय पालन करके सर्वोत्कृष्ट साधना का आदर्श सबके समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

चार घाती कर्मो का स्वात्म बल से क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त करने पर श्री अरिहन्त परमात्मा विश्व के प्राणियो को तारणहार तीर्थ की स्थापना करते हैं, अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक एव श्राविका स्वरूप चतुर्विध श्री सघ की विधिवत् स्थापना करते हैं।

तीर्थ की स्थापना करने से पूर्व वे परम दयालु परमात्मा नमो तित्थस्स' पूर्वक समवसरण मे बिराजमान होते हैं। यह तथ्य इस सत्य का द्योतक है कि तीर्थ के आलम्बन के बिना कोई भी व्यक्ति ससार-सागर को पार नही कर सकता। अत. स्वय श्री तीर्थंकर परमात्मा भी तारणहार तीर्थ के उपकार को नमस्कार करते हैं।

तारणहार तीर्थ की स्थापना के पश्चात श्री अरिहन्त परमात्मा त्रिपदी (उवन्नेइवा, विगमेइवा, धुवेइवा) कहते है, जिसे बीज-बुद्धि के निधान गणधर भगवत द्वादशागी रूप सूत्रो मे गूथते हैं, जिसमे विश्व के समस्त पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन होता है, जिससे भव्य आत्मा भवसागर पार करके अजर-अमर पद को प्राप्त करती है।

इस प्रकार श्री अरिहन्त परमात्मा जीवो को परमात्म-शासन के रसिक बनाने के अपने सकल्प को साकार करते है, परन्तु इतने से ही न रुककर वे परम दयालु अष्ट महा प्रातिहार्य युक्त समवसरण मे विराज कर पैंतीस गुणो से युक्त वाणी से बारह पर्षदाओ के समक्ष अमृतमयी धर्म-देशना देते हैं, जिसके पान से, श्रवण से लघुकर्मी आत्माओ के हृदय मे अपूर्व आत्म-स्नेह उत्पन्न होता है, भेद के बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है और विशुद्ध आत्म-रति रूपी सम्यक्त्व का स्पर्श होता है।

पाषाण-हृदयी मनुष्य को भी पानी-पानी कर डालने की अमोघ शक्ति-युक्त यह वाणी प्राणियो को अपनी माता के वात्सल्य से भी अधिक मोहक एव मधुर लगती है। अर्थात् शर्करा की मधुरता की तरह इस वाणी रूपी सुधा का पान करने वाले मनुष्यो को अनन्त दर्शन, ज्ञान, चारित्र-वीर्य एव तपोमय आत्मा मधुर लगने लगती है, ससार कटु लगने लगता है।

अत उनमे से अनेक व्यक्तियो का देहा-ध्यास छूट जाता है, शुद्ध आत्म-स्वरूप की प्राप्ति की प्यास बढ जाती है, अत· वे शुद्ध स्वरूप की साधना मे सक्रिय हो जाते हैं, कुछ मनुष्य देश-विरतिधर हो जाते हैं, कुछ सर्व विरतिधर हो जाते हैं और कुछ मनुष्य शुक्ल ध्यान की धारा पर आरूढ होकर, क्षपक श्रेणी माड कर घाती कर्मों से भयानक सघर्ष करके, उन्हें परास्त करके सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हो जाते हैं और शेष अघाती कर्मों का भी क्षय करके शुद्ध, बुद्ध, पूर्ण और हो मुक्त जाते हैं।

इस प्रकार सर्व-प्राणी-हित-चिन्तक श्री अरिहन्त परमात्मा आत्म-स्वर्ण को शुद्ध करके उसमे निहित परम विशुद्ध परमात्म-स्वरूप को प्रकट करने की आध्यात्मिक प्रक्रिया का ज्ञान सिखाते हैं, वे जीव को शिव बनाने की सर्वोत्तम कला का दान करते हैं और सत, महन्त एव भगवत बनने की भव्यातिभव्य साधना प्रदर्शित करके विश्व पर असीम उपकार करते हैं।

जन्म से ही चार अतिशय युक्त श्री अरिहन्त परमात्मा की वाणी बारह पर्षदाओ मे बिराजमान देव, दानव, मानव, और तिर्यंच अपनी-अपनी भाषा मे सुनकर अनहद रोमाचित हो उठते हैं। झूले मे रोते बालक को उसकी माता

जब झुलाती हुई गीत सुनाती है तब वह चुप हो जाता है, रोना बन्द करके मुसकराने लगता है, खेलने लगता है। उसी प्रकार से श्री अरिहन्त परमात्मा की परम वात्सल्यमय वाणी सुनकर जीवो को अपार सुख-शाता का अनुभव होता है, तत्कालीन विषय-कषाय के आक्रमण रुक जाते हैं और स्थूल एव सूक्ष्म मन मे अपूर्व हर्ष उमडता है। बस, यह वाणी सुनते ही रहे ऐसा उत्कट भाव उस समय वहाँ स्थित प्राणियो के मन मे ज्योत्सना की तरह छा जाता है।

निरवधि वात्सल्य के उदधि के समान श्री अरिहन्त परमात्मा के प्रत्येक रोम मे से टपकते अपार जीव-वात्सल्य के सहज प्रभाव से समवसरण बिराजमान हिंसक प्राणी अर्थात् बाघ और बकरी, मोर और साँप, सिंह और हिरन भी अपनी जातिगत शत्रुता भूलकर परस्पर मैत्री-भाव रखते है। उनमे एक दूसरे को मारने की भावना ही नही आती। इन सब विकृत भावो का समस्त सामर्थ्य श्री अरिहन्त परमात्मा के परम वात्सल्यमय सामर्थ्य के समक्ष निष्प्राण हो जाता है, जैसे मध्यान्ह के सूर्य के समक्ष तिमिर का सामर्थ्य निष्प्राण हो जाता है।

परम तारणहार श्री महावीर परमात्मा की प्रशम-रस-मग्न मुख-मुद्रा एव अपार वात्सल्यमयी वाणी, 'बुज्झ, बुज्झ चण्डकोसिय' के प्रभाव से दृष्टि-विष युक्त चण्डकौशिक नाग तत्काल शान्त होकर समता भाव से चीटियो के डक सहन करता हुआ देव गति मे गया, वह भी क्रोधादि कषायो का परमात्म-स्नेह के समक्ष कोई जोर नही चलता उस तथ्य का समर्थन करता है।

जिन्हें 'स्वयभूरमण-स्पर्द्धि-करुणा-रस वारिणा' कह कर महर्षियो ने जिनकी स्तवना की है, जिनका 'महामोह-विजेता' कह कर स्मरण किया है, जगत्-त्रयाधार' कह कर जिनकी पूजा की है, उन श्री अरिहन्त परमात्मा के द्वारा, उनकी उत्कृष्ट-भाव-दया के द्वारा, उनके अप्रतिहत शासन के द्वारा यह विश्व सौभाग्यशाली है।

देह की दिव्यता

निरन्तर तीन तीन भव, सकल जीव-राशि के परम हित की सर्वोच्च साधना को सार्थक करने वाले, समस्त जीव-राशि के परम हित को अपने

जीवन मे सर्वोच्च स्थान प्रदान करने वाले श्री अरिहन्त परमात्मा की सातो धातु चरम भव मे उस परम जीव-स्नेह के द्वारा ऐसी हो जाती है कि उनकी दिव्य देह मे प्रवाहित रक्त लाल न रह कर दूध तुल्य श्वेत हो जाता है।

रक्त कभी दूध जैसा श्वेत हो सकता है ? अवश्य हो सकता है।

तनिक सोचो, अपनी सन्तान के प्रति वात्सल्य भावना के प्रभाव से माता के स्तन मे प्रवाहित लाल रग का रक्त दूध जैसा श्वेत हो जाता है और वह दूध के ही गुण-धर्म धारण करता है, तो समस्त प्राणी मात्र पर विमल वात्सल्य प्रवाहित करने वाली जगज्जननी भाव-माता-परमात्मा श्री अरिहन्तदेव के सम्पूर्ण शरीर का रक्त दूध के समान हो तो आश्चर्य ही क्या है ?

आश्चर्य तो यह है कि मेरा-तेरा, छोटा-बडा अथवा ऊँच-नीच आदि के भेद की वज्र के समान दीवारो को धाराशायी करके समस्त जीवो पर समान वात्सल्य-भाव रखना। जिस विमल वात्सल्य के स्रोत मे स्नान करके पतित भी पावन हो जाता है, पापी भी पापहीन हो जाता है, कर्म-श्रखला से युक्त व्यक्ति भी कर्म-श्रखला से मुक्त हो जाता है, सदेही विदेही हो जाता है और जन्म-मरण की परम्पराओ से जकडा हुआ प्राणी भी जन्म-मरण पर विजयी हो जाता है। यह क्या श्री अरिहन्त परमात्मा का कम उपकार है ? उनका असीम उपकार है, सब उपकारियो को नीचा दिखाने वाला उपकार है और जन्म-दातृ माता के उपकार को भी निस्तेज करने वाला असाधारण, अनन्य, अद्वितीय उपकार है।

शास्त्र फरमाते है कि परम उपकारी श्री अरिहन्त परमात्मा के दिव्य देह की रचना इस विश्व मे स्थित उत्कृष्ट शान्त भाव से सुवासित परमाणुओ के द्वारा होती है।

ये परमाणु केवल उनकी ओर ही आकृष्ट होने का कारण उनका उत्कृष्ट पुण्य है। वे उत्कृष्ट भाव-दया के कारण इतने उत्कृष्ट पुण्य का उपार्जन करते हैं।

अत उनके देह की कान्ति एवं इन्द्र के देह की कान्ति मे चांदनी रात और अमावस की रात जितना अन्तर होता है।

श्री अरिहन्त परमात्मा का कान्तिमय दिव्य देह प्रस्वेद-रहित होता है, श्वासोश्वास कमल के समान सुगन्धित होता है और उनके आहार-निहार की प्रक्रिया चर्म-चक्षुओ से परे होती है।

केवल श्री अरिहन्त परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी मे किसी भी समय मे प्रकट नहीं होने वाले ऐसे अद्वितीय गुण, उनके अगभूत विश्व-वात्सल्य के परिपाक स्वरूप हैं।

इस प्रकार की अद्भुत प्रभुता के पुनीत दर्शन, प्रकृष्ट पुण्य-निधान श्री अरिहन्त परमात्मा के अतिरिक्त अन्यत्र कहाँ हो सकते हैं? इस प्रकार की अलौकिक स्थिति के दर्शन मात्र से भी कितने ही जीव सुमार्ग-गामी होते हैं।

सर्वज्ञ एव सर्वदर्शी होने के पश्चात् भी श्री अरिहन्त परमात्मा जीवो को स्वार्थीय-प्रेम से छुडवा कर, परमार्थ-रसिक बनाने वाले धर्म का उपदेश देते हैं। इतना ही नही, परन्तु उन परम कृपालु परमात्मा के पुनीत चरण-कमल जिस धरा का स्पर्श करते हैं, वह धरा भी तारणहार तीर्थ की क्षमता से युक्त हो जाती है, और वह वातावरण भी विशुद्ध आत्म-स्नेह से सुवाहित होकर विश्व मे प्रवाहित अशुभ भावो का बल कुण्ठित करता है।

असीम करुणा-निधान श्री अरिहन्त परमात्मा जिस क्षेत्र मे विचरते हैं उस क्षेत्र मे और उसके आसपास के क्षेत्र मे सैंकडो मील तक अतिवृष्टि का प्रकोप नही होता, अनावृष्टि से दुर्भिक्ष नही पडता, टिड्डी, चूहो आदि के उपद्रव नही होते; रोगो के परमाणु प्रविष्ट नही होते और कोई आक्रमण नही होता। वहाँ सुख-शान्ति एव आनन्द-मगल का वातावरण छा जाता है।

इस प्रकार चरम मंगलमय श्री अरिहन्त परमात्मा के उपकारों की कोई सीमा नही है।

चरम तीर्थपति श्री महावीर स्वामी का निर्वाण हुए २५११ वर्ष होने पर भी उनके द्वारा प्रकाशित सर्व कल्याणकारी धर्म की आज भी अनेक पुण्यात्मा सविधि एव सम्मानपूर्वक आराधना कर रहे हैं, वह उनकी पाट-परम्परा को स्वामि-भक्ति पूर्वक उज्ज्वल करने वाले समर्थ आचार्य देव आदि भगवतो का उपकारी प्रभाव भुलाया नही जा सकता।

इस प्रकार श्री अरिहन्त परमात्मा द्वारा फरमाया हुआ धर्म हम तक पहुँचा और अज्ञानाधकार मे भटकते हम सबको सद्गुरुओ ने सुमार्ग बताया, भव-स्वरूप की भयकरता का भान करा कर, भाव की भद्र करता का ज्ञान कराया और हमे स्वभाव सम्मुख बनाया।

जिनके च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल-ज्ञान और निर्वाण ये पाँचो कल्याणको के रूप मे विश्व-विख्यात हैं, उन श्री अरिहन्त परमात्मा का असीम वात्सल्य सचमुच अवर्णनीय है।

जिनके च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल-ज्ञान और निर्वाण के समय निसर्ग का समग्र तत्र अनहद आल्हाद का अनुभव करता है, नारकीय जीवो को भी क्षण भर के लिये शान्ति एव सुख का अनुभव होता है वह उनके अगाध विश्व-वात्सल्य का ज्वलत उदाहरण है।

इसी प्रकार से अष्ट महाप्रातिहार्य-युक्त समवसरण उस निसर्ग की उन्हे श्रेष्ठ श्रद्धाजलि है।

वृक्ष उन्हें प्रणाम करते है, पक्षीगण उन्हे प्रदक्षिणा देकर नत-मस्तक होते हैं। उसके मूल मे भी उनका असीम प्राणी-वात्सल्य ही है।

श्री अरिहन्त परमात्मा एक ही ऐसे विश्वेश्वर हैं कि जो समस्त जीवो को स्व-तुल्य समझते हैं। उस भाव का त्रिभुवन-स्वामित्व इसलिये ही ठोस

है कि उसको चुनौती देने वाला भाव अन्य किसी भी पुरुष मे होता ही नही ।

परम तारणहार यह भाव सचमुच अमूल्य है, अतः उत्कृष्ट भाव एवं अत्यन्त मूल्यवान पदार्थों से श्री अरिहन्त परमात्मा की भक्ति करने मे तीनो लोक के प्राणी गौरव समझते हैं ।

भव को भाव प्रदान करने की मिथ्या मति का ध्वस इस भाव को भजने से होता है ।

भाव को भजने के लिये श्री अरिहन्त परमात्मा की आज्ञा का त्रिविध से पालन करना ही पडता है ।

यह आज्ञा नियमा कल्याणकारी है, सर्व कर्म-क्षयकारी है ।



अरिहन्त की उपासना



प्रभु नाम की महिमा



एक ही व्यक्ति के एक से अधिक नाम जब सुनने को मिलते हैं तब हृदय मे प्रश्न उठता है कि व्यक्ति एक और उसके अनेक नाम क्यो ?

एक ही व्यक्ति के अनेक नामो के पीछे कुछ न कुछ रहस्य छिपा हुआ होता है, कोई न कोई विशेष उद्देश्य होता है।

व्यक्ति के अनेक गुणो, विविध शक्तियो और उसके जीवन मे घटी असाधारण घटनाओ का उसके विविध नामो से विशेष सम्बन्ध होता है।

यहाँ हम श्री अरिहन्त परमात्मा के विविध नामो पर विचार करेंगे, अत उस तथ्य को लक्ष्य मे रखकर हम आगे बढेंगे।

श्री अरिहन्त परमात्मा अर्थात् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, परमेश्वर, परमात्मा, अनन्त गुणो के साक्षात् निधान, पूर्णता की प्रकट प्रतिमा, आत्मिक विकास के चरम शिखर........।

जिनकी आत्मा मे किसी दोष का हजारवाँ अथवा लाखवाँ भाग भी नही होता। इस प्रकार के पूर्ण गुणी, पूर्ण ज्ञानी परमात्मा मे निहित अनन्तानन्त गुणो, अक्षय शक्तियो और अप्रतिम ऐश्वर्य का परिचय उनके विविध नामो से प्राप्त होता है।

परमात्मा तो अनामी एव अकामी हैं, फिर भी विश्व उन्हे अनेक नामो से सम्बोधित करता है, उनकी सच्चे हृदय से प्रार्थना, पूजा, सेवा, भक्ति

करता है और ससार-सागर को पार करके शाश्वत-धाम की ओर प्रयाण करने का सत्त्व और सामर्थ्य प्राप्त करता है।

यहाँ निर्दिष्ट अनेक अभिधान (नाम) परमात्मा के अलौकिक, विशिष्ट गुणो का सुन्दर परिचय देते हैं, उनके अद्वितीय, अनुपम, असाधारण एव सर्वोत्कृष्ट व्यक्तित्व की तनिक झलक प्रस्तुत करते हैं। अन्यथा पूर्ण गुणी एव पूर्ण ज्ञानी परमेश्वर परमात्मा की गुण-गरिमा का उचित वर्णन करना अथवा उनकी पूर्णता का यथार्थ परिचय देना अपने समान पामर एव अल्पज्ञ व्यक्ति के लिये सर्वथा असम्भव बात है।

कहा भी है कि—पूर्ण गुणी को पूर्ण गुणी ही जान सकता है, पूर्ण ज्ञानी को पूर्ण ज्ञानी ही पहचान सकता है।

छोटे चम्मच से सागर का अगाध जल उलीचना अथवा छोटी पटरी से अनन्त आकाश को नापना जितना हास्यास्पद और असभव कार्य है उतना ही असभव एव हास्यास्पद कार्य इस छोटी सी जिह्वा से अथवा स्याही-कलम से पूर्ण गुणी एव पूर्ण ज्ञानी परमात्मा के गुणो का वर्णन करना है, फिर भी "शुभे यथाशक्ति यतितव्यम्" के अनुसार परमात्मा के गुणो का उनके पवित्र नामो का यथाशक्ति वर्णन करके हम अपना तन, मन और जीवन धन्य करें, कृतार्थ करें।

"अल्पश्रुत श्रुतवता परिहासधाम"

इस पक्ति के द्वारा पूर्वकालीन शास्त्रकार महर्षियो ने भी अपनी इस अल्पज्ञता को स्वीकार किया है, फिर स्वीकार करके भी वे रुके नही है— "त्वद् भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्" गाकर परमात्मा की भक्ति की प्रशसा की है और यह भक्ति ही आज मुझे आपका गुण-गान करने के लिये प्रेरित कर रही है—इस प्रकार की कृतज्ञता से वे भी परमात्मा के गुणो की स्तवना करते रहे हैं।

यह बात पूर्णतः सत्य है। परम गुणवान परमात्मा के गुणो का वर्णन करने की जो भी शक्ति आज हमारे जीवन मे जागृत हुई है वह भी उस परम

दयालू परमात्मा की कृपा के प्रभाव से ही जागृत हुई है। अत उस शक्ति का उपयोग उस परम दयालु प्रभु के गुणो की महिमा गाने और उसके नामो की स्तवना करने मे करें वही न्यायोचित होगा।

अतः उन परमात्मा की कृपा से यहाँ उनके विशिष्टतम गुण प्रदर्शित करने वाले उनके विविध नाम एव उनके अर्थ प्रस्तुत कर सका हूँ। उन पर चिन्तन–मनन करने से परमात्मा की लोकोत्तमता का रोमाञ्चक स्पर्श होता है और पूर्ण गुणवान परमात्मा के प्रति श्रद्धा, भक्ति, सम्मान एव सत्कार मे अत्यन्त वृद्धि होती है।

समस्त साधक पूर्ण गुणवान श्री अरिहन्त परमात्मा की पूर्ण भक्ति करके पूर्णत्व प्राप्त करके दुस्तर ससार को पार करके परम-पद को प्राप्त करें।

श्री अरिहन्त परमात्मा के विविध नाम

परमात्मा, परमेश्वर, परम परमेष्ठि; परमयोगी, परम ज्योतिस्वरूप, परमदेव, परम पुरुष, परम पदार्थ, प्रधान, प्रमाण, पर-मान, पुरुषोत्तम, पुरुष-सिंह, पुरुष वर पुण्डरिक, पुरुष वर गंध हस्ती, परमाप्त, परम कारुणिक, जिन, जिनेश्वर, जगदानन्द, जगत्-पिता, जगदीश्वर, जगदेवाधिदेव, जगन्नाथ, जगच्चक्षु, जिष्णु, लोकोत्तम, लोकनाथ, लोकहित-चिन्तक, लोक-प्रदीप, लोक-प्रद्योतकारी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, स्याद्वादी, सर्व तीर्थोपनिषद्, सर्व पाखण्डमोची, सर्व योग-रहस्य, सर्व प्रद, सर्व लब्धि-सम्पन्न, सौम्य; सर्व शक्त, सर्व देवमय, सर्व ध्यानमय, सर्व ज्ञानमय, सर्व तेजोमय, सर्व मत्रमय, सर्व रहस्यमय।

निरामय, नि सग, नि.शक, निर्भय, निस्तरग, निष्कलक, निरजन।

अभय-दाता, दृष्टि-दाता, मुक्ति-दाता, मार्ग-दाता, बोधि-दाता, शरण-दाता, धर्म-दाता, धर्म-देशक, धर्म-नायक, धर्म-सारथी, हृषिकेश, अजर, अमर, अजेय, अचल अत्यय, महादेव, शकर, शिव, महेश्वर. महाव्रती, महा योगी, महात्मा, मृत्युजय, मुक्ति-स्वरूप, मुक्तीश्वर।

जिन-जापक, तीर्थ-तारक, बुद्ध-बोधक, मुक्त-मोचक, त्रिकालविद्, पारगत, तीर्थंकर, अरिहन्त, अरहन्त, अरूहन्त, केवली, चिदानन्दधन, भगवान्, विधि, विरचि, विश्वम्भर, अघहर, अघमोचन, वीतराग, काल-पाश नाशी, सत्त्व-रजस्तमो, गुणातीत, अनन्त गुणी, सम्यक्-श्रद्धेय, सम्यग्-ध्येय, सम्यग्-शरण्य,

अचिन्त्य-चिन्तामणि, अकाम-कामधेनु और असकल्पित कल्पद्रुम आदि विविध नामो से परमात्मा श्री अरिहन्त देव का परिचय मिलता है।

विविध नामो के अर्थ

परमात्मा = श्रेष्ठतम है जिनकी आत्मा वे।

परमेश्वर = परम ऐश्वर्यवान्।

परम परमेष्ठि = सर्वोच्च स्थान पर स्थित परमेष्ठि भगवतो मे श्रेष्ठ।

परम योगी = योग-साधक योगी पुरुषो मे श्रेष्ठ।

परम ज्योति स्वरूप = श्रेष्ठ केवल-ज्ञान की ज्योति वाले।

परम देव = परम कोटि के देवत्व के धारक श्रेष्ठ देव।

परम पुरुष = त्रिलोको के समस्त पुरुषो मे श्रेष्ठ।

परम पदार्थ = श्रेष्ठतम पदार्थ।

प्रधान = मुख्य।

प्रमाण = प्रमाण भूत।

परमान = उत्कृष्ट सम्मान के पात्र।

पुरुषोत्तम = समस्त पुरुषो मे उत्तम।

पुरुषसिह = परिपूर्ण सिह की वृत्ति वाले, अपने बल से ही कर्म रूपी शत्रुओ के सहारक।

पुरुषवर पुण्डरिक = पुरुषो मे श्रेष्ठ कमल के समान। जिस प्रकार कमल कीचड और जल से उत्पन्न होने पर भी कीचड और जल से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार से कर्म रूपी कीचड और भोग रूपी जल से उनकी वृद्धि होने पर भी वे उनसे अलिप्त रहते हैं।

पुरुषवर गंध हस्ती – समस्त हाथियो मे गध हस्ती अपनी निराली गध के कारण भिन्न प्रतीत होता है, उस प्रकार से सब प्रकार के पुरुषो मे निराली वृत्ति वाले ।

परमाप्त = आप्त पुरुषो मे श्रेष्ठ, परम आत्मीय ।

परम कारुणिक = करुणानिधि पुरुषो मे श्रेष्ठ ।

जिन = राग-द्वेष के विजेता ।

जिनेश्वर = समस्त केवली भगवन्तो से श्रेष्ठ, क्योकि सामान्य केवली भगवतो की अपेक्षा अनन्त गुणा उपकार श्री अरिहत परमात्मा करते हैं ।

जगदानद = जगत् को आनन्द प्रदान करने वाले । च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान एव निर्वाण कल्याणको के द्वारा विश्व के समस्त जीवो को आनन्द प्रदान करने वाले । अपने परम ऐश्वर्य द्वारा आनन्द प्रदान करने वाले ।

जगत्-पिता = पिता की तरह विश्व के समस्त जीवो की रक्षा एव पालन-पोषण करने वाले ।

जगदीश्वर = जगत् के सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्यवान्. सामर्थ्यशाली ।

जगन्नाथ = जगत् को सनाथ करने वाले ।

जगच्चक्षु = विश्व की दिव्य आँख ।

लोकनाथ = त्रिलोक के नाथ ।

लोक-हित चिन्तक = लोक मे स्थित समस्त जीवो के उत्कृष्ट हित की रक्षा करने वाले ।

लोक-प्रदीप = लोक मे स्थित समस्त पदार्थों का यथार्थ दर्शन कराने मे दीपक तुल्य । राग, द्वेष एव मोह के अन्धकार को नष्ट कराने वाले भाव-दीपक ।

लोक प्रद्योतकारी = लोक के समस्त पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का केवल-ज्ञान द्वारा प्रकाशन कराने वाले, लोक को भाव प्रकाशमय करने वाले ।

सर्वज्ञ = सर्वकालिक समस्त पदार्थों के समस्त भावो के ज्ञाता ।

सर्वदर्शी = सर्वकालिक समस्त पदार्थों के समस्त भावो को हाथ की रेखाओ के समान देखने वाले ।

स्याद्वादी = अनेकान्तवाद के प्ररूपक ।

सर्वतीर्थोपनिषद = समस्त दर्शनो के रहस्य भूत ।

सर्वपाखडमोची = समस्त पाखडियो का गर्व चूर करने वाले ।

सर्वयोगरहस्य = समस्त प्रकार के योगो के रहस्य भूत ।

सर्वप्रद = मनोवाछित सब पदार्थों को देने वाले ।

सर्वलब्धिसम्पन्न = समस्त प्रकार की लब्धियो से युक्त ।

सौम्य = चन्द्र तुल्य सौम्य मुख-मुद्रा वाले ।

सर्वगत = केवली समुद्घाती के समय समस्त लोको मे व्याप्त अथवा केवल-ज्ञान द्वारा सर्वत्र व्याप्त ।

सर्वदेवमय = समस्त प्रकार के देवत्वमय ।

सर्वध्यानमय = समस्त प्रकार के ध्यान वाले ।

सर्वज्ञानमय = समस्त प्रकार के ज्ञान वाले ।

सर्वतेजोमय = समस्त प्रकार के तेज वाले ।

सर्वमन्त्रमय = समस्त प्रकार के मन्त्र-युक्त ।

सर्वरहस्य = समस्त प्रकार के रहस्यमय ।

निरामय = रोग-रहित ।

निःसग = सग-रहित ।

निःशंक = पूर्ण ज्ञानी होने के कारण शका रहित ।

निर्भय = सातो प्रकार के भय से रहित ।

निस्तरग = सकल्प-विकल्पो की तरगो से रहित ।

निष्कलक = कर्मकलक-रहित ।

निरजन = कर्म-रूपी अजन से रहित ।

अभयदाता = समस्त जीवो को अभयदान देने वाले ।

दृष्टि-दाता = विवेक रूपी दिव्य दृष्टि के दाता, त्रिभुवन मे सारभूत सम्यग्-दृष्टि-आत्मदृष्टि प्रदान करने वाले ।

मुक्ति-दाता = मुक्ति प्रदान करने वाले ।

मार्ग-दाता = मोक्ष-मार्ग प्रदान करने वाले ।

बोधिदाता = आत्म-स्वरूप का बोध देने वाले ।

शरण-दाता = अशरण जीवो को सच्ची शरण देने वाले ।

धर्म दाता = धर्म का दान करने वाले ।

धर्म-देशक = अहिंसा, सयम, तप-रूप धर्म के प्ररूपक ।

धर्म-नायक = धर्म के स्वामी, धर्म के शासक ।

धर्म-सारथी = धर्म रूपी रथ के सारथी ।

हृषिकेश = इन्द्रियो के स्वामी, इन्द्रियो का निग्रह करने वाले, हृषिक = इन्द्रिय, ईश = स्वामी ।

अज = जिन्हे पुन. जन्म धारण नही करना है वे ।

अजर = जरा रहित ।

अजेय = आतर शत्रुओ के द्वारा अथवा त्रिलोक के किसी अन्य बल द्वारा जो जीते नही जा सकें ।

अचल = महान् भयानक उपसर्गों से भी विचलित नही होने वाले, शुद्ध स्वभाव मे सदा स्थिर रहने वाले ।

अव्यय = नाश नही होने वाले ।

महादेव = सब देवो मे महान् ।

शंकर = शान्ति करने वाले ।

शिव = कल्याणकारी ।

महेश्वर = महान् सामर्थ्यशाली ।

महाव्रती = संयमियो मे महान् ।

महायोगी = महान् योगियो मे महान्, परिपूर्ण परमात्मा योगमय ।

महात्मा = महान् आत्मा वाले, आत्मा की सर्वोच्चता को आगे करने वाले । आत्म-सर्वांगी ।

मृत्युंजय = मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले ।

मुक्ति-स्वरूप = कर्म-बन्धन से सर्वथा मुक्त अवस्था वाले ।

जिन – राग-द्वेष के विजेता ।

जापक = राग-द्वेष पर विजय कराने वाले ।

तीर्ण = ससार-समुद्र को पार किये हुए ।

तारक = ससार-सागर से उद्धार करने वाले ।

वुद्ध = वोधि-प्राप्त ।

वोधक-वोध प्राप्त कराने वाले ।

मुक्त = कर्म-बन्धन से मुक्त ।

मोचक = कर्म-वन्धन से मुक्त करने वाले ।

त्रिकालवित् = तीनो कालो के समस्त भावो के ज्ञाता ।

पारगत = ससार-सागर का पार पाये हुए ।

तीर्थंकार = साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले ।

अरिहन्त = आन्तरिक शत्रुओ के सहारक ।

अरहन्त = अष्ट महा प्रातिहार्य रूप पूजा के सर्वथा योग्य, अर्थात् पात्रता की पराकाष्ठा को पहुँचे हुए, त्रिभुवन द्वारा पूज्य।

अरुहन्त = कर्म रूपी बीज जलने से जिनकी भव-परम्परा नष्ट हो गई है।

केवली = केवल्य-लक्ष्मी के धारक।

चिदानदघन = ज्ञान एव आनन्द के घन स्वरूप।

भगवान् = अनन्त ज्ञान, ऐश्वर्य, सामर्थ्य आदि गुणो से युक्त।

विधि = मोक्ष मार्ग का विधान करने वाले।

विरचि = ब्रह्म-पर-ब्रह्म को धारण करने वाले।

विश्वम्भर = केवली समुद्घात के समय स्वात्म प्रदेशो से विश्व को परिपूर्ण करने वाले, विश्व-व्यापक अथवा सकल ज्ञेय पदार्थों पर प्रकाश डाल कर ज्ञान-गुण से विश्व को भरने वाले।

अघ-हर = पाप नष्ट करने वाले।

अघ-मोचन = पाप से मुक्त करने वाले।

वीतराग = राग-रहित।

अनन्तगुणी = अनन्त ज्ञान आदि गुणो के धारक।

सम्यक्-श्रद्धेय = सच्चे रूप मे श्रद्धा करने योग्य।

सम्यग्-ध्येय = सच्चे रूप मे ध्यान करने योग्य।

सम्यक्-शरण्य = सच्चे रूप मे शरण स्वीकार करने योग्य।

अचिन्त्य-चिन्तामणि = चिन्तामणि सोचे हुए पदार्थ प्रदान करती है जबकि परमात्मा नही सोचे हुए पदार्थ भी प्रदान करते हैं।

अकाम कामधेनु = कामधेनु वाछित पदार्थ देती है, जबकि परमात्मा नही चाहे हुए पदार्थों को भी देते हैं।

असकल्पित-कल्पद्रुम = कल्प-वृक्ष सकल्प के अनुसार वस्तु देता है, जबकि परमात्मा जिनका सकल्प भी न किया हो ऐसे स्वर्ग, अपवर्ग (मोक्ष) के सुख प्रदान करने वाले हैं।

श्री अरिहन्त परमात्मा के इन समस्त नामो एव उनके अर्थों मे मन लगाने से, प्राण पिरोने से, शक्ति केन्द्रित करने से जीवन मे अपूर्व उत्साह बल शुद्धि एव स्नेह प्रकट होता है, जो मोक्ष पुरुषार्थ मे प्रोत्साहन देता है; कर्म-बल को परास्त करता है, बुद्धि को शुद्ध करता है और जीवो को स्नेह प्रदान करने का आत्म-स्वभाव प्रकट करता है ।

नाम-अरिहन्त द्वारा समापत्ति

श्री अरिहन्त परमात्मा के नाम, आकृति, द्रव्य एव भाव-इन चार निक्षेपो के आलम्बन से समापत्ति सिद्ध होने पर किस प्रकार परमात्मा का तात्विक दर्शन और मिलन हो सकता है, इस विषय मे आवश्यक चिन्तन करे। समस्त शास्त्रो मे प्रभु नाम की अचिन्त्य महिमा बताई गई है । आज भी समस्त आस्तिक दर्शन अपने-अपने इष्ट-देव का नाम-स्मरण करके अपना जीवन धन्य मानते हैं ।

प्रभु का नाम-स्मरण प्रभु दर्शन का अत्यन्त सरल-सुगम उपाय होने से आबाल-वृद्ध सबको महान् उपकारी होता है ।

जैन दर्शन मे 'श्री नमस्कार महामन्त्र' की शिक्षा सर्व प्रथम प्रदान की जाती है तथा प्रत्येक धर्म-क्रिया का प्रारम्भ उसके स्मरण से किया जाता है। उसका कारण यही है कि 'श्री नवकार महामन्त्र' समस्त सिद्धान्तो मे व्याप्त है, समस्त प्राणियो के समस्त प्रकार के पापो का समूल उच्छेद करने की क्षमता युक्त है समस्त मगलो मे उत्कृष्ट मगल है, समस्त प्रकार के भय हरने वाला है और स्वर्ग एव अपवर्ग (मोक्ष) के सुखो का मूल कारण है ।

इस मन्त्राधिराज श्री नवकार की विधि पूर्वक आराधना करने वाले व्यक्ति त्रिभुवन-पूज्य तीर्थंकर पद को भी प्राप्त कर सकते हैं । इस प्रकार शास्त्रो मे श्री नवकार की महिमा प्रदर्शित की गई है, वह समस्त महिमा प्रकृष्ट पुण्यवत श्री पच परमेष्ठी भगवन्तो के नाम-स्मरण की ही समझनी चाहिये ।

नाम स्मरण का अपूर्व चमत्कार

श्री पच परमेष्ठी भगवन्तो के नाम-स्मरण द्वारा विचार और वाणी विशुद्ध बनते हैं और वे हमारे व्यवहार को विशुद्ध करते हैं। विशुद्ध विचार, वाणी एव व्यवहार से पूर्ण शुद्ध स्वात्म स्वरूप की क्षुधा जागृत होती है। अत जैन-दर्शन मे सर्वप्रथम उसकी शिक्षा प्रदान की जाती है।

श्री पंच परमेष्ठी भगवन्तो के नाम स्मरण, वन्दन एव गुणो के कीर्तन द्वारा आत्मा के असख्य प्रदेशो मे प्रविष्ट पाप के परमाणुओ का नाश होता है, आत्मा लघुकर्मी बनती है, धीरे-धीरे आत्मा बहिरात्म-दशा से विमुख होती जाती है, अन्तरात्म दशाभिमुख होती जाती है और अन्त मे परमात्म-दशा का अनुभव करने वाली बनती है।

इस प्रकार आत्मा को परमात्मा बनाना अर्थात् जीव को शिव बनाना ही श्री जिन शासन के सारभूत श्री नवकार का सार है।

अनादि काल से विभाव के वश मे होकर आत्मा ने क्रूर कर्मो की क्रूरता सहन की, दुर्गति के भयानक कष्ट सहन किये और जन्म-मरण की परम्परा का सृजन किया।

चौदह पूर्वो के ज्ञान द्वारा विभाव की भयकरता एव स्वभाव की भद्र करता का ध्यान आता है और आत्मा विभाव से विरम कर स्वभाव मे स्थिर होकर शुद्ध आत्म-स्वरूप को प्रकट कर सकती है।

श्री पच परमेष्ठी भगवन्तो के नाम-स्मरण द्वारा और स्वरूप के चिन्तन, मनन, ध्यान द्वारा भी आत्मा विभाव से विरम कर, स्वभाव मे स्थिर होकर शुद्ध स्वात्म स्वरूप को प्रकट कर सकती है, इसीलिये वह चौदह पूर्व का सार माना जाता है। चौदह पूर्वी भी अन्त मे उसकी शरण ग्रहण करते हैं।

तात्पर्य यह है कि पच परमेष्ठी भगवन्तो के नाम स्मरण मे पाप-प्रकृतियो को भेदने की अचिन्त्य शक्ति निहित है, आत्मा को निष्पाप बनाने

का अगाध सामर्थ्य है। इसलिये उसका स्मरण, मनन और ध्यान पापो को समूल नष्ट कर सकता है।

इस प्रकार पाप-प्रकृति का विलय और पुण्य-प्रवृत्ति का सचय करने वाला होने से वह श्रेष्ठतर मगल स्वरूप है।

गुण-निधान श्री पच परमेष्ठी भगवन्तो की उपासना के द्वारा आत्मा मे प्रच्छन्न गुण प्रकट होने लगते हैं, प्रकृष्ट पुण्य का सचय होता है जिसके द्वारा स्वर्ग एव अपवर्ग के सुख प्राप्त होते हैं।

विधि एव सम्मानपूर्वक की गई श्री पच परमेष्ठी भगवन्तो की नाम-स्मरण, जप, ध्यान आदि उपासना द्वारा तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध होता है। आज तक जो-जो तीर्थंकर परमात्मा हुए हैं, हो रहे हैं और होगे, वे समस्त इन पचो परमेष्ठी भगवन्तो की प्रकृष्ट उपासना के द्वारा ही हुए हैं, हो रहे हैं और होगे।

जीव को मुक्ति का सच्चा मार्ग श्री पच परमेष्ठी को नमस्कार करने से प्राप्त होता है, क्योंकि उनके समग्र मन मे सर्व मगलकारी शुद्ध आत्म-स्नेह का साम्राज्य स्थापित होता है। अतः उनको नमस्कार करने वाले के मन मे आत्म-स्नेह स्थापित होता है और अनात्म-रति नष्ट होती है।

"नमो अरिहताण" बोलने पर वर्तमान काल के इस क्षेत्र के चौबीस अरिहत भगवन्तो के परम तारणहार जीवन तथा परम गुणो के सम्बन्ध पर हम आ जाते हैं। इतना ही नही, परन्तु सर्व कालिक, सर्व क्षेत्र के सर्व श्री अरिहन्त भगवन्तो के परम तारणहार जीवन के सम्बन्ध मे तथा परम गुणो के सम्बन्ध पर आया जाता है, उस जीवन और उन गुणो की अनुमोदना होती है।

मनुष्य स्वय जितना धर्म कर सकता है उससे अनन्त गुना धर्म इस अनुमोदना से कर सकता है, होता है। इस अकाट्य नियम के अनुसार सच्चे

भाव से किया गया एक नमस्कार भी जीव को शिव बनाने का शास्त्रीय विधान यथार्थ ठहराता है।

इस प्रकार प्रभु के नाम-स्मरण का प्रभाव अकल्पनीय है, अचिन्त्य है।

'कल्याण मन्दिर स्तोत्र' और 'भक्तामर स्तोत्र' मे भी प्रभु-नाम का अचिन्त्य प्रभाव प्रदर्शित किया गया है।

"आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन सस्तवस्ते, नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति .... (कल्याण मन्दिर स्तोत्र-श्लोक ७)

अर्थ —हे जिनेश्वर देव ! आपके गुण-स्तवनो की तो अचिन्त्य महिमा है ही, परन्तु आपके नाम का स्मरण भी विश्व के जीवो को पावन करता है, अशुभ भावो से हटाकर शुभ भावो मे लगाता है।

त्वन्नाममन्त्रमनिश मनुजा स्मरन्तः, सद्य स्वय विगत बन्धभया भवन्ति (भक्तामर स्तोत्र–श्लोक ४२)

अर्थः—हे नाथ ! आपके नाम-मन्त्र का निरन्तर स्मरण करने वाले व्यक्ति बन्धन से शीघ्र मुक्त होते हैं।

परमात्म-नाम रूप मन्त्रात्मक देह

श्री अरिहन्त परमात्मा का नाम उनकी मन्त्रात्मक देह है। सभी अरिहन्त भगवन्त मोक्ष-गमन के समय समस्त जीवो के उद्धार के लिये अपनी मन्त्रात्मक देह को विश्व पर रखते जाते हैं। इससे उनकी अनुपस्थिति मे भी साधक अरिहन्त नाम (श्री अरिहन्त परमात्मा की मन्त्रात्मक* देह) के

---

* जग्मुर्जिनास्तदपवर्गपद तदैव, विश्व वराकमिदमत्र कथ विना स्यात्। तत् सर्व लोक भुवनोद्धरणाय धीरै मन्त्रात्मक निजवपुर्निहितं तदत्र ॥ (नमस्कार स्वाध्याय भाग पहला)

आलम्वन द्वारा अपने समम्त पापो का क्षय करके भाव अरिहन्त रूप स्व त्म स्वरूप के साक्षात् दर्शन कर सकता है, क्योंकि अरिहन्त' शव्द श्री अरिहन्त परमात्मा का वाचक होने से कथचित् अरिहन्त स्वरूप है ।

इसलिये 'नमो अरिहन्ताण' एवं 'अर्हं' आदि महामन्त्र के ध्यान में तन्मय होने से श्री अरिहन्त परमात्मा के साथ तन्मयता सिद्ध होती है और वह उनके साक्षात् दर्शन के समान है । इसीलिये श्री अरिहन्त परमात्मा के ध्यान मे तन्मय वनी साधक आत्मा भी आगम से 'भाव अरिहन्त' कहलाती है ।

मन अपना मिटकर परमात्मा का हो जाये उस घटना को इस विश्व की उत्कृष्ट मगलकारी घटना कही है । इसीलिये परमात्मा के नाम स्मरण को जीवन वनाने मे विश्वात्मक जीवन का श्रेष्ठ सम्मान है ।

मन्त्र की आराधना द्वारा परमानन्द का अनुभव

नाम अरिहन्त अक्षरात्मक है । अक्षर मन्त्र-स्वरूप है । चार अक्षर के इस शव्द के जाप मे से उत्पन्न उत्कृष्ट प्रकार के सगीत से मन सहित समस्त प्राणो को अपूर्व पवित्रता, अपूर्व आनन्द स्पर्श करता है । उसमे से क्रमश. रस-समाधि लगती है, सरस आत्मा की स्पष्ट अनुभूति होती है ।

मन्त्राक्षर की प्रत्येक ध्वनि अन्त प्राणो पर उपघात करती-करती सूक्ष्म-सूक्ष्मतर होकर अनाहत कक्षा का वरण करती है । तव साधक-जापक और साध्य-जाप्य एकरूप हो जाते हैं और यही उस मन्त्र जाप का यथार्थ फल है ।

अनेक जापो के पश्चात् अजपा-जाप की कक्षा स्वाभाविक वनती है । तत्पश्चात् अनाहत नाद के स्पर्श का प्रारम्भ होता है ।

अनाहत नाद एवं श्री अरिहन्त परमात्मा

इस प्रकार मन्त्रयोग (जप योग) की साधना नाम अरिहन्त की ही आराधना है। उस आराधना मे आगे बढा हुआ साधक जब श्री अरिहन्त परमात्मा के स्वरूप में लीन होता है और अन्तरात्मा मे ही परमात्म-स्वरूप के दर्शन करता है तब उसे भाव अरिहन्त के दर्शन होते हैं।

इस प्रकार नाम अरिहन्त की आराधना के द्वारा भाव अरिहन्त के दर्शन होते है।

* श्री सिंह तिलक सूरि कृत 'मन्त्रराज रहस्य' मे 'अनाहत' का अर्थ 'अरिहन्त' बतलाया है। उसका रहस्य उपर्युक्त अपेक्षा से विचार करने से समझा जा सकता है।

जैसे अर्हं मन्त्र के जाप में तन्मयता सिद्ध होने से अनक्षर अनाहत नाद उत्पन्न होता है वह भी अरिहन्त-स्वरूप मे तल्लीनता कराने वाला होने से और श्री अरिहन्त परमात्मा के साथ एकता सिद्ध कराने वाला होने से अरिहन्त स्वरूप है।

भाष्य, उपांशु और मानस-जाप की कक्षाओ मे उत्तीर्ण होने के पश्चात् इस अनक्षर अनाहत नाद की कक्षा मे प्रवेश मिलता है।

इस श्लोक का रहस्य यह है कि मुनि जब व्योम स्वरूप निर्विशेष मनस्काय अवस्था को प्राप्त होता है तब 'अर्हम्' यही एक नादमय रहना है। गिर पडते पके हुए फलो की तरह अन्य समस्त अवस्था उसके समग्र मन मे से टूट पडती है और वह स्वय के स्वरूप मे, स्वय मे स्थिर होकर समस्त मन्त्रो के बीज-भूत अनाहत नाद को प्राप्त करता है।

---

* नादोऽर्हन् व्योम मुनि। ३५१ ॥ ४३६ ॥

बिन्दु निभोऽनाहतः सोऽर्हन् ॥ ४४७ ॥

अर्हं का अद्भुत रहस्य—"त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र" के मंगलाचरण मे इस प्रकार बताया गया है—

"अर्हं" का अद्भुत रहस्य —

सकलार्हत्प्रतिष्ठान—मधिष्ठान शिव श्रिय· ।

भूर्भुव· स्वस्त्रयीशान–मार्हन्त्य प्रणिदध्महे ॥१॥

अर्थ —जो समस्त पूजनीय आत्माओ एव समस्त अरिहन्तो का भी प्रतिष्ठान है, शिव-लक्ष्मी का अधिष्ठान है और जो मर्त्य, पाताल और स्वर्ग लोक के स्वामी हैं, उन 'आर्हन्त्य' का हम प्रणिधान (ध्यान) करते है।

"अर्हं" मंत्राधिराज है। इसकी अपार महिमा का शास्त्रो मे वर्णन है। गुरु की कृपा से उसका रहस्य जानने से अरिहन्त परमात्मा के प्रति तात्त्विक प्रीति एवं भक्ति उत्पन्न होती है।

"अर्हं" का सामान्य अर्थ 'अहरहितता' होता है। अत· 'दासोऽह' पद से श्री अरिहन्त की आराधना करने वाला आराधक क्रमश· "सोऽह" और "अह" पद को पार करके 'अर्हं' पद का पात्र हो सकता है।

तात्पर्य यह है कि "अर्हं" परमेष्ठी बीज है, जिनराज बीज है, सिद्धि बीज है, ज्ञान बीज है, त्रैलोक्य बीज है तथा श्री जिन शासन के सारभूत श्री सिद्धचक्र का भी आदि बीज है। परमेष्ठि–बीज *"सकलार्हत्प्रतिष्ठानम्" परम-पद मे स्थित श्री अरिहन्त परमात्मा का वाचक होने से "अर्हं" परमेष्ठी बीज है।

श्री अरिहन्त परमात्मा तत्त्व से पच परमेष्ठि स्वरूप भी है, क्योकि वे तीनो लोको के लिये पूजनीय होने से 'अरिहन्त' कहलाते हैं, उनमे उपचार से द्रव्यसिद्धत्व होने से सिद्ध कहलाते हैं, उपदेशक होने से 'आचार्य' कहलाते

---

* अर्हमित्यक्षर ब्रह्म वाचक परमेष्ठिन ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीज सर्वत प्राणिदध्महे ॥

हैं, शास्त्रार्थ के पाठक होने से 'उपाध्याय' कहलाते हैं और निर्विकल्प चित्त वाले होने से 'साधु' कहलाते हैं। इस प्रकार पच परमेष्ठियो का वाचक होने से "अर्हं" परमेष्ठि बीज है।

जो परम-पद पर प्रतिष्ठित तथा परम ज्ञान स्वरूप श्री अरिहन्त परमात्मा का वाचक है तथा अचल, अविनाशी, परम ज्ञान स्वरूप अथवा मोक्ष एव ज्ञान के हेतु रूप तथा श्री सिद्ध चक्र का प्रधान वीज है उन "अर्हं" का हम सर्वत, सर्व क्षेत्र और सर्वकाल मे प्रणिधान-ध्यान करते हैं (सिद्धहैम व्याकरण)। इस प्रकार सकल-अर्हत् अर्थात् पूजनीय परमेष्ठी और सकल अर्हत् अर्थात् श्री अरिहन्तो का स्थान, 'अर्हं' परमेष्ठि-बीज और श्री जिनराज वीज है।

सिद्ध बीज —"अधिष्ठान शिव श्रिय" —"अर्हं" शिव लक्ष्मी अर्थात् सिद्ध का भी वीज है। अक्षर अर्थात् मोक्ष, उसका हेतु होने से मोक्ष का वीज कहलाता है तथा स्वर्ण-सिद्धि आदि महासिद्धियो का कारण होने से 'सिद्ध वीज' है, तथा शिव-कल्याण-मगल आदि का वीज होने से शिव अथवा सुख का भी वीज कहलाता है। श्री लक्ष्मी-केवल-ज्ञान रूपी लक्ष्मी अथवा धन-सम्पत्ति रूपी लक्ष्मी का भी वीज है।

* **ज्ञान वीज** —"अर्हं" ब्रह्म स्वरूप होने से ज्ञान-बीज है। "सकलार्हत्" अर्थात् कला सहित "अ-र-ह" जिसमे प्रतिष्ठित है ऐसे "अर्हं" मे 'अ' से 'ह' तक के अक्षरो का समावेश होने मे वह समग्र श्रुत-ज्ञान का भी वीज है।

त्रैलोक्य बीज —"अर्हं" त्रैलोक्य वीज है।

---

* ज्ञान बीज जगद्वन्द्य, जन्ममृत्युजर पहम।
अकारादि हकारान्त, रेफ-बिन्दु-कलाकितम्। —[तत्त्वार्थ-सार-दीपक]

सकलागमोपनिषद्भूत सकलस्य द्वादशागस्य—
गणिपिटकरूपस्यैहिकामुष्मिकरूपफलप्रदस्यागमस्योपनिषद्भूत।
[सिद्धहेम बृहत् व्याकरण]

"अर्हं" शब्द मे वर्णों की रचना इस प्रकार है। "अ–र–ह–कला – विन्दु।' उसकी समस्त शास्त्रो मे तथा समस्त लोक मे व्यापकता है, वह इस प्रकार है —

"अर्हं" मे 'अ' से 'ह' तक की सिद्ध मातृका (अनादि सिद्ध वारहाक्षरी) निहित है। उनमे से एक-एक अक्षर भी तत्त्व स्वरूप है। फिर भी 'अ–र–ह' ये तीन वर्ण अत्यन्त विशिष्ट हैं।

'अ' तत्त्व की विशिष्टता.—

(१) 'अकार' समस्त जीवो को अभय प्रदान करने वाला है, क्योकि 'अकार' शुद्ध आत्म–तत्त्व का वाचक है।

जिस आत्मा को शुद्ध आत्म-तत्त्व की प्रतीति होती है, वह स्व एव पर समस्त जीवो को वास्तविक रीति से अभय प्रदान करता है।

'अ' का उपघात, 'अ' के जाप की अश्राव्य ध्वनि-तरग आत्मा के अक्षर प्रदेश को खोलने का कार्य करती है।

'अ' से अजर, अमर, अक्षर, अव्यय, अविनाशी, अखण्ड, अनादि, अनुपम, अलौकिक आत्म-तत्त्व का वोध होता है।

जिसे शुद्ध आत्म-तत्त्व का वोध होता है वह जीव अल्प काल मे ही समस्त कर्मों के वन्धन से मुक्त होकर परम पद प्राप्त करता है और अपनी ओर से समस्त जीवो को सदा के लिये अभय दान देता है।

(२) 'अकार' समस्त जीवो के कण्ठ-स्थान के आश्रित रहने वाला प्रथम तत्त्व है।

(३) वह 'अकारत्व' सर्व स्वरूप, सर्वगत, सर्व व्यापी, सनातन और सर्व जीवाश्रित है, जिससे उसका चिन्तन भी पाप-नाशक वनता है, क्योकि वह समस्त वर्णों और स्वरो मे अग्रगण्य है और 'क' कारादि समस्त व्यजनो के उच्चारण मे उसका प्रयोग होता है। अत वह सब प्रकार के मत्र-तन्त्रादि

योगो मे, सब विद्याओ में, सब विद्याधरो मे, सब पर्वतो मे, वनो मे और देवाधिदेव परमात्मा के समस्त नामो मे आकाश की तरह व्याप्त है ।

अत. यह परम-ब्रह्म है, कला रहित अथवा कला सहित 'अ' जो परमात्मा के नाम के आदि मे है, उस परमात्मा का ध्यान मोक्षार्थी जीव अवश्य करते हैं और करना चाहिये यह मानते हैं ।

'र' तत्त्व की विशेषता

प्रदीप्त अग्नि के समान समस्त प्राणियो के ब्रह्म रध्र (मस्तक) मे निहित 'र' तत्त्व का विधिपूर्वक ध्यान ध्याता को त्रिवर्ग फल प्रदान कर सकता है, अर्थात् धर्म, अर्थ, काम रूपी त्रिवर्ग की सिद्धि प्रदान करता है ।

अनन्त-लब्धि-निधान श्री गौतम स्वामी परम तारणहार श्री महावीर स्वामी परमात्मा के निर्वाण के पश्चात् 'वीर-वीर' कह कर विलाप कर रहे थे । अर्द्ध-रात्री के पश्चात् अग्नि बीज रूपी 'र' अक्षर के प्रभाव से उनके होठ सूखने लगे । कंठ में शोष होने से 'र' अक्षर छूट गया और कैवल 'वी' अक्षर का जाप चलता रहा । वे अनन्त बीज-बुद्धि के स्वामी थे, अत उस 'वी' मे से उन्हें वीत-राग, वीत-द्वेष, वीत-भय, वीत-शोक आदि शब्दो का स्फुरण हुआ और उनके मर्म के स्पर्श से प्रात काल होते-होते उन्होने चार घाती कर्मों का क्षय करके केवल-ज्ञान उपार्जित किया ।

कहने का तात्पर्य यह है कि 'र' अग्नि-बीज है । काष्ठ के ढेर को भस्म करने मे अग्नि जो कार्य करती है वही कार्य कर्म रूपी काष्ठ को भस्म करने मे 'र' परमात्मा के नाम के मध्य मे हैं, वह परमात्मा श्री अरिहन्त के नाम का जाप-चिन्तन एव ध्यान भी अचूक प्रकार से करते हैं ।

अत' उस परमात्मा की पूजा-भक्ति आदि करने मे मानव-भव की सार्थकता है ।